उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

पद्य साहित्य - I

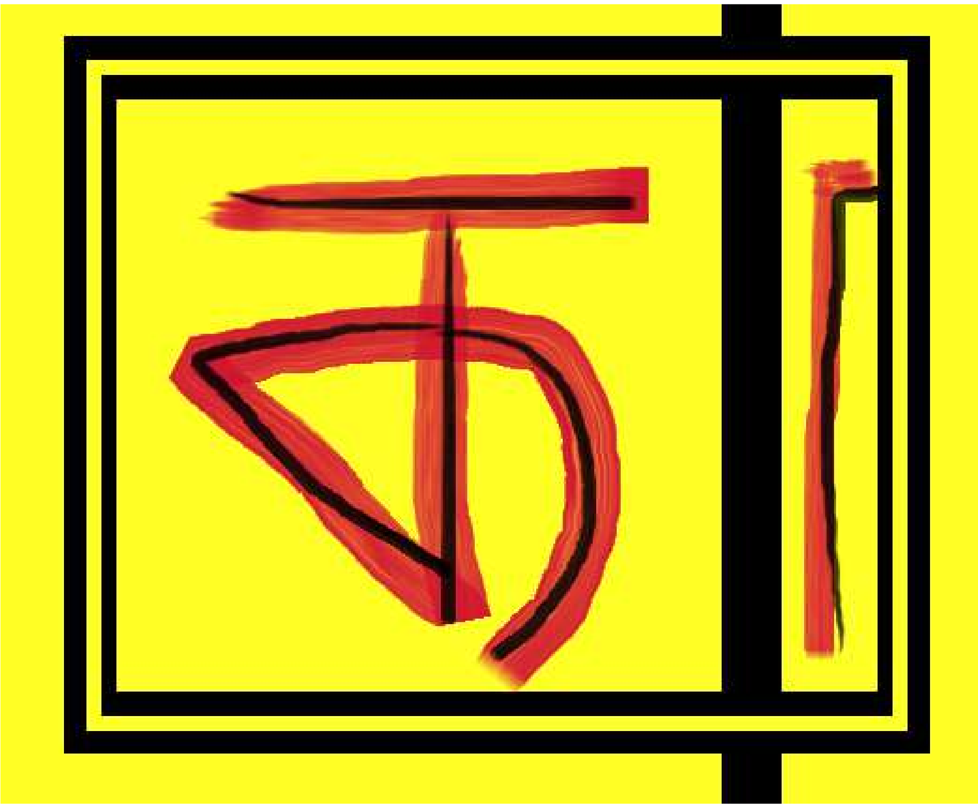

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एच0पी0 शुक्ला
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 सत्यकाम
हिन्दी विभाग
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो.आर.सी.शर्मा
हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय,अलीगढ़

डा0 शशांक शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डा0 राजेन्द्र कैड़ा
एकेडेमिक एसोसिएट
हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा0 शशांक शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डा0 राजेन्द्र कैड़ा
एकेडेमिक एसोसिएट
हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	1,2,3,4,7
डा.विजय कुलश्रेष्ठ 22,मोतीमगरी, उदयपुर राजस्थान	5
डा.पुनीत राय हिन्दी विभाग शासकीय नवीन महाविद्यालय, शंकरगढ़ बलरामपुर, छतीसगढ	6
डॉ. सुमिता गढ़कोटी हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत	8,9
डॉ. राजेन्द्र कैड़ा अकादमिक एसोसिएट,हिंदी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	10, 11
डॉ. विक्रम राठौर हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,गंगोलीहाट	12,13

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2014
सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
ISBN - 978-93-84632-65-6

खण्ड 1 पद्य साहित्य का तात्विक विवेचन	**पृष्ठसंख्या**
इकाई 1 पद्य साहित्य की सैद्धान्तिकी	1-14
इकाई 2 पद्य साहित्य का वर्गीकरण एवं अंतर्सम्बन्ध	15-28
इकाइ्र 3 महाकाव्य एवं खण्डकाव्य की सैद्धान्तिकी	29-40
इकाई 4 आधुनिक पद्य का रचना रूप	41-48
खंड 2 आदिकालीन एवं मध्यकालीन कविता	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 5 हिन्दी साहित्य का आदिकाल : उद्भव एवं विकास	49-57
इकाई 6 भक्तिकालीन कविता का उदय	58-76
इकाई 7 रीतिकाल : परिचय एवं आलोचना	77-90
खण्ड 2 महाकाव्य एवं खण्डकाव्य	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 8 प्रियप्रवास: पाठ एवं विवेचन	91-111
इकाई 9 साकेत: पाठ एवं विवेचन	112- 136
इकाई 10 कुरूक्षेत्र एवं परिवर्तन: पाठ एवं विवेचन	137-160
खण्ड 4 लंबी कविता	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 11 सरोजस्मृति एवं असाध्यवीणा: पाठ एवं विवेचन	161-193
खण्ड 3 मुक्तक काव्य	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 12 मीरा, सूर, पद्माकर और घनानंद के पद	194-217
इकाई 13 कबीर, रहीम एवं बिहारी के दोहे	218-233

इकाई 1- पद्य साहित्य की सैद्धांतिकी

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पद्य/कविता क्या है
 1.3.1 गद्य और पद्य का अन्तर
 1.3.2 कविता की परिभाषाएँ
1.4 प्राचीन और नयी कविता की सैद्धान्तिकी
 1.4.1 प्राचीन कविता की सैद्धान्तिक
 1.4.2 नवीन कविता का सैद्धान्तिक
1.5 प्राचीन कविता का काव्यरूप और सामाज
1.6 नयी कविता का काव्य रूप और समाज
1.7 कविता के ढलने की प्रक्रिया
1.8 सारांश/मूल्यांकन
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

पद्य साहित्य की सैद्धान्तिकी का प्रश्न साहित्य का मूल प्रश्न है । पद्य और गद्य का विभाजन क्रमशः हमारे साहित्यशास्त्रियों ने कर दिया, लेकिन प्राचीन काल में साहित्य मात्र को पद्य की कहा जाता था। अतः इस दृष्टि से पद्य/कविता साहित्य की सर्वाधिक प्राचीन विधा हे। कविता की परिभाषा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'मुक्तावस्था' कहा है मुक्तावस्था का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी ने 'मनुष्य को लोक सामान्य की भाव भूमि पर पहुँचना' बताया है। यानी कविता के माध्यम से हम अपने को जानने का सूत्र पाते हैं। कविता बाहरी आवरणों के भेदकर मनुष्य को उसके मूल तक पहुँचाने का कार्य करती है। कविता की भाषा बिम्ब बहुला एवं सघन भाषा होती है। इसीलिए गद्य की स्थूलता एवं तथ्यात्मकता से कविता अपने को अलग कर लेती है। गद्य को विचार की भाषा कहा गया है और कविता को संवेदना-अनुभूमि की/ अपनी प्रमुखता में कविता का काम हमारी संवेदना को ही जाग्रज करना होता है। संवेदना जाग्रत कर कविता हमें मनुष्य बनाने का काम करती है। मनुष्य बनाने की यह प्रक्रिया बहुत ही सूक्ष्म स्तर पर घटिता होती है या कहें कि उसकी प्रक्रिया बहुत ही सूक्ष्म होती है। इस सूक्ष्म प्रक्रिया के लिए कल्पना, बिम्ब, प्रतीक, वक्रोक्ति जैस तत्वों का कविता में प्रयोग होता है। गद्य की भाषा की अपेक्षा कविता की भाषा इसीलिए ज्यादा कल्पनात्मक हाती है। ज्यादा कल्पनात्मक, इसीलिए ज्यादा सृजनात्मक कविता में विस्तारित करने की क्षमता गद्य की अपेक्षा ज्यादा शीघ्रता से होता है। सामाजिक गति की प्रक्रिया को कविता ज्यादा तेजी से पकड़ती है, इसीलिए कविता में हर मोड़ की सूचना हमे मिल जाती है। प्राचीन काल की कविता के तेवर और नवीन कविता के तेवर में इसीलिए स्पष्ट रूप से हमें पार्थक्य देखने को मिलता है ।

1.2 उद्देश्य

बी.ए.एच.एल.-201 की यह प्रथम इकाई है। यह इकाई पद्य साहित्य की सैद्धान्तिकी पर केन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- कविता क्या है ? इसे समझ सकेंगे ।
- कविता के भारतीय एवं पाश्चात्य परिभाषाओं से परिचत हो सकेंगे
- प्राचीन और नयी कविता के सैद्धान्तिक भेद को जान सकेंगे ।
- प्राचीन और नयी कविता के काव्य रूपों से परिचित हो सकेंगे ।
- कविता की रचना प्रक्रिया को समझ सकेंगे ।
- कविता की काव्यानुभूति एवं रसानुभूति की प्रक्रिया को जान सकेंगे ।
- कविता के समाजशास्त्र को समझ सकेंगे ।

1.3 पद्‌य/कविता क्या है?

कविता या पद्य को समझने के लिए इसकी मूल संरचना इसके कार्य और इसके समाजिक गतिशीलता से अंतर्सम्बन्ध कसे समझना आवश्यक है । अगर कविता गतिशील कर्म है तो

जाहिर है कि इसकी परिभाषा हो या इसकी संरचना यह भी लगातार बदलती रहेगी। एसे स्थिति में कविता क्या है ? इसे पूरी तरह बता देना संभव नहीं है और न पूरी तरह एक बार में समझ लेना यह जरूर है कि हम कविता को जानने की दिशा में थोडा़ आगे बढ़ जाते हैं और यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है।

1.3.1 पद्य और गद्य में अन्तर

गद्य और पद्य का विभाजन साहित्य के प्रारम्भ से ही हो गया था, लेकिन यह विभाजन रेखा इतनी स्थूल नहीं है कि इसे आसानी से स्पष्ट किया जा सके। गद्य और पद्य के इस आवाजाही को स्पष्ट करने के लिए 'चम्पू काव्य' की एक नई श्रेणी विकसित की गई। 'चम्पू काव्य' गद्य -पद्य की मिश्रित विधा का नाम है। गद्य और पद्य के विभाजन को स्पष्ट करने के प्राथमिक उपकरण क्या है? यह प्रश्न उठाया जा सकता है। गद्य और पद्य के विभाजन का प्राथमिक आधार तय करते हुए छन्द संबंधी मान्यता को आधार बनाया गया है। कविता या पद्य के लिए छन्द संबंधी मान्यता को आधार बनाया गया है। अक्षर या वर्ण के निश्चित अनुपात को छन्द कहा गया है। इस दृष्टि से वर्णों की मात्रा के आधार पर दोहा, सोरठा पद, कुण्डलिया, सवैया, हरिगीतिका जैसे कई छन्द प्रचलित हुए। पद्य के लिए छन्द की अनिवार्यता है जबकि गद्य इससे मुक्त है। आधुनिक काल में आकर मुक्त छन्द संबंधी अवधारणा प्रचलन में आई। बाल्ट हिटमैन इसका आरम्भिक प्रयोक्ता है। हिन्दी में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने मुक्त छन्द पर बल दिया। मुक्त छन्द में कविता लिखने का कारण यह था कि ये कवि चाहते थे कि कविता का भाव-विस्तार हो कविता भाव की संकीर्ण धारा से मुक्त होकर सामान्य जन-जीवन तक भी पहुँचे। मुक्त छन्द से कविता को हानि भी हुई। कुछ ऐसे लोग भी कविता करने लगे जो कम परिश्रम में ही, तुकबंदी करके कविता करने लगे। तो कह सकते हैं कि आधुनिक कविता में छन्द की अनिवार्यता उस रूप में वहीं है जैसी प्राचीन कविता में है। लेकिन यहाँ हमें एक बात स्मरण रखनी चाहिए 'मुक्त छन्द' का तात्पर्य छन्दहीन कविता से नहीं है अपितु इसका तात्पर्य छन्द की जटिलता से मुक्ति से है। तो फिर गद्य और पद्य में क्या अन्तर है। गद्य और पद्य के विभाजन का दूसर आधार क्रिया रूपों के आधार पर तय किया गया है।अर्थात् गद्य के लिए जहाँ विराम चिह्न अनिवार्य है वहीं पद्य में विराम चिह्न नहीं होते हा। (हांलाकि नई कविता में विराम चिह्नों का प्रयोग बहुलायत हुआ है) पद्य में विराम चिह्न की जगह पंक्ति परिवर्तन का प्रचलन है। जैसे अज्ञेय की कविता पंक्ति देखें- 'हम नदी के द्वीप है। हम धरा नहीं हैं' इस पंक्ति में विराम चिह्न नहीं है, हाँलाकि क्रियारूप वर्तमान है। इसी पंक्ति को यदि ऐसे लिखें- 'हम नदी के द्वीप हैं।' तो वह गद्य में परिवर्तित हो जायेगा। इसलिए कहा गया है कि पद्य और गद्य में अन्तर का बहुत बड़ा कारण विरम चिह्न है। गद्य और पद्य में अन्तर का तीसरा आधारभूत कारण 'लय' है। लय का अर्थ है कि कविता एक सुर में, लय, टोन में संगीतात्मक आरोह-अवरोह के मध्य में विकसित होती है। गद्य में लय की अनिवार्यत नहीं है। हाँ लाकि गद्य भी लय में लिखे जाते हैं। अज्ञेय का गद्य कई बार लभात्मक रूप धारण कर लेता है। हिन्दी में रघुवीर सिंह के गद्य को 'गद्यगीत' कहा गया है। इस संबंध में यह भी कहा गया है कि कविता में छंद उतने अनिवार्य नहीं है जितने कि लय। अर्थात् बिना लय के कविता संभव नहीं है। गद्य और पद्य के अन्तर को तुक के संबंध में रखकर भी देखा गया है। कविता के संदर्भ

में यह भी कहा गया है कि वह विशिष्ट शब्दों का विशेष क्रम से किया गया चयन है। जैसा कि Prose का उद्गम Prosiac को माना जाता है जिसका अर्थ नीरस होता है। इस दृष्टि से गद्य का काम सूचना को नवीनतम करना या उस पा बातचीत करना माना है, जबकि कविता का काम भाषा को संगीतात्मक ढंग से प्रस्तुत करना। जैसा कि कार्लाइल ने भी लिखा है- Poetry is a musical thought यही कारण है कि कविता की भाषा अलंकृत, ज्यादा सौन्दर्यवान, ज्यादा लयात्मक एवं ज्यादा मधुर होती है। गद्य और पद्य के अन्तर का एक कारण यह है कि गद्य और जहाँ व्याकरण के नियम पूरी तरह लागू होते हैं, वहीं पद्य इस बन्धन से थोडा़ छूट ले लेती है। कविता मेंकई बार ज्यादा लय प्रदान करने के लिए, पंक्ति को ज्यादा अर्थवान बनाने के लिए या किसी शब्द पर विशेष बल देने के लिए व्याकरण के नियम का पूरी तरह पालन नहीं होता। गद्य में जहाँ यह अक्षम्य है। जैसे निराला के 'राम की शक्तिपूजा' कविता की यह पंक्ति देखें, ''है अमानिशा उगलता गगन घन अधंकार''। इस पंक्ति में क्रिया पर बल देने के लिए 'है' यानी क्रिया का पंक्ति के प्रारम्भ में प्रयोग किया गया है, जो व्याकरण की दृष्टि से तो गलत है लेकिन पंक्ति को अर्थवानल बनाने के लिए यह आवश्यक है। गद्य और पद्य के अन्तर का एक कारण यह भी है, कि कविता की भाषा ज्यादा सृजनात्मक है। कम शब्दों में ज्यादा भाव ग्रहण कराने की क्षमता कविता की निजी विशेषता है। इसके विपरीत गद्य में अर्थ को, भाव को फैलाकर कहना पड़ता ह। एक जीवन-सूत्र को समझाने के लिए गद्यकार को सामाजिक जीवन की परिस्थितियों एवं घटनाओं के जाल को बुनना पड़ता है। कह सकते हैं कि पद्य जीवन में भाव की पुनर्रचता है तो गद्य सामाजिक जीवन की जटिलता को विश्लेषित करने का बौद्धिक प्रयास। इस संदर्भ में आइए अब हम इस प्रश्न पर विचार करें कि गद्य और पद्य के रूप ग्रहण करने का बुनियादी आधार क्या है? गद्य को विचार से जोडा़ गया है और पद्य को भाव से। गद्य इसीलिए रूककर, ठहरकर लिखा जाता है, उसमें शुष्कता होती है, जबकि पद्य में विराम नहीं होता, लय होती है, संगीत होता है, इसीलिए कविता में तन्मय करने की क्षमता, भावोद्रेक की क्षमता पद्य की अपेक्षा ज्यादा तीव्र होती है। इसीलिए सारे दर्शन, विज्ञान, गणित इत्यादि का रूप गद्यात्मक होता है, जबकि पद्य में भाव के उद्रेक पर विशेष बल होता है।

1.3.2 कविता की परिभाषाएँ

साहित्य एवं कविता को परिभाषित करने का कार्य शताब्दियों से चला आ रहा है, जो अब भी जारी है। लेकिन अभी तक इसे पूर्णरूपेण परिभाषित नहीं किया जा सका है। कारण यह कि मनुष्य की अनुभूति के असंख्य रूप हैं। जितने मनुष्य, उतनी अनुभूति। जितने लेखक-पाठक उतनी अनुभूति। हालाँकि परिभाषाओं का काम अनुभूतियों को संयोजित करना होता है, फिर भी सारी अनुभूतियों को एक परिभाषा में संयांजित करना कठिन जान पड़ता है। इसीलिए परिभाषा को एक लेखक की ही अनुभूति के रूप में स्वीकार किया गया है।

भारतीय परिभाषाएँ

साहित्य या कविता की जो सर्वाधिक प्राचीन परिभाषा मिलती है, वह है भामह की ‘शब्दार्थ सहितौ काव्यम्’। यह परिभाषा शब्द और अर्थ के माध्यम से साहित्य और समाज के अंतर्सम्बन्धों पर विचार किया गया है। इसी प्रकार मम्मट की परिभाषा‘तदोषों शब्दार्थो सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि’ में गुण युक्त एवं दोष मुक्त काव्य की ओर संकेत किया गया है। इस परिभाषा में ध्वनि की ओर संकेत किया गया है। आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा- ‘‘वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्’’ कहकर कविता का कार्य रस की उत्पत्ति करना मान है। आगे चलकर पंडितराज जगन्नाथ ने ‘रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्’’ कहकर कविता का कार्य सौन्दर्य की वृद्धि करना माना । प्राचीन काव्यशास्त्र में काव्य की ये चार परिभाषएँ स्पष्ट, प्रचलित और प्रसिद्ध रही है। लेकिन क्या काव्य में वक्रोक्ति, रीति ध्वनि एवं औचित्य को मुख्य मानने वाले दर्शन में भी क्या कविता की परिभाषा का दर्शन नहीं है? वस्तुतः प्राचीन कविता की परिभाषा में कविता के सामाजिक, सौन्दर्यशास्त्रीय एवं साहित्यिक तत्वों को संयोजित करने पर बल दिया गया है । क्रमशः साहित्य के भेद स्पष्ट होने लगे। गद्य और पद्य के भेद स्पष्ट होने लगे और आलोचक कविता की परिभाषा की ओर मुड़े। आधुनिक काल में कविता की जो परिभाषाएँ हुईं, उनमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परिभाषा विशेष रूप से चर्चित रही। आचार्य शुक्ल ने कविता की परिभाषा देते हुए लिखा है - ‘‘ आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है तथा हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है । हृदय की मुक्ति के लिए मनुष्य की वाणी जो विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं ।’’ शुक्ल जी की इस परिभाषा में ‘मुक्तावस्था’ शब्द ध्यातव्य है । मनुष्य का जीवन परस्पर राग-द्वेष, स्वार्थ इत्यादि मनोभावों के संकुचित घेरे में विचरण करता रहता है। कविता इन सारे घेरे को तोड़कर मनुष्य को उसके मूल स्वरूप से परिचित कराती है। शुक्ल जी के ही शब्दों में’ लोक सामान्य की भावभूमि पर ले जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के ही समकालीन जयशंकर प्रसाद ने कविता को’ आत्मा की संकलपनात्मक अनुभूति’ कहा है। यानी कविता का कार्य आत्मा का परिष्कार करना है । सुमित्रानंदन पंत ने कविता को ‘परिपूर्ण छणों की वाणी’ कहा है। यह कविता की व्यापाक परिभाषा है । प्रश्न यह है कि मनुष्य के परिपूर्ण छण कौन से होते हैं? जब हम सारे ब्राह्य बंधानों से मुक्त होकर मनुष्यता के प्रकाश से प्रकाशित हो जाते हैं, तब वह क्षण हमारे लिए परिपूर्ण झण कहा जा सकता है। इसी प्रकार मुक्तिबोध के कविता को ‘जन चरित्री; कहा है। धूमिल ने उसी प्रकार कविता को आम आदमी की चीत्कार कहा है।

पाश्चात्य परिभाषा

भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा की तरह ही पश्चिम में भी कविता को परिभाषित करने का प्रयास होता रहा है। यहाँ हम पश्चिमी आचार्यों के मतों को कविता के संदर्भ में देखेंगे व उनको विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे। कॉल सानबैग ने कविता की परिभाषित करते हुए लिखा है‘- ‘‘Poetry is the search of Syllables to Short at the barriers of the unknown adn th unknowable’’

इसी प्रकार वड्सवर्थ की प्रसिद्ध परिभाषा देखें -

‘‘Poetry is the Spiontaneous ovesflow’’

मैथ्यू आर्बल्ड की प्रसिद्ध परिभाषा देखें-

''Poetry is a at bottom, a Critisim of life''

इसी प्रकार शैली की परिभाषा देखें-

''Poetry is a record of the best and happiest moments of the hapisest and best mind''

कार्लाइल ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है - ''Poetry is a musical thought''

अभ्यास प्रश्न 1

(क)- रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. कविता को मुक्तिबोध ने ....कहा है। (मुक्तावस्था/जनचरित्री/परिपूर्ण छण)
2. रामचन्द्र शुक्ल ने कविता को................................कहा है। (संकल्पनात्मक अनुभूति/मुक्तावस्था/रमणीय।)
3. विश्वनाथ ने कविता को .... माना है। (ध्वनियुक्त/ रसयुक्त/वक्रोक्तिपूर्ण)
4. पंडितराज जगन्नाथ ने कविता को .... माना है। (रमणीय/रसयुक्त/ ध्वनियुक्त)
5. कविता की सबसे प्राचीन परिभाषा..........................की है। (भामह / भारत/मम्मट)।

(ख) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. गद्य-पद्य मिश्रित विधा को चम्पू काव्य कहा गया है।
2. मुक्त छन्द का आरम्भिक प्रयोक्ता वाल्ट हिटमैन है।
3. 'नदी के द्वीप' कविता अज्ञेय की है।
4. कविता को संगीतमय विचार- कार्लाइल ने कहा है।
5. 'शब्दार्थी सहितौ काव्यम्' परिभाषा भामह की है।

2 - टिप्पणी कीजिए।

1.गद्य-पद्य में अन्तर ?

....

....

....

....

....

....

....

....

2. कविता की परिभाषा ?

....

....

....

....

....

....

....

....

1.4 पुरानी और नयी कविता की सैद्धान्तिकी

साहित्य के विकासक्रम में साहित्य के सिद्धान्त एवं उसके साहित्य रूप भी बदलते जाते हैं। ऐसी स्थिति में कविता के मूल्यांकन के औजार भी बदल जाते हैं। हर युग का समाज अपनी आन्तरिक व बाह्य संरचना में पिछले समाज के मुकाबले कुछ भिन्नता लिए हुए होता है। स्वाभाविक है कि साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन हो जाता है । ऐसी स्थिति में पुरानी और नयी कविता की सैद्धान्तिकी में अन्तर आ जाता है।

1.4.1 प्राचीन कविता की सैद्धान्तिकी-

प्राचीन कविता के सिद्धान्त को समझने के लिए हमे प्राचीन समाज के आन्तरिक संगठन को भी समझना होगा। प्राचीन समाज की आधारभूत आदर्शपूर्ण जीवन, संघटित व्यक्तित्व एवं आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि हुआ करती थी। इस दृष्टि से कविता के सिद्धान्त भी तय किये जाते थे । इस प्रकार के उदात्त जीवन मूल्य केवल भारतीय समाज में ही नहीं थे, वरन् किसी भी प्राचीन संस्कृति में देखने को मिलते हैं। यूनानी संस्कृति में प्लेटो का 'आदर्श राज्य' इसी प्रकार की परिकल्पना है, जिस समाज में ऐसे साहित्य को प्रश्रय दिया जाता था जो जनता के भीतर उदात्त जीवन मूल्य का निर्माण कर सकें । अरस्तु का विरेचन सिद्धान्त इसी प्रकार का नैतिक सिद्धान्त है जिसमें मनुष्य के अपस्कृित, अस्वरूप विचारो से मुक्त कर उसे सृजनात्मक दिशा प्रदान करनी थी। एक बडा़ आदर्श एक निश्चित रूप रचना के बिना असम्भव होता है। प्राचीन कविता के सिद्धान्तकारस यह मानते थे कि बडी़ कविता बिना बड़े प्लॉट (विषयवस्तु) के संभव नहीं है। इसीलिए प्राचीन कविता में सर्वाधिक महत्व एवं प्रचलन 'महाकाव्य' विधा का रहा हें 'महाकाव्य' विधा की सैद्धान्तिकी देते हुए लिखा गया है कि रचना बडी़ हो, नायक कुलीन हो (राजा हो), रस एवं छन्द का ध्यान रखा जाये एंव किसी महत्व उद्देश्य का वर्णन हो । स्पष्ट है कि ऐसे सिद्धान्त की रचना को काम्य थे जो उदात्त जीवन मूल्य का निर्माण कर सकें। काव्य का प्रयोजन बताते हुए आचार्य मम्मट ने लिखा है-''

'काव्यंयशसेर्थकृतेव्यवहारविदेशिवेतरक्षतयेसद्यःपरिनिर्वृतयेकान्तासम्मितयोपदेशयुजे'

' अर्थात् काव्य से हमे अर्थ, यश, व्यवहारज्ञान, अशिव विचार से मुक्ति, तीव्र भावोद्रेक एवं मधुर उपदेश की प्राप्ति होती है । इस परिभाषा में अशिव विचार से मुक्ति एवं मधुर उपदेश महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण भारतीय साहित्यशास्त्र में एवं साहित्य में नैतिकता का प्रश्न, आनन्द का प्रश्न, आस्वादन का प्रश्न मुख्य रहा है ।

1.4.2 नवीन कविता की सैद्धान्तिकी-

नयी कविता का स्परूप एवं सैद्धान्तिकी प्राचीन कविता से भिन्न रूप लिए हुए है। प्रश्न यह है कि आधुनिक कविता की सैद्धान्तिकी या सौन्दर्यबोध क्या है? जैसा कि पूर्व में आपने पढा़ कि प्राचीन कविता अपने मूल रूप में आदर्शात्मक कविता थी, इसीलिए उसकी सैद्धान्तिकी पर भी इसक प्रभाव पडा़ । आधुनिक कालीन परिस्थितियों में प्राचीन काव्य मूल्य ढह से गये, फलतः बदली हुई परिस्थितियों में नये काव्य मूल्य या सैद्धान्तिकी विकसित हुए। आधुनिक कविता की

सैद्धान्तिकी के मूल में बदली हुई परिस्थितियों के अलावा सृजनशील मानव की संवेदना, नवजागरण, वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप विकसित नवीन चिन्तन -मूल्य ने नयी कविता की सैद्धान्तिकी गढ़ने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इस दृष्टि से देखें तो आधुनिक कविता से सिद्धान्त-निर्माण में नवजागरण का केन्द्रीय महत्व है। नवजागरण के प्रमुख आधारभूमियों की हम संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

आपने अध्ययन किया कि प्राचीन कविता का केन्द्रीय ढाँचा विश्वास या आस्था पर आधारित था, किन्तु आधुनिक कविता की सैद्धान्तिक तर्क पर आधारित है। तर्क ने आधुनिक कविता को धार देने का काम करता है। तर्क संवलित कविता ने पुराने विश्वासों पर प्रश्न चिह्न खडा़ किया। तर्क को विकसित करने में आधुनिक ज्ञान- विज्ञान ने महत्पूर्ण योगदान दिया। आधुनिक कविता इसी कारण नियतिवाद को अस्वीकार करती है और वह वैज्ञानिक कार्य-कारण श्रृंखला पर बल देती है। प्राचीन समाज एवं कविता हर घटना को किसी अदृश्य सत्ता से संचालित मान लेती थी जबकि आधुनिक कविता वैज्ञानिक आवष्किारों के कार्य-कारण से प्रेरणा प्राप्त करती है। इसीलिए आधुनिक कविता ज्यादा प्रामाणिक और व्यक्ति मन एवं समाज को समझने में ज्यादा सरल रही। प्राचीन कविता अपने सारे तर्क ईश्वर को केंन्द्र में 'मानव' है। 'राम तुम मानव हो/ईश्वर नहीं हो क्या' मैथिलीशरण गुप्त की इस पंक्ति में पराम्परिक रूप से व्याप्त ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न खडा़ किया गया है। कबीर भी तार्किक है फिर भी कबीर को आधुनिक संवेदना का कवित क्यों नहीं कहा गया है? क्यों कि कबीर के सारे तर्क ईश्वर की ऊर्जा, प्रेरणा से संचालित हुए हैं। इसीलिए आधुनिक कविता की संवेदना मानव-समाज को ही प्रमाण मानकर विकसित हुई है। ईश्वर की केन्दीय स्थिति के अस्वीकार ने भाव संवलित कविता के स्थान पर बुद्धि संवलित कविता को प्रतिष्ठापित किया। नवजागरणकालीन मूल्यों का प्रभाव आधुनिक कविता पर पडा़ है। इसीलिए आधुनिक कविता आधुनिक जीवन- मूल्यों को विकसित कर सकी है। ये जीवन मूल्य कई प्रकार से किसित हुए हैं। हिन्दी कविता के संदर्भ में बात करें तो हम देखते हैं कि हिन्दी कविता ने आधुनिक मूल्यों को स्वीकार करने में लम्बी अवधि का सहारा लिया है। भारतन्दुकालीन संस्कार मूलतः प्राचीन मूल्यों से जुटा हुआ था। द्विवेदीयुग संक्रान्तिकाल कहा जा सकता है/छायावाद का युग वास्तव में आधुनिक मूल्यों का वाहक बनता है और सही रूप में नयी कविता में आधुनिक मूल्य केन्द्रीय स्थान प्राप्त कर पाते हैं। आइए अब हम आधुनिक जीवन मूल्य को स्पष्ट करने वाले कुछ परिभाषिक शब्दावलियों का परिचय प्राप्त करें। प्रतीकवाद कविता के क्षेत्र का प्रमुख आन्दोलन था, जो फ्रांस में पहले चला। जीवन की जटिलता के मध्य कविगण ऐसी शब्दावली की तलाश में थे जो जटिल जीवन के यर्थाथ का बसूबी अंकन कर सके। प्रतीकवाद ने ऐसी शब्दावली के प्रयोग पर बल दिया, जिसमें छन्द के लोकप्रचलित अर्थ की अपेक्षा शन्द के नये गूढ़ अर्थ पर बल होता था। शब्द के घिसे-पिटे अर्थ नए यर्थाथ का अंकन नहीं कर पाते तो लेखक प्रतीक का प्रयोग करता है। प्रतीकवाद का प्रयोग ऐसी ही साहित्यिक- सांस्कृतिक परिस्थितियों की देन है।

साहित्य की भाषा जब कुछ ज्यादा ही स्थूल और इकहरी हो गई, तब कवियों ने काव्य में निंव के

प्रयोग पर बल दिया। निंब, अलंकार के ही संवेदित रूप हैं। अलंकार में जहाँ कविता को सजाने पर ज्यादा बल है वहीं निम्ब में पाठक को संवोदित करने पर। विम्ब का काम चित्र निर्माण करना है अर्थात् पाठक जब किसी काव्य को पढे तो उसके समाने वर्ण्य-विषय का चित्र उपस्थित हो जाये, ऐसी क्षमता मुक्त कविता के प्रयोग को ही बिंब कहा गया। ललित कला एंव काव्य के अंतर्सम्बन्ध पर जब से नये ढंग से विचार किया जाने लगा, तब से भी कविता में निंब का प्रयोग बढा। काव्य में ललित कला के आग्रह ने काव्य को स्थापत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत से मुक्त करने पर बल दिया। प्राचीन कविता में दर्शन जहाँ अनिवार्य पक्ष समझा जाता था वहीं आधुनिक कविता में काव्य को ज्ञान के समस्त अनुशासनों के बीच रखकर देखने की परम्परा ।इतिहास के प्रति मूल्यांकन एवं पुनर्मूल्याकन का काम आधुनिक कालीन चेतना (नवजागरण कालीन चेतना) का एक भेदक लक्षण है। बांग्ला के माइकेल मधुसूदन दास की 'मेघनाद वध' भारतीय साहित्य में इस ढंग का प्रथम प्रयास है। हिन्दी में इसी ढंग का प्रयास 'पुनरूत्थान वाद' कहा गया। जयशंकर प्रसाद, निराला, इत्यादि की कविताओं को पुररूत्थानवादी कहा गया है। नयी कविता के समय में धर्मवीर भारती की अधिकांश कविताएँ इतिहास के ट्रेजिक बोध पर आधारित है। इतिहास के ट्रेजिक बोध को व्यक करने के लिए ही आधुनिक कविता में 'मिथकों' का बहुतायत प्रयोग हुआ है। निथक, इतिहास, पुराण का मिश्रित रूप है , जिसमें यर्थाथ के गूढ़ प्रश्नों को उद्घाटित करने के लिए कवियों ने व्यंग्य का सफलतापूर्वक प्रयोग किया।

तालिका (गणपति चन्द्र गुप्त के इतिहास से)

साहित्य के विकास की रूपात्मक व्याख्या

क्षेत्र	विकासोन्मुखता के लक्षण	ह्रा-सोन्मुखता के लक्षण
विषय वस्तु	(कतत्वों क (ी संघटना (खतत्वों की सम्बद्धता (गतत्वों की विविधता - घआन्तरिक सुगठितता तत्वों की - डकेन्द्रीय तत्व की सुदृढ़ता -.	कतत्वों का विघटन एवं - क्षय खतत्वों की असम्बद्धता - गतत्वों की न्यूनता - घतत्वों का आन्तरिक - संबंध शिथिल डकेन्द्रीय तत्व दुर्बल एवं - शून्य -प्रभाव
आन्तरिक प्रवृत्तियाँ	चभावात्क प्रवृ -त्तियों का विषयवस्तु - के अनुरूप विस्तार, वैविध्य एवं सुसम्बद्धता।	च-भावात्मक प्रवृत्तियों का कुचित एवं सीमित हो जाना।
रूपद	छ साहित्य के रूप भेदों का निश्चित एवं सुस्पष्ट होता -। जरूपों का वैविध्य एवं विस्तार। -	छरूप भेदो का अनिश्चित - जाना एवं अस्पष्ट हो। ज रूपों का संकोच -।
शैली	झशैली परिष्कृत -, सुसंस्कृत, प्रौढ़ लाक्षणिक एवं	झ'- शैली रूढ़, विश्रृंखलित,

व्यंग्यात्मक।	अभिधात्क, कृत्रिम एवं दुरूह।
साहित्य का आदर्श एवं प्रयोजन ञसाहित्य के मानदण्ड एवं - आदर्श, सुव्यवस्थित व निश्चित।	ञ मानदण्ड का आदर्श - अव्यवस्थित एवं अनिश्चित। टप्रयोजन अस्पष्ट - ।

1.5 पुरानी कविता का काव्य रूप और समाज-

प्राचीन कविता की समझ के लिए हमें प्राचीन समाज के धर्म- संस्कृति- भाषा या कहें कि मूल तत्व को समझना हमारे लिए आवश्यक है। प्राचीन समाज चाहै वह भारतीय समाज हो या पश्चिमी उनकी मूल प्रेरणा शक्ति धर्म और अध्यात्म रहै हैं। कविता के काव्य रूप और समाज के अंतर्सम्बन्धों पर चर्चा करने से पूर्व यहाँ प्राचीन कविता के काव्य रूप पर संक्षेप पमें विचार करना उपयुक्त होगा। हमें मालूम है कि साहित्य के इतिहास में काव्यरूपों का बहुत महत्व है। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि कोई काव्य रूप किसी युग का भी सूचक बन जाता है। जैसे अपने साहित्य के इतिहास में रामचन्द्र शुक्ल टिप्पणी की है । जिस प्रकार गाहा कहने से प्राकृत का बोध होता है उसी प्रकार दूहा कहने से अपभ्रंश का। स्पष्ट है कि उस युग में गाहा या दोहा छन्द ही उस युग की संवेदना की अभिव्यक्ति को धारण करने में सक्षम सिद्ध हुए थे । इसी प्रकार पश्चिम में भी कई प्रकार के काव्य रूप प्रचलित थे, जो क्रमशः युग- समाज के परिवर्तन के साथ समाप्त हो गये। पश्चिमी काव्य रूपों की परम्परा युनान से मानी जाती है। यूनान में काव्य रूप में महाकाव्य सर्वाधिक प्रचलित विधा थे। इलियद एवं ओडिसी होकर के प्रसिद्ध महाकाव्य माने गये है। इसी प्रकार ग्रीक-रोमन में कैटीलरू 64 जो कैटीलस की रचना है, में लम्बी कविता के फॉर्म है। राई में अंतिम शब्द के ध्वनि साम्य पर बल दिया जाता था, जबकि ऑलटेशनमें एक शब्द पर बल। इसी प्रकार गीत काव्य रचना के प्रारंभिक रूप थे जो सभी समाज में प्रचलित थे। गीत का एक प्रकार ओड है जिसमें लेखक भावनात्मक उद्रेक के साथ स्वयम् या परिवार का गुणज्ञान किया करता था। इसी प्रकार (जिसे म्च्ल्स्स्प्च्छ कहा गया है।) बैलेड गीत काव्य परम्परा भी चलती है जिसमें विशेषकार युद्ध और प्रेम (श्रृंगार) काव्य विषय हुआ करते थे। इटली का सॉनेट भी प्रसिद्ध काव्य छंद रहा है, जो 14 पंक्तियों में लिखा जाता है। सॉनेट अंग्रेजी से होता हुआ हिन्दी में आया है। हिन्दी के दोहा छंद की तरह अंग्रेजी साहित्य में कपलेटकलारूप की परम्परा रही है। फारसी साहित्य की ग़ज़ल परम्परा तो प्रसिद्ध है ही। भारतीय काव्यरूपों की परम्परा भी काफी समृद्ध रही है। युग-समाज की विकासात्मक स्थिति ने काव्यरूपों की समृद्ध परम्परा को जन्म दिया है। काव्य रूप के सर्वाधिक प्रचलित रूप गीत एवं महाकाव्य रहै हैं। गीत जहाँ भावात्मक उद्रेक की स्थिति में निसृत हुए हैं, वहीं महाकाव्य विचारशील मनःस्थितियों के परिणाम है। गीत प्रारम्भ में सामूहिक रूप में ही गाये जाते थे विशेषकर कृषि-कर्म के समय। क्रमशः व्यक्तिगत मनःस्थितियों के उद्घाटन के माध्यम बनते गये । प्राचीन भारतीय समाज की प्रेरक भाव भूमि नैतिकता, धर्म, अध्यात्म या आदर्श रहै हैं। इन सारे लक्ष्यों की प्राप्ति महाकाव्य रूप के माध्यम से ज्यादा सुगम रही है। संस्कृत की गीत काव्य परम्परा क्षेमेन्द्र, जयदेव, विद्यापति

से होती हुई सूरदास एवं मीराबाई में पदों के रूप में और पुष्ट हुई है। प्राचीन काव्य रूप में खण्डकाव्य की भी परम्परा रही है, जो हिन्दी साहित्य तथा चली आई है। प्राकृत एवं अप्रभंश की मुक्तक काव्य परम्परा ने सामान्य जीवन की यौन भावनाओं एवं प्रणय क्रियाओं का चित्रण शुद्ध लौकिक एवं यर्थाथमूलक दृष्टि से किया है। इस परम्परा में हाल की ‘ गाथा सप्तशती’, अभरूक की अभरूक शतक एवं बिहारी की संतसई को लिया जा सकता है। यह मुक्तक परम्परा की श्रेणी में आती है। इस परम्परा में एक धारा साखी या दोहों की है। जिसमें सामाजिक जीवन पर कवि विचार करता है। यह परम्परा सिद्धों-नाथों से होती हुई कबीरदास में अपनी पूर्णता को पहुँची है।

प्रबन्ध काव्य परम्परा में जैन कवियों द्वारा रचित चरित काव्यों का विशेष महत्व है। इस तरह के चरित काव्यों में पउमचरिउ, पद्मचरित, लायकुमार परिउ, जसहर चरिउ, भविसयन्त कहा, करकंड चरिउ इत्यादि प्रमुख है। काव्य रूपों की दृष्टि संवाद शैली भी हिन्दी काव्य में प्रचलित रही है। ‘पृथ्वीराज रासो’ की रचना शुक-शुकी संवाद के रूप में तथा ‘कीर्तिलता’ की रचना भृंग-भृंगी संवाद के रूप में हुई है। काव्य रूप की दृष्टि से चतुष्पदी काव्यों की रचना भी हुई है। चतुष्पदी, चउपई, चौपई संज्ञक प्रबन्धात्मक रचनाएँ भी बहुतायत रूप में मिलती है। रल्ह कवि की जिनगी चौपाई एवं विनयचन्द्र सूरि की नेमिनाय चउपई इस रूप की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। मध्यकाल की प्रसिद्ध पद परम्परा सिद्धों के चर्यापदों से प्रारम्भ होती है। यह परम्परा कबीर से होते हुई सूरदास और मीरा में पुष्ट होती है। अमीर खुसरो ने एक नये काव्य रूप को साहित्यिक मान्यात प्रदान की। पहै लियाँ, सुखने, और गज़ल को अमीर खुसरो ने साहित्यिक मान्यता प्रदान की। इसी प्रकार आदिकाल में बेलि काव्य-परम्परा में राउल् बेलि की गणना की जाती है। इस ग्रन्थ में पद्य के साथ गद्य का भी प्रयोग किया गया है। इसे ‘चम्पू काव्य’ गद्य-पद्य मिश्रित विधा भी कहा जाता सकता है। यह कृति धारा में उपलब्ध शिलाखंड पर अंकित है। कोई चाहै तो इसे शिलांकित कृति भी कह सकता है। इसी काल में लोकोक्ति काव्य परम्परा में दामोदर भट्ट ने उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

1.6 आधुनिक कविता का काव्य रूप और समाज-

आपने प्राचीन काव्यरूपों के बारे में संक्षेप में पढा। आपने देखा कि महाकाव्य प्राचीन काव्यरूपों का आधार स्तम्भ रहा है। चाहै पश्चिमी समाज रहा हो यार भारतीय मूल ढाँचा, काव्य का आदर्श स्वरूप ही था। पश्चिम में ट्रेजिडी या दुखान्त नाटकों की एक परम्परा अवश्य मिलती है, लेकिन काव्य रूप में नैतिकता एवं आदर्श की ही प्रमुखता रही। प्रश्न उठाया जा सकता है कि आधुनिक काल आते ही प्राचीन काव्य रूप प्रचलन से बाहर क्यों हो गये या समाप्त क्यों हो गये। दोहा, चौपाई, सोरठ, छप्पय, हरिगीतिका, कुण्डलिया जेसे छन्द पार्श्व में चले जाते हैं और उनके स्थान पर कविता (लम्बी कविता, छाटी कविता) का रूप प्रचलन में आ जाना है। प्राचीन काव्यरूप पुराने विषयों के तो अनुकूल रहै लेकिन नवीन विषयों (समाज की गतिशीलता, व्यवस्था परिवर्तन, सामाजिक अंतर्विरोध एवं विसंगति जैसे प्रश्न) का निर्वहन कर पाने में अक्षम सिद्ध होने लगे। आधुनिक युग में कविता को भक्ति-भक्ति- श्रृंगार जैसे विषयों से युक्त किया गया एंव उसे व्यापक सामाजिक समस्याओं से जोडा़ गया।

1.7 कविता के ढलने की प्रक्रिया या इतिहास-

कविता मानवीय या कहें चराचर जगत की संवेदनाओं का लालित्यपूर्ण ढंग से किया गया अभिव्यक्तिकरण है। इसीलिए रामचन्द्र शुक्ल ने कविता को हृदय की मुक्तावस्था' या 'भावयोग' कहा है। बद्ध मनुष्य से युक्त मनुष्य के बीच कविता एक माध्यम के रूप में उपस्थित होती है। कविता के बनने की प्रक्रिया और उसके रसानुभूति की प्रक्रिया तक एक लम्बी प्रक्रिया चलती रहती है।

1.8 सारांश/मूल्यांकन

बी.ए.एच.एल-201 की यह प्रथम इकाई है। यह इकाई पद्य साहित्य की सैद्धान्तिक पर केंद्रित है। इस इकाई का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि-

- कविता 'भावयोग ' है।
- कविता का कार्य हमें संकुचित घेरे से मुक्त कर लोक सामान्य की भावभूमि पर पहुँचा देना है।
- गद्य और पद्य में तात्विक भेद है। गद्य की अपेक्षा पद्य ज्यादा कल्पनात्मक, बिम्बात्मक होता है।
- प्राचीन कविता और नवीन कविता के गठन में अन्तर है। प्राचीन कविता जहाँ मूलरूप से आदर्शत्मक गठन लिए होती थी, वहीं आधुनिक कविता यर्थाथवादी संवेदनों के आधार पर निर्मित हुई है।
- प्राचीन काव्यरूपों और नवीन काव्यरूपों में अन्तर है। महाकाव्य काव्यरूप का स्थान कविता ने ले लिया है।
- प्राचीन कविता में जो स्थान अलंकार का होता था, वही आधुनिक कविता में बिम्ब और प्रतीक का है।

1.9 शब्दावली

- मुक्तावस्था - संकुचित सीमा से मुक्त मन
- चम्पू काव्य - गद्य-पद्य मिश्रित विधा।
- गद्यगीत - गद्य को गीतात्मक रूप में कहने की शैली
- अमानिशा - अंधेरी अमावस की रात।
- बिंब - कविता में चित्र खडा़ करना/ होना।
- प्रतीक - शब्दों के माध्यम कसे किसी और अर्थ का निर्माण
- मिथक - इतिहास -पुराण के मिश्रण से उत्पन्न।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)

1. जनचरित्री।
2. मुक्तावस्था

3. रसयुक्त
4. रमणीय
5. भामह

(ख)

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा,
2. चिंतामणि 1 - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी संभा।

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिथक से आधुनिकता तक - मंघ, रमेश कुंतल, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2008।
2. दुस्समय में साहित्य - शंभुनाथ, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2002

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कविता की प्रमुख परिभाषाओं का वर्णन कीजिए।
2. 'कविता और समाज' पर निबन्ध लिखिए।
3. 'काव्यरूप और समाज' पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 2 पद्य साहित्य का वर्गीकरण एवं अंतर्सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पद्य साहितय का वर्गीकरण
 2.3.1 पद्य साहित्य का वर्गीकरण
 2.3.2 पद्य साहित्य वर्गीकरण के तात्विक आधार
 2.3.3 पद्य साहित्य का इतिहास
2.4 पद्य साहित्य का ऐतिहासिक स्वरूप
 2.4.1 पद्य साहित्य का प्राचीन स्वरूप
 2.4.2 पद्य साहित्य का मध्यकालीन स्वरूप
 2.4.3 पद्य साहित्य का आधुनिक स्वरूप
2.5 पद्य साहित्य का भाषागत संदर्भ
2.6 हिन्दी काव्य की पूर्ण पीठिका
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

स्नातक द्वितीय वर्ष के प्रथम प्रश्न पत्र की यह दूसरी इकाई हैं। यह इकाई पद्य साहित्य के वर्गीकरण एवं उनके अंतर्सम्बन्ध पर केंन्द्रित है। इसके पर्व आपने पिछली इकाई में पद्य साहित्य की सैद्धान्तिकी का अध्ययन कर लिया है। आपने उस इकाई में अध्ययन किया कि गद्य और पद्य का तात्त्विक भेद क्या हैं आने अध्ययन किया कि विभिन्न काव्यरूपों के विभाजन का तात्विक आधार क्या है। आपने यह भी अध्ययन किया कि कविता का सामजशास्त्र किन तत्वों पर आधाररित होता है और वह कैसे निर्मित होता है। इस इकाई में आप पिछली इकाई के क्रम में ही पद्य साहित्य के काव्य रूपों को ऐतिहासिक विकास क्रम में अध्ययन करेंगे।

पद्य साहित्य के अनेकों भेद एवं प्रभेद प्रचलित रहै हैं। एक विशेष समय में रचना प्रक्रिया की एक विशेष शैली प्रचलित रही है। रचना प्रक्रिया की एक विशेष शैली प्रचलित रही है। रचना प्रक्रिया की वह शैली कभी ऐतिहासिक कारणों, कभी भौगोलिक परिस्थितियों तो कभी भाषा- वैज्ञानिक कारणों के रूप में प्रचलन में रही है। पद्य साहित्य के विकास क्रम को भली-भाँति समझने के लिए हम उसके ऐतिहासिक- सांस्कृतिक विकास क्रम को इस इकाई में समझने का प्रयास करेंगे। पद्य साहित्य के ऐतिहासिक विकास क्रम के संदर्भ में सुविधा की दृष्टि से प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक युग का अध्ययन करना समीचीन होगा।

2.2 उद्देश्य

बी0एएचएल- 201 की यह दूसरी इकाई है। यह इकाई पद्य साहित्य के वर्गीकरण एवं उनके अंतर्सम्बन्ध पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- पद्य साहित्य का वर्गीकरण समझ सकेंगे।
- पद्य साहित्य के इतिहास को जान सकेंगे।
- पद्य साहित्य - वर्गीकरण के तात्विक आधार को समझ सकेंगे।
- पद्य साहित्य के भाषागत विकास क्रम को समझ सकेंगे।
- हिन्दी काव्य की पूर्ण-पीठिका या विकास क्रम को समझ सकेंगे।

2.3 पद्य साहित्य का वर्गीकरण

पद्य साहित्य संसार का सर्वाधिक प्राचीन साहित्य रूप है। विधाओं के इतिहास पर जब हम चर्चा करते हैं तो हमारे सामने प्रमुख रूप से दो विधाएँ उपस्थित होती है- कविता और कहानी। इन विधाओं में कौन सी विधा पहले अस्तित्व में आई, यह निश्चयपूर्णक नहीं कहा जा सकता। केवल अनुमान किया जा सकता है। पद्य साहित्य के साथ श्रम और कहानी के साथ आराम, फुर्सत के क्षण जुड़े हुए हैं। कविता का जन्म इसीलिए, खासतौर पर लोकगीतों का सम्बन्ध श्रम के बीच हुआ। कृषि कर्म एवं अन्य श्रम के साथ गीत गाना भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों सामाजिक परम्पराओं में हमें देखने को मिलता है। व्यक्ति जब बहुत संघर्ष में होता है, कष्ट में होता है या कभी प्रसन्न भी होता है, तब भी उसकी संवेदना कविता के रूप में प्रस्फुलित होती है। मनोवैज्ञानिक विकास क्रम की दृष्टि से भी कविता, कहानी से प्राचीन विधा ठहरती है।

कविता के इतिहास पर जब हम बात करते हैं तब हम परिष्कृत साहित्य (परिनिष्ठित साहित्य) से पूव्र लोक साहित्य का इतिहास देखते हैं। पद्य साहित्य के इतिहास को जानने से पूर्व आइए हम पद्य साहित्य के वर्गीकरण को समझने का प्रयास करें-

2.3.1 पद्य साहित्य का वर्गीकरण

पद्य साहितय का वर्गीकरण

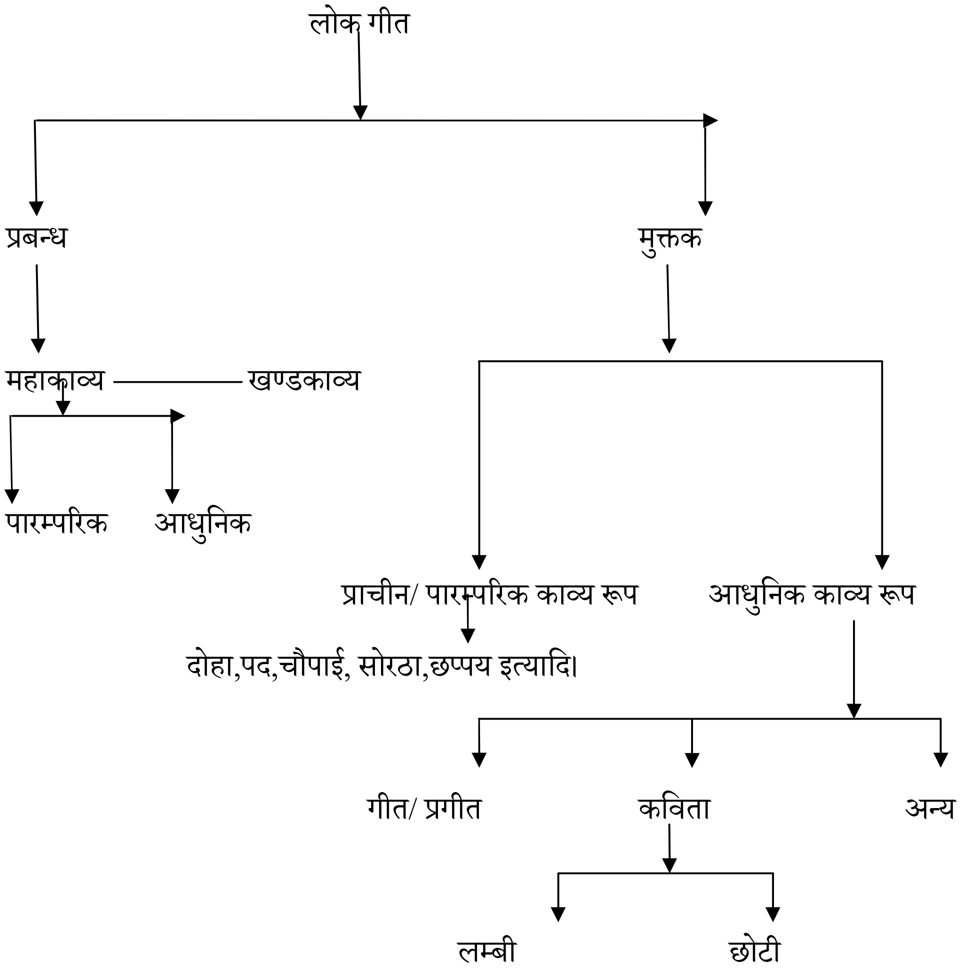

काव्य (आरेख)

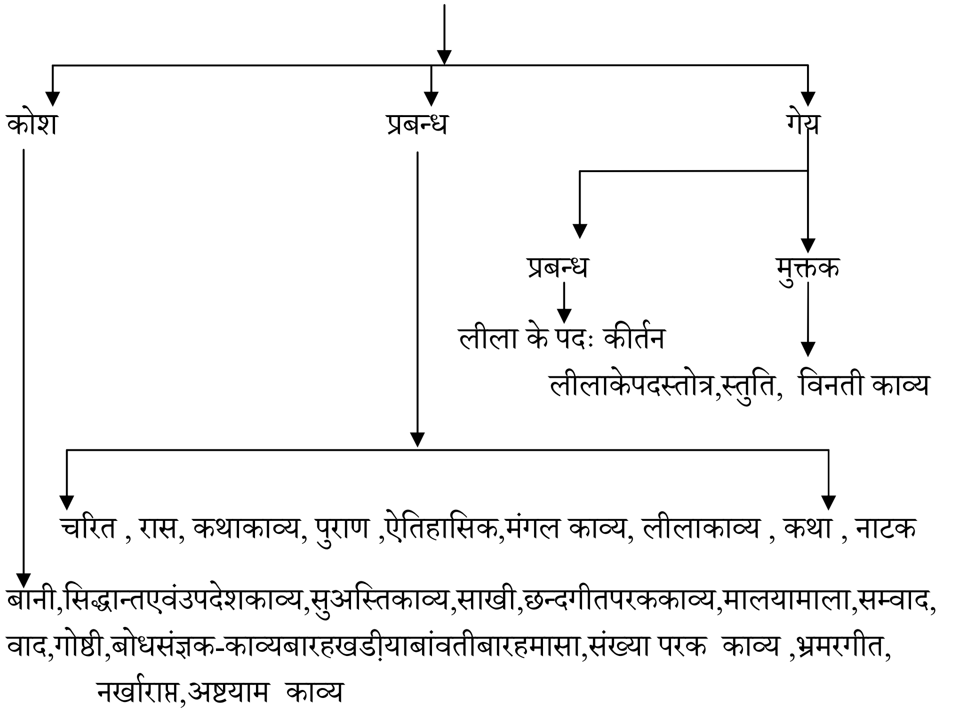

2.3.2 पद्य साहित्य वर्गीकरण के तात्विक आधार

पूर्व में आपने अध्ययन किया कि कविता साहित्य की सबससे प्राचीन विधा हैं देशकालानुसार इसके स्वरूप एवं वर्ण्य-विषय में परिवर्तन होता रहा है। इस विधा के वर्व्य-विषय वहन करने की क्षमता के कारण इसकी विभिन्न शाखाएँ या काव्य रूप विकसित होते गए हैं, जो परस्पर भिन्न होते हुए भी तात्विक रूप से एक है। पद्य साहित्य वर्गीकरण के कई आधार हैं, जिसमें मुख्यतः वर्व्य-विषय और काव्य रूप की भिन्नता हैं। आपने अध्ययन किया कि वेद, उपनिषद्, इत्यादि से पूर्व भी कविता की परम्परा लोक में प्रारम्भ हो चुकी थी, लेकिन साहित्य के रूप में उन पर किसी का ध्यान नहीं गया। वेद चूँकि न केवल दार्शनिक- सामाजिक दृष्टि से काफी सशक्त रचना है अपितु साहित्यिक तत्वों की भी इसमें कमी होती है । वैदिक संस्कृत तक काव्य रूपों का उतना स्पष्ट विभाजन नहीं हुआ था, जितना लौकिक संस्कृत में हुआ है। इसका कारण यह था कि वेद स्वतंत्र रूप में देवताओं की स्तुति रूप में रचे गये हैं लेकिन उनमें कथा तत्व भी पाया जाता है। कथा तत्व की दृष्टि से पुराण काव्यों में प्रबन्ध के पर्याप्त तत्व मिलने लगते हैं। इस दृष्टि से पद्य साहित्य का पहला विभाजन प्रबन्ध एवं मुक्तक के रूप में हुआ है । प्रबन्ध एवं मुक्तक के भेद का ताच्विक आधार यह रहा कि प्रबन्ध काव्य में कथा का विस्तार मिलता है जबकि मुक्तक की हर रचना अपने आप में स्वतंत्र एवं पूर्ण होती है। काव्य रूप की दृष्टि से प्रबन्ध एवं मुक्त आधारभूत विभाजन है। प्रबन्ध एवं मुक्तक के विभाजन का तात्विक भेद यह भी है कि प्रबन्ध रूप की रचना में जहाँ जीवन-समाज को व्यापक संदर्भो में देखने का अवकाश रहता है

वहीं मुक्तक में किसी एक मनोवृत्ति , रस या जीवन- सूत्र को समझाने का प्रयास किया जाता है।

2.3.3 पद्य साहित्य का इतिहास

आपने पढ़ा कि पद्य, साहितय की सार्वाधिक प्राचीन विधा है । लोक गीतों से होते हुए वेदों की मौलिक परम्परा तक यह एक चरण पूरा करती है । लौकिक संस्कृत से लेकर अपभ्रंश काव्य तक इसका दूसरा चरण माना जाता सकता है । इन चरणों को प्राचीन भारतीय आर्यभाषा और मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काहा गया है । आुधनिक भारतीय आर्यभाषा का ही विस्तार आधुनिक काल है। पश्चिमी और भारतयी पद्य साहित्य के इतिहास को भी हम एक ही ढाँचे में फिट नहीं कर सकते। कारण यह है कि पश्चिमी समाज के ढाँचे और भारतीय समाज के ढाँचे में बुनियादी अंतर है । संपूर्ण पश्चिमी समाज में भी कविता का विकास न तो सामान्य धरातल पर हुआ है और न भारतीय समाज में ।

अभ्यास प्रश्न-

2.4 पद्य साहित्य का ऐतिहासिक स्वरूप

2.4.1 पद्य साहित्य का प्राचीन स्वरूप-

पूर्ण के बिन्दुओं में हमने पद्य साहित्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन किया। अब हम पद्य साहित्य के प्राचीन स्वरूप का विस्तार से अध्ययन करेंगे। प्राचीन कविताऐं, विशेषकर भारतीय या प्रमुख रूप से संस्कृत कविता का इतिहास, का बोध होता है। इसका कारण क्या है? प्राचीन कविता में, (व्यापक रूप से) संपूर्ण विदेशी एवं भारतीय भाषाओं का साहित्य आ जाता है, जिसका संपूर्ण रूप से या थोडे रूप में भी परिचय देना किसी एक इकाई में संभव नहीं है। अतः यहाँ हमने पद्य साहित्य के इतिहास को संस्कृत और हिन्दी साहित्य की विकास परम्परा के संदर्भ में रखकर ही विवेचन किया है। इसका कारण क्या है? हिन्दी भाषा के विकास क्रम को यहाँ हम संक्षे प रूप में आइए देखें-

संस्कृत - पालि - प्राकृत - अपभ्रंश

हिन्दी - खडी़ बोली हिन्दी - हिन्दी

तालिका देखने से यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी भाषा की विकास परम्परा का संस्कृत से गहरा संबंध है। आइए पहले हम इस परम्परा के अंतर्सम्बन्ध को समझने का प्रयास करें। संस्कृत भारतीय इतिहास के विभाजन क्रम में 1500 ई0 पू0 से लेकर 6ठीं शताब्दी तक के समय को प्राचीन काल, छठीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक मध्यकाल और 19वीं शताब्दी से लेकर अब तब के काल को आधुनिक काल कहा गया है। भारतीय साहितय के संदर्भ में यदि काल-विभाजन किया जायेगा तो वह इस प्रकार होगा-

प्राचीन कविता -	1500 ई0पू0 से -		1000ई0 तक
मध्यकालीन कविता-	1000 ई0 से	-	1850 तक
आधुनिक कविता -	1850ई0 से	-	2013/ अब तक.............

2.4.2 पद्य साहित्य का मध्यकालीन स्वरूप

आपने पद्य साहित्य के प्राचीन स्वरूप का संक्षेप में अध्ययन किया। प्राचीन पद्य में मुख्यतः संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा की कविता और उसके काव्यरूप आते हैं। हर युग में उसकी विषय वस्तु एवं उकसे रूप को लेकर संघर्ष चलता रहता है। विषय वस्तु की नवीनता जहाँ फॉर्म (रूप) का निर्धारण करते हैं वहीं फॉर्म व रूप का अन्य ज्ञानात्मक अनुशासनों से द्वन्द्व विषय-वस्तु को भी संयोजित-समृद्ध करते चलते हैं। प्राचीन पद्य का विषय वस्तु की दृष्टि से स्वरूप प्रायः वीरता, प्रेम, आदर्श-नीति, रहस्यवाद या अध्ययत्मवाद जैसे विषय रहै हैं, अतःरूप की दृष्टि से महाकाव्य- खण्डकाव्य, दोहा-चौपाई, गीत इत्यादि रूप विशेष प्रचलन में रहै ।प्राचीन कविता का ही उतरोत्तर विकास मध्यकालीन कविता में हुआ है। मध्यकानीन कविता में प्रायः भक्तिकाल और रीतिकाल की कविता को ही सम्मिलित किया गया है लेकिन यहाँ आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल को इसके अंतर्गत विवेचित किया गया है। यहाँ हम क्रमशः आदिकाली, भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कविता का अध्ययन विषय के धरातल पर करेंगे।

2.4.2.1आदिकालीन पद्य साहित्यःस्वरूप एवं विश्लेषण

आदिकालीन पद्य साहित्य का प्रारम्भ सातवीं शताब्दी से माना जाये या 11वीं शताब्दी से? यह हिन्दी साहित्योतिहास का विवादि प्रश्न है। यहाँ सुविधा के लिए हम 1000 ई0 के बाद के साहित्य को आदिकाल के अंतर्गत विश्लेषित करेंगे। अपभ्रंश के साहित्य और पुरानी हिन्दी के साहित्य को अलगाने के लिए चन्द्रधर शर्मा, गुलेरी, ने लिखा है...........‘‘विक्रम की 7वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गई। विभक्तियाँ घिस गई है, खिर गई है, एक ही विभक्ति है वह और नई काम देने लगी है। एक कारक की विभक्ति से दूसरे का भी काम चलने लगा है। स्पष्ट रूप से हम देख सकते हैं कि पुराने अपभ्रंश और परवर्ती अपभ्रंश का निकट का संबंध है। आदिकालीन पद्य का समय मोटे तौर पर 1000 ई0 से लेकर 1400 ई0 तक निर्धारित किया जाता रहा है। इस समय का समाज सामन्ती जकड़न से बद्ध गतिहीन समाज था। धार्मिक दृष्टि से हिन्दू समाज कर्मकाडों में फँसा हुआ। बौद्ध धर्म भी अपनी प्रगतिशीलता खोकर तं.-मं. एवं व्यभिचार में फँसा हुआ था। भारतीय समाज के, ऐसे बद्ध समय में मुस्लिम शासन की स्थापना भारतीय समाज को सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनैतिक सभी दृष्टियों से प्रभावित किया। हिन्दू राजा छोटे’-छोटे क्षेत्रों में विभक्त होकर परस्पर एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते थे। एक राज्य का दूसरे राज्य पर आक्रमण कभी-कभी तो केवल अपनी ताकत प्रदर्शित करने का बहाना मात्र होते थे। भोग और युद्ध के ऐसे वातावरण में मुस्लिम धर्म का प्रवेश और उसका सत्ता-हस्तान्तरण कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। प्रारम्भ में मुस्लिम शासन का चरित्र (विशेषकर‘सल्तनत काल’ तक) आक्रान्ता एवं विजेता का ही था । बाद में वह क्रमशः सांस्कृतिक होता गया ।आदिकालीन चूँकि भिन्न‘-भिन्न मनःस्थितियों के बीच लिखा गया है, इसलिए इस काल कविता की किसी एक धारा को हम केन्द्रीय प्रवृत्ति के रूप में तथा एक काव्य रूप को हम केन्द्र में नहीं मान सकते। आदिकालीन साहित्य की विभिन्न मनःस्थितियों को हम इस आरेख माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते हैं-

आदिकाल-

धारा	प्रवृत्ति	रस	क्षेत्र	काव्य रूप
सिद्धसाहित्य	रहस्यवाद	शान्त उत्साह	पूर्वी क्षेत्र	गीत,दोहा मुक्तक
नाथ(सवदी)	हठयोग/तंत्र	चमत्कार	उत्तर भारत राजपूताना	मुक्तक दोहा
जैन	रहस्यवाद/वीरता	शान्त उत्साह	पश्चिमी	प्रबन्ध-चरित काव्य
रासो	वीरता/श्रृंगार	उत्साह/रति	पश्चिमोत्तर	महाकाव्य
लौकिक	श्रृंगार	रति	पूर्वी	मुक्तक/पद

आरेख द्वारा स्पष्ट और पर हम देखते हैं कि आदिकालीन साहित्य का विषय-विस्तार एवं काव्य - रूप विभिधता लिये हुए हैं । एक ओर जहाँ हय वीरता, प्रेम, श्रृंगार,-प्रेम, हठयोग-तंत्र, खंडन-मंडन एवं रहस्यवाद के विषय-विस्तार से जुडा़ हुआ है वहीं दूसरी ओर यह प्रबन्ध-महाकाव्य-चरित काव्य, मुक्तक- दोहा-पद इत्यादि काव्य रूपों को भी अपने भीतर समेटे हुए हैं। यहाँ हम थोडा़ और विस्तार से आदिकालीन पद्य के स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे । हम यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि आदिकालीन कथ्य एवं रूप का क्या अंतर्सम्बन्ध रहा है ।

सिद्ध साहित्य-

सिद्ध साहित्य की काल-सीमा 7वीं शताब्दी से लेकर 13वीं शताब्दी तक स्वीकार की गई है। इस साहित्य का विस्तार मुख्यतः उडी़सा, बंगाल, असम एवं बिहार का पूर्वी प्रदेश था। सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है। सिद्ध-साहित्य का अधिकांश आज अप्राव्य है। इस संबंध में महत्वपूर्ण कार्य महामहोयाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का ‘‘बोद्धगान ओ दोहा’’ है, जिसमें उन्होंने सिद्धों के दोहाकोश एवं चर्यागीतों का संग्रह-संपादन किया। इस दिशा में प्रबोधचन्द्र बागची एवं राहुल सांकृत्यायन का कार्य महत्वपूर्ण है। सिद्ध कविता की भूमिका को लेकर हिन्दी आलोचकों में मतैक्य नहीं हैं। एक ओर, राहुल सांकृत्यायन जहाँ इसे केन्द्रीय साहित्य मानते हैं वहीं दूसरी ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसे संकीर्ण धरातल की कविता कहते हैं। राहुल जी के अनुसार इस कविता की प्रगतिशिलता जाति प्रथा का विरोध, ऊँच-नीच भेद का विरोध, शास्त्रों की जड़ता पर चोट एवं बाह्याडम्बरों का विरोध करने में हैं। ‘पंडिअ सअल सत्य वक्खाणअ’ इस कविता की केन्द्रीय भाव-भूमि है। रामचन्द्र शक्ल के अनुसार इस कविता की प्रतिगामिता ‘महासुखवाद’ की परिकल्पना (शरी-संभोग को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम मानना) एवं तंत्रवाद/चमत्कारवाद की अतिशयता है। कबीर के ‘अस्वीकार’ की बीज-भूमि सिद्ध कविता ही है। काव्य रूप के क्षेत्र में प्रयोग की दृष्टि से भी सिद्ध कविता महत्वपूर्ण है। खण्डन-मण्डन के लिए सिद्धों ने दोहा, छन्द का प्रयोग किया किन्तु धार्मिक-रहस्यात्मक गीतों के लिए ‘चर्यापदों की भाषा अवहट्ट है। इसी प्रकार का प्रयोग कबीर ने भी किया है। प्रश्न उठता कि काव्य रूप संबंधी यह प्रयोग सिद्धों ने क्यों किया? हमने अध्ययन किया कि दोहों की विषय-वस्तु बाह्याचारों का खंडन था। खंडन के लिए आवेश एवं भावनात्मक तीव्रता की आवश्यकता होती है। ‘उग्र आवेशात्मक भाव’ की अवधि

थोडी-ही होती है। ऐसी लिए सिद्धों ने दो पंक्ति के दोहै छन्द का व्यवहार किया है, तो इसे समझा जा सकता है। इसी प्रकार, रहस्यात्मक गीतों का काव्य रूप 'चर्यापद' (पद) अनुभूति की गहराई, सघनता पर अवलम्बित है। 10वीं-11वीं शताब्दी के आस'-पास भारत का पूर्वी क्षेत्र बंगाल, बिहार, उड़िसा, आसम (कामरूप) तंत्र साधना के केन्द्र थे। तंत्र और रहस्यात्मक रचनाओं को इस क्षेत्र से प्रेरणा मिली हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

नाथ साहित्य'-

सिद्ध साहित्य अपने मूल रूप से हट कर काम - रहस्य एवं तह में उलझ कर रह गया था।'महासुखवाद' की विकृत परिकल्पना ने उसकी गतिशीलता को समाप्त कर उसे अश्लीलता के भंवर में फँसा दिया था। नाथ पंथ ने अपने को इन कु-प्रभावों से मुक्त किया। नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ माने जाते हैं लेकिन वास्तविक रूप में नाथ- सम्प्रदाय को स्थापित करने का श्रेय गोरखनाथ को है। इस सम्प्रदाय को सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग, योग संप्रदाय, अवधूत मत, कनफटा इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। सिद्धों ने जिस प्रकार 'काम' (रति) को केन्द्र में रखा उसी प्रकार नाथों ने 'योग' को। देह अभयनिष्ठ है। लेकिन दोनों में अन्तर है। सिद्धों की 'देह-साधना' कामपरक है जबकि नाथों की 'देह-साधना' योगपरक है। 'जोई-जोई पिण्डे सोई-सोई ब्रह्मांडे ' नाथ- सम्प्रदाय का बीज वाक्य है। नाथों की संख्या 9 मानी जाती है, इसीलिए इसका नाम 'नवनाथ' भी कहा गया है। नाथ-सम्प्रदाय ने उत्तर भारत और राजपूताने में अपने सम्प्रदाय का विशेष प्रचार किया। इसके अतिरिक्त पंजाब, गुजराज, नेपाल, असम, उडीसा इत्यादि क्षेत्रों में भी इस मत का प्रभाव रहा। गोरखपंथ का प्रभाव हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों पर पड़ां 'ना हिन्दू ना मुसलमान।' इस मत का सिद्धान्त बना। गोरखनाथ के अद्भुत' व्यक्तित्व ने बहुत जल्द ही उन्हें अपार लोकप्रियता प्रदान कर दी। इनके व्यक्तित्व पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की टिप्पणी है- ''शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति- आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का भक्तिमार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।''

नाथ पंथ ने अपने साहित्य में योग पर बल एवं जाति- पाति की असरता का खंडन किया। इनकी रचनाओं के संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता लेकिन पद और सबदी को अधिकांश लोगों ने प्रामाणिक रचना माना है। यहाँ हम नाथ पंथ की विषयवस्तु और उसके काव्य रूप पर संक्षेप में विचार कर सकते हैं। नाथपंथी योगियों के पद के लिए 'सबद'या ' सबदी' शब्द का प्रयोग मिलता है। डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''यह सबदी शब्द नाथपंथी योगियों का है और कबीर पंथ में सीधे वहीं से आया है। '' (हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ट 107) डॉ0 रामबाबू शर्मा ने इस संदर्भ में टिप्पणी की है- ''नाथपंथी योगियों के समय में गुरू श्रेणी के सिद्धों के उपदेश-परक पदों को सबद और शिष्य श्रेणी के व्यक्तियों के पदों को पद कहा जाता थां साखी और दोहरे के सम्बन्ध में भी यही बात है।'' नाथ संप्रदाय की रचनाओं को 'बानी' भी कहा गया है। जैसे 'गोरख वानी'। वस्तुतः इस बानी का तात्पर्य यह है कि इसमें गुरू की गुरूत्वयुक्त, मौलिक बचनावली जो अपौरूपेय जैसी श्रद्धा के योग्य हो। संकेत

यह है कि उस समय गुरू के नाम पर ऐसी उक्तियाँ भी प्रचलित थी जो दिग्भ्रमित करती थीं। नाथ-सम्प्रदाय में गुरू का महत्व ही सर्वाधिक था, क्योंकि उसे ईश्वर प्राप्ति में सहायक समझा । नाथ-सम्प्रदाय में भी सिद्ध साहित्य की तरह ही उपदेश एवं खंडन के लिए 'बानी' तथा साधनात्मक अनुभूतियों के लिए पद या सबदी का विधान किया गया है।

जैन साहित्य-

सिद्ध एवं नाथ सम्प्रदाय के विपरीत जेन साहित्य अपनी साहित्यिक मनोभूमि के कारण आदिकालीन साहित्य में विशेष महत्व रखता है। रहस्यात्मकता यहाँ भी है किन्तु जैन कवियों ने उसे साहित्यिक रूप प्रदान कर दिया है। इस साहित्य का क्षेत्र गुजराज एवं महाराष्ट्र के कुछ हिस्से थे। जैन साहित्य को राजकीय संरक्षण भी पार्याप्त मिला जिसके कारण ये लुप्त होने से बच गये। जैन साहित्य अधिकांश प्रबन्ध रूप में (पुराण काव्य एवं चरित काव्य) ही लिख गये, इसी कारण इनमें साहित्यिक तत्वों को खोजना कठिन नहीं है। जैन काव्य का 'पउम चरिउ' और 'हरिवंश पुराण', पुष्पदंत का महापुराण, यश-कीर्ति का पांडवपुराण और इधू का 'पद्मपुराण' और हरिवंश पुराण प्रमुख है। पुराण काव्य क्या है? इसे समझना आवश्यक है। जैन पुराणों में 24 तीर्थकारों, 12 चक्रवर्ती, 9 वलदेव, 9 नारायण (अर्द्ध चक्रवर्ती) और 9 प्रति नारायण- इस प्रकार 63 पुरूषों के चरित्र का वर्णन आवश्यक है। जैन कवियों ने ये पुराण संस्कृत की पुराण परम्परा के अनुसार नहीं लिखे। लेकिन इस तरह के काव्य-ग्रन्थों में पुराण-शैली का ही प्रयोग किया गया । संस्कृत और जैन पुरण काव्य में बहुत बडा़ अंतर भाषा एवं छन्द का है। जैन काव्य का दूसरा काव्य रूप चरित काव्य रहा हें चरित काव्य की परिभाषा देते हुए डॉ0 बाबूराम शर्मा ने लिखा है- ''किसी भी पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा धार्मित पुरूष को आधार मानकर उसके जीवन की संपूर्ण अथवा कुछ घटनाओं का जिन रचनाओं में भावपूर्ण शैली में चित्रण होता था, चरित-काव्य कहलाती थी।।'' विषय-वस्तु के आधार पर इसे तीन भागों में विभाजित किया गया है-

1. पौराणिक चरित -काव्य
2. ऐतिहासिक चरित-काव्य
3. धार्मिक चरित-काव्य।

जैन चरित काव्य काव्यों को धार्मिक चरित काव्यों के अंतर्गत रखा गया हा। इस प्रकार के काव्य में जिन चरित्रों का वर्णन हुआ है वे दो प्रकार के हैं- 1-जो जैन धर्म से सम्बन्ध रखते हैं और 2- जो हिन्दू पौराणिक आख्यानों से ग्रहण किये जाकर जैन धर्म के आरोप के साथ वर्णित हुए हैं। जैन धर्म के अधिकांश चरति काव्यों में चरित -नयाक के गुणों का बखान एवं उससे शिक्षा ग्रहण करने का उपदेश ही प्रधान रूप से चित्रित किया गया है। हिन्दू पौराणिक चरितों को जैन धर्म की मान्यताओं के अनुसार कुछ परिवर्तन कर दिया गया है। प्रत्येक चरित नायक का अन्त में जिन की शरण में जाना, जैन धर्म के आरोप को स्पष्ट करता है। जैन काव्य में प्रचलित तीसरा काव्य रूप रास-काव्य है। रास काव्य की परिभाषा देते हुए अभिनवगुप्त ने इसे गेय रूपक का भेद माना है। इस गेय रूपक में ताल, लय का विशेष स्थान होता था और इसमें अधिक- से-अधिक 64 जोड़े भाग ले सकते थे। रास-काव्य-रूप का सर्वप्रथम प्रचार सौराष्ट्र में माना जाता है। बाद में यह गुजराज के गर्भा नृत्यों के रूप में प्रचलित हुआ। क्रमशः इस काव्य- रूप में नृत्य का तत्व समाप्त होता गया । रास प्रारम्भ में लोक-नृत्य एवं लोक'-गीतों के रूप में साहित्य में

आया और क्रमशः इसके दो भेद हो गए।

1. नृत्य तथा गान के लिए।

2. पढ़ने तथा अभिनय करने के लिए ।स्पष्टतः रास का संबंध प्रथम प्रकार से है। डॉ0 रामबाबू शर्मा ने रास की परिभाषा देते हुए लिखा है- ''एक विशिष्ट शैली (गेय शैली) में ढाली गई जैन प्रभाव से युक्त धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं काल्पनिक कथाओं तथा धार्मिक सिद्धान्तों के वर्णन से युक्त रचनाओं को 'रास' संज्ञा दी जाती थी।''

रासो साहित्य -

रासो काव्य -परम्परा अपनी प्रामाणिकता को लेकर सार्वाधिक विवादित रहा है बावजूद इसके अपने कृतित्व में यह आदिकाल का केन्द्रीय साहित्य रहा है। कैसे? रासो साहित्य की रचना भूमि दिल्ली और उसके आस-पास का क्षेत्र रहीं है। यह भूमि राजनीतिक संघर्ष की भूमि रही है। सामंती समाज में वीरता और श्रृंगार चरम पुरूषार्थ के रूप में स्वीकृत रहै हैं। युद्ध और श्रृंगार में अतिरंजित शेली मिलाकर रासो काव्य की आधारभूमि बनती है। पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो, संदेश रासक, परमाल रासो, सुमाण रासो, जयप्रकाश, जयमयंक- जसचन्द्रिका इत्यादि इस परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ है। आदिकाल का केन्द्रीय साहित्य कौन है? इस प्रश्न पर अध्येताओं में अलग-अलग राय है। रामचन्द्र शुक्ल और रामस्वरूप चतुर्वेदी रासो-काव्य को आदिकाल का केन्द्रीय साहित्य मानते हैं। राहुल सांकृप्यायन सिद्ध साहित्य को, हजारीप्रसाद द्विवेदी नाथ साहित्य को तथा गणपतिचन्द्र गुप्त जैन साहित्य को इस काल का केन्द्रीय साहित्य मानते हैं। खडी़ बोली का प्रारंभिक रूप- परसर्गो का उदय, अपने समय में प्रचलित लगभग छन्दों का प्रयोग तथा धार्मिकता से मुक्त इहलौकि दृष्टिकोण के कारण रासो साहित्य आदिकाल का प्रतिनिधि साहित्य बनता है। रासो काव्य-रूप के स्वरूप का अध्ययन करना यहाँ प्रासंगिक होगा। रास एवं रासो काव्य का परस्पर क्या सम्बन्ध है? अधिकतर विद्वानों ने रास एवं रासो में भेद माना है। क्योंकि एक ओर रास नैतिकता प्रधान एवं वैराग्यमूलक एवं दूसरी और रासो श्रृंगारमूल एवं युद्ध वर्णन प्रधान। इसके अतिरिक्त रास गेयरूपक है तो रासो पाठ्य काव्य। रास के दो साहित्यिक रूपों - 1- नृत्य एवं गान के लिए तथा 2- पढ़ने और अभिनय करने के लिए- में से दूसरे काव्य रूप से रासो काव्यों का जन्म हुआ। रासो काव्य रूप बहुत अंशों में गेय एंव अभिनयात्मक होते हुए भी मध्यकालीन चरित काव्य एवं दरबारी कवियों द्वारा ग्रहीत होने के कारण पाठ्य काव्यों की तरह विकसित हुए।

2.4.2.2भक्तिकालीन साहित्य के काव्य रूप

भक्तिकालीन साहित्य अपनी मूल चेतना में प्रगतिशील तत्वों से आबद्ध था, इसीलिए धर्म को उसने गतिशील अवस्था में स्वीकार किया। आदिकालीन समाज सामंती समाज था। उसके मूल्य भी सामंती थे। भक्तिकालीन समाज भी अपने सामाजिक ढाँचे में सामंती ही था, लेकिन उसने उन सामंती चेतना का प्रतिरोध अपने साहित्य के माध्यम से किया, यही उसकी प्रगतिशीलता थी।

आदिकालीन साहित्य की अंतर्वस्तु एवं काव्य रूप से आप परिचित हो चुके हैं। भक्तिकालीन साहित्य ने विषय वस्तु एवं काव्य रूप दोनों धरातल पर आदिकालीन साहित्य का

विस्तार किया। भक्तिकालीन साहित्य अपने तेवर में चार भागों में विभक्त है। यहाँ सुविधा के लिए हम प्रमुख शाखाओं एवं उसके रूपों का अध्ययन करेंगे।

संत काव्य-

भक्तिकाव्य निर्गुण और सुगण काव्यधाराओं में विभक्त है। निर्गुण काव्य को पुनः संतकाल और सूफी काव्य में विभाजित किया गया है। यहाँ हम संत काव्य की विषय वस्तु एवं उसके काव्य रूप को समझने का प्रयास करेंगे। आदिकाल के सिद्ध एवं नाथ साहित्य से संत साहित्य ने सर्वाधिक प्रभाव ग्रहण किया। सिद्ध-नाथ साहित्य का मूल स्वर प्रतिरोधत्मक था। संत काव्य ने इस स्वर को प्रमुखता से अपनाया। सिद्ध साहित्य की अश्लीलता एवं नाथ पन्थ के हठयोग से लगभग मुक्त होते हुए इस काव्य धारा ने सामंती जीवन-मूल्यों का उदान्तीकृत किया। संत काव्य के अधिकांश कवियों ने मुक्तक काव्य रूप में ही रचना की। प्रबन्ध काव्य रूप का इस काव्य धारा में अभाव है। ऐसा क्यों हुआ। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस धारा के अधिकांश कवि मूल रूप से संत थे। काव्य रचना उनका अभीष्ट उद्देश्य न था। सामाजिक विषमताओं एवं जीवन के मूल सत्य को दिखाकर उच्च जीवन बोध पैदा करना ही इस धारा के कवियों का उद्देश्य था। प्रबन्ध काव्य के लिए सुचिंतित काव्य-प्रक्रिया की अनिवार्यता होती है। सुचिंतित काव्य-प्रक्रिया के लिए क्रमिक रूप से कथा एवं चरित्र की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रक्रिया में कवि/ लेखक काव्य तत्वों का संचेतन प्रयोग करता है। इसके विपरीत मुक्तक लेखक का काव्य अधिकांशतः तत्कालीन संवेगों से निर्मित होता है। संत काव्य के अधिकांश कवि समाज-सुधारक चेतना' से अनुप्राणित थे इसलिए उनका अधिकांशत साहित्य तत्कालीन संवेगों से निर्मित हुआ है। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि संत काव्य में काव्य रूप संबंधी प्रयोग कम हुए है। काव्य रूप की दृष्टि से संत काव्य पर्याप्त समृद्ध रहा है।

सूफी काव्य

निर्गुण काव्य की दूसरी शाखा सूफी कविता की है। संत मत सामजिक विषमताओं पर केंन्द्रित है तो सूफी काव्य सांस्कृतिक एवं धार्मिक विषमताओं पर। सूफी काव्य के अधिकांश कवि मुस्लिम थे किन्तु उन्होंने अपने काव्य का विषय लोक प्रचलित हिन्दू कहानियाँ को बनया। हिन्दू तीन-त्यौहार, प्रकृति-पर्यक्षेण, सामाजिक-सांस्कृतिक तथ्यों पर बल, काव्य के प्रति सचेतन दृष्टि एवं कुल मिलाकर के काव्य रचना की विस्तृत तैयारी सूफी कविता के विषय बनते हैं। सूफी कविता के काव्य रूपों में महाकाव्य प्रमुख काव्य रूप है। इसके अतिरिक्त काव्य-रूपों की कुछ अन्य प्रमुख पद्धतियों का भी प्रयोग किया गया है।

डॉ0 रामबाबू शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी-काव्यरूपों का अध्ययन में सूफी कविता को कथा-वार्ता काव्य कहा है। कथा-वार्ता काव्य को उन्होंने दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग को उन्होने रसात्मक कथा-वर्ता काव्य कहा है। इसे विभाजित करते हुए उन्होंने लिखा है- (अ) सूफी प्रेमाख्यान काव्य- इस श्रेणी में कुतुबन कृत मृगावती, मंझन कृत मधुमालती, जायसी कृत पाद्मावत, उखमान कृत चित्रावली तथा शेखनवी कृत ज्ञानदीप आते हैं।

(आ) भारतीय प्रेमाख्यान काव्स- 1. बात संज्ञक प्रेमाख्यान- नारायण कवि कृत छिताई वार्ता,

प्रतापसिंह कृत चन्द' कुंवरि री बात, भद्रसैन कृत चन्दन मलिया गिरि री बात, जान कृत सन्तवन्ती री बात, सदलवच्छ एवं अज्ञात कवि कृत सदैवच्छ सावलिंगा री बात इहा बंध, इस प्रकार की रचनाएँ हैं।

2- अन्य भारतीय प्रेमाख्यान- असाइत कृत हँसाउली, साधन कृत मैनासत, दामों कृत लक्ष्मणसेन पद्मावती, कल्लोल कृत ढोला मारू रा दूहा, चतुर्भुजदास कृत मुधमालती कथा, गणपति कृत माधवानल प्रबन्ध दोहाबन्ध, हरराज कृत ढोला मारू बानी 'गोविन्दराम कृत हाड़ावती, ईसरदास कृत सत्यवती कथा, कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला, ढोलामारू री चौपाई, बन्ददास कृत रूप मंजरी, जल्ह कृत कुतुव शतक, चेतराम कृत ढोलामारू की कथा, अज्ञान कवि कृत रूपावती, पुहकर कृत रसरतन, काशीराम कृत कनक मंजरी, बैरागी नारायण कृत नलदमयंती आख्यान, सुमतिहंस कृत विनोद रस, जान कव कृत कथा मोहिनी, जटमल कृत प्रेमविलास एवं गोरा बादल की कथा, इस कोटि की रचनाएँ हैं।

राम भक्ति शाखा (सगुण काव्य)

रामभक्ति शाखा में राम के ब्रह् रूप में उपासना की गई है। राम के चरित्र के माध्यम से मर्यादा की स्थापना करना, परस्पर विपरीत समाजो-परिस्थितियों में समन्वय का प्रयास करना, परविार-कुल-जाति के अन्दर त्याग एवं प्रेम पर बल देना, सामाजिक- सांस्कृतिक उर्ध्वारोहण की प्रक्रिया स्थिर करना, भाषा, शैली की पारम्परिक विरासत को समृद्धता के उच्च धरातल पर पहुँचाना और कुल मिलाकर साहित्य के माध्यम से सांस्कृतिक विस्तार करना- ये ही रामभक्ति शाखा की रचनाओं का प्रमुख उद्देश्य है। इतने बड़े काव्य- उद्देश्य की पूर्ति मुक्तक काव्य रूप के माध्यम से संभव नहीं है। इसीलिए रामभक्ति शाखा के कवियों ने प्रबन्ध काव्य रूपों को अपनी रचना का आधार बनाया। राम भक्ति शाखा की काव्य भाषा अवधी है । रा जन्मस्थान के सांस्कृतिक कारण के लिए, प्रबन्ध काव्य की गंभीरता के लिए अवधी भाषा तथा लोकरक्षक व्यक्तित्व के निर्वाह की दृष्टि से रामभक्ति शाखा के कवियों ने अवधी भाषा एवं प्रबन्ध काव्य रूप का चुनाव किया, जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अनुरूप ही था।

कृष्णभक्ति शाखा

कृष्ण के सगुण, लोकरंजन रूप को लेकर हिन्दी क कृष्णभक्ति काव्य आया। रामभक्ति शाखा के विपरीत कृष्णभक्ति शाखा ने सामाजिक- सांस्कृतिक रूप से अवरूद्ध भाारतीय समाज में उल्लास, उमंग, आनमंड जगाने का कार्य किया। रामभक्ति शाखा का बल लोकरक्षा पर था, इस धारा का बल लोकरंजन पर हैं। लेकिन यह लोकरंजन लोकरक्षण से सर्वथा मुक्त नहीं है । कृष्ण की लीलाओं के बीच लोकरक्षा के उपाय भ्झी चलते रहते हैं। कलिया दमन, पूतना वध, गोवर्धन पर्वत धारण करना जैसे लोकरक्षण कृप्यों के बीच रास लीला, मानलीला, दान लीला, पनघट लीला एवं भ्रमरगीत के प्रसंग भी साथ-साथ ही चलते रहते हैं। इन प्रसंगों में लोकरक्षा का उपाय दब जाता है और लोकरंजन प्रभावी हो जाता है। कृष्णभक्ति शाखा अपनी संरचना में स्वच्छन्द समाज को रचता है लेकिन फिर भी वह क्या स्वतंत्र है? सामंती जीवन की घुटन एवं सांस्कृतिक पराजय के काल में स्वच्छन्द समाज की रचना करना लोकविरोधी है या रचनात्मक ? कृष्णभक्ति शाखा अपनी रचनात्मकता में कई बार भक्तिकाल के अन्य शाखाओं से ज्यादा रचनात्मक हो उठता है । इस शाखा में मरी (स्त्री-विमर्श) हैं, कृष्णदास (दलित) है ओर

रसखान (असाम्प्रदायिक चरित्र) भी है। लेकिन इस शाखा में रामभक्ति शाखा के बहुदेव जैसी उदारता नहीं है। कृष्ण के अतिरिक्त किसी देव में कृष्णोपासक रचनाकारों की आस्था नहीं है।(मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै)/ जैसे उड़ि जहाज का पंछी फिर जहाज पर आवै)। काव्य रूप के धरातल पर भी कृष्णभक्ति शाखा ने एक नये काव्य रूप ' प्रबन्ध मुक्तक' को जन्म दिया। सूर काव्य के संदर्भ में डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा ने लक्षित किया कि वैसे तो सूरसागर के प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण है लेकिन उनमें कथा की एक क्रमिकता भ्ज्ञी मिलती है। कृष्णभक्ति शाखा में ज्यादातर पदों की रचना हुई है, जो उसकी विषयवस्तु के अनुकूल है।

रीतिकालीन साहित्य एवं काव्य रूप-

रीतिकालीन साहित्य राजाश्रयी या दरबारी काव्य है। दरबारी काव्य का आशय ऐसे काव्य से है जो राजाओं के संरक्षण में रहकर लिखा गया है रीतिकालीन साहित्य का मूल वर्ण्य-विषय रीति-निरूपण, श्रृंगारिकता अलंकार, निरूपण, नायिका-भेद, दरबारीयन, अतिश्योक्ति एवं राजस्तुति रहै हैं।

रीतिकालीन साहित्य चूँकि आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा और उनको प्रसन्न करने के लिए अधिकांश में लिखा गया है इसलिए इसके स्वरूप में चमत्कार एवं अलंकरण की प्रवृत्ति हमेशा मिलती है। श्रृंगार, रीति एवं अलंकार के ग्रन्थ मुक्तक रूप में लिखे गये हैं जबकि अतिश्योक्ति एवं प्रशंसा से युक्त चरित प्रबन्ध काव्य में। व्यक्तित्व विश्लेषण मुक्तक में संभव भी नहीं है।

2.4.3 पद्य साहित्य का आधुनिक स्वरूप

हिन्दी पद्य साहितय का इतिहास लगभग 1000वर्षों का है। आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल तक काव्य की मूल चेतना सांमती रही है। आदिकालीन कविता के केन्द्र में शौर्य-युद्ध-श्रृंगार रहा है। भक्तिकालीन कविता के केन्द्र में भक्ति-नीति-लोक तो रीतिकालीन कविता के केन्द्र में रीति-निरूपण, श्रृंगार एवं दरबारीपन। विषय वस्तु के अनुरूप ही हिन्दी कविता के काव्य रूप भी परविर्तित होते रहै हैं। चरित काव्य प्रबन्ध के रूप में लिखे गये जबकि नीति-श्रृंगार पर टिप्पणी मुक्तक रूप में। प्रबन्ध एवं मुक्तक काव्य रूप के अवान्तर भेद भी किये गये हैं- जैसे संपूर्ण राजनीतिक- सामाजिक परिदृश्य को केन्द्र में रखकर' पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य लिखा गया और किसी एक व्यक्तित्व को अतिश्योक्तिपूर्ण ढंग से बढा़-चढा़ करके लिखने की प्रवृŸिा से 'चरित काव्य' जैसे काव्य रूप निर्मित हुए। उसी प्रकार मुक्तक काव्य- रूपों में भी विषय वस्तु के अनुरूप वर्गीकरण हुए । जैसे तत्कालीन समाज पर की गई टिप्पणियों के लिए सिद्ध-नाथ एवं संत काव्य में दोहै (साखी) काव्य रूप का व्यवहार हुआ तथा आत्मनिवेदन एवं साधनात्मक-रहस्यात्मक भावेद्रेक के लिए मपद काव्य रूप् का चुनाव किया गया। स्पष्टतया हम देख सकते हैं कि विषय वस्तु एवं काव्य रूप का अन्योन्याश्रित संबंध है।

हिन्दी पद्य साहित्य का आधुनिक युग 1850ई0 के बाद शुरू होता है। पुनर्जागरणकालीन चेतना के प्रभाव से कविता की धारा भक्ति-नीति-श्रृंगार से हटकर राष्ट्रीयता-समाज सुधार एवं प्रकृति की ओर मुड़ जाती है। हिन्दी कविता में यह परिवर्तन क्रमशः होता है। 1850 से लेकर 1900 ई0 तक के समय को हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि के रूप में देखा जाता है। इस समय में कविता के विषय भक्ति-नीति -श्रृंगार- समस्यापूर्ति इत्यादि ही चलते रहै । हिन्दी कविता अपने विषय के

अनुरूप् काव्य रूप तलाश रही थी। हिन्दी कविता को अपने काव्यरूप को तलाशने में 50 वर्ष से भी ज्यादा समय लगे। प्रारम्भ में महाकाव्य के विधान, खण्डकाव्य के रूप ही चले (प्रियप्रवास, भारत-भारती, रंग में भंग इत्यादि) क्योंकि इसे परम्परागत काव्य रूपों से संभव नहीं था। द्विवेदी युग (लगभग 1916-18 ई0 तक) की समाप्ति तक हिन्दी कविता का काव्य - रूप स्थापित हो चुका था। छायावादी कविता ने काव्यरूपों के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किया। 1916 में निराला द्वारा लिखी गई 'जूही की कली कविता से युक्त छंद की शुरूवाद मानी जाती है।

2.5 सारांश

बीए.एच.एल. - 201 की यह इकाई हिंदी काव्य रूपों की विकास यात्रा से संबंधित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि-

- आपने जाना कि पद्य साहित्य के उदय के तात्विक कारण बदलती सामाजिक अभिरूचि व बदलती भौतिक परिस्थिति रही है।
- आपने पद्य साहित्य के वर्गीकरण को समझा .... आपने जाना कि पद्य साहित्य की सारी विधाएँ एक-दूसरे में किस प्रकार अंतर्ग्रथित है।
- काव्य के प्रमुख भेद- कोश, प्रबन्ध एवं गेय काव्यरूपों के भेदों का आपने अध्ययन किया।
- वैदिक साहित्य से लौकिक संस्कृत की यात्रा व काव्य रूपों की उत्पत्ति को आपने जाना।
- पद्य साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हुए आपने प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक काव्य रूपों का अध्ययन किया। सामाजिक परिवर्तन के साथ काव्य रूपों का परिवर्तन कैसे होता है ? इसका आपने अध्ययन किया।
- अलग-अलग काव्य प्रवृत्ति से काव्य रूप कैसे भिन्न हो जाते हैं, इस तथ्य का आपने अध्ययन किया।

2.6 शब्दावली

- प्रबन्ध - रचना का व्यवस्थित रूप, जिसमें एक कथा का विस्तार हो।
- मुक्तक - अपने आप में स्वतंत्र रचनाओं का संग्रह/अपने आप में स्वतंत्र रचना, जिसमें किसी कथा का विकास न हो।
- खण्डकाव्य - किसी एक नायक, घटना को केंद्रित करके लिखा गया प्रबन्ध काव्य
- महाकाव्य - जीवन समाज को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने वाला काव्य रूप
- कोश -जीवन-समाज-साहित्य के तथ्यों को एक साथ रखने का रचनात्मक प्रयास।
- महासुखवाद -सिद्ध साहित्य के ब्रजयान संप्रदाय में स्त्री-पुरूष युगलबद्ध रूप की कल्पना

- बाह्यचार -बाहरी रूढ़ियाँ व प्रथाएँ
- सुचिंतित - अच्छे से सोचा हुआ।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) 1- सही

2- सही

3- गलत

4- गलत

5- गलत

(ख) (1)

1- कोश

2- प्रबन्ध

3- लौकिक

4- गेय

5- कोश

(2) आत्मप्रकाशन, प्रामाणिकता, वस्तुनिष्ठता, सृजनात्मकता

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.हिंदी-काव्योंरूपों का अध्ययन - शर्मा, रामबाबू

2.आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास- नवल, नंदकिशोर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिंदी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हिंदी काव्यरूपों की परम्परा को रेखांकित कीजिए।
2. काव्यरूप और समाज पर निबंध लिखिए।

इकाई 3 - महाकाव्य एवं खण्डकाव्य की सैद्धान्तिकी

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 साहित्यशास्त्र (काव्यरूप) की आवश्यकता

3.4 महाकाव्य एवं खण्डकाव्य

3.5 महाकाव्य एवं खण्डकाव्य: इतिहास

3.5.1. महाकाव्य

3.5.1.1 भारतीय महाकाव्य

3.5.1.2 पाश्चाव्य महाकाव्य

3.5.2 खण्डकाव्य

3.5.2.1 भारतीय खण्डकाव्य

3.5.5.2. पाश्चव्य खण्डकाव्य

3.6 हिन्दी के प्रमुख महाकाव्य/खण्डकाव्य

3.6.1. हिन्दी के प्रमुख महाकाव्य

3.6.2. हिन्दी के प्रमुख खण्डकाव्य

3.7 सारांश-

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावनाः-

जैसा कि डॉ0 सत्येन्द्र ने लिखा है- किसी भी काव्य की अनुभूति क स्फुरण के साथ ही काव्य-रूप का भी उद्भव होता है। काव्य केवल शब्दों, वाक्यों और छन्दों में ही नहीं काव्य रूपों में भी बँध कर प्रकट होता है। काव्य-रूप के साथ काव्य का निजी व्यक्तित्व खड़ा होता है। स्पष्ट है कि अनुभूति और काव्य-रूप का अभिन्न सम्बन्ध है। जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के पीछे सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक-राजनीतिक बदलाव की भूमिका होती है और साहित्य में परिवर्तन जनता के चित्तवृत्ति परिवर्तन के साथ ही होता है। यानी सामाजिक परिवर्तन जनता की चित्तवृत्ति से सीधे जुड़ा हुआ है कि साहित्यिक परिवर्तन जनता की चित्तवृत्ति से यही कारण है कि साहित्यिक परिवर्तन सीधे घटनाक्रम से नहीं जुड़ पाते। साहित्य के समाजशास्त्र पर कार्य करने वाले अध्येता अक्सर इस प्रश्न से टकराते रहते हैं कि प्रमुख घटनाक्रम पर कोई साहित्य (कविता, कहानी, उपन्यास आदि) क्यों नहीं लिखा गया? इस प्रश्न का तत्कालिक उत्तर यही हो सकता है कि घटना के परिवेश बनने और साहित्यकार के परिवेश से जुड़ने और उसे अनुभूतिबद्ध करने तक लम्बी प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रक्रिया में लेखक की अनुभूति और सामाजिक गति (जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन) में जब सामजस्य नहीं बैठ पाता था जब लेखक को लगता है कि बदले हुए युग की अनुभूति पुराने काव्यरूप में नहीं बैठ (फिट) पा रही है तो लेखक काव्यरूप में नये प्रयोग करता है। पुराने काव्यरूप से नये काव्यरूप में रूपान्तरण की यह संक्षिप्त व्याख्या है।

आपने पूर्व की इकाईयों में काव्यरूप का इतिहास एवं उसके वर्गीकरण का अध्ययन किया। आपने काव्यरूपों के इतिहास के क्रम में देखा कि कविता सबसे पुराना काव्यरूप है। कविता का प्राचीन काव्यरूप महाकाव्य के रूप में मिलता है। भारतीय महाकाव्यों की परम्परा में रामायण, महाभारत, रघुवंश इत्यादि महाकाव्य प्रसिद्ध रहै हैं। इसी प्रकार पश्चिमी परम्परा में होमर का इलियड, ओडिसी, डिवाइन कॉमेडी इत्यादि महाकाव्य प्रसिद्ध रहै । महाकाव्यों की समृद्ध परम्परा भारत एवं पश्चिम दोनों के साहित्य में पायी जाती है और यह परम्परा अपने परिवर्तित- विकसित रूप में आधुनिक काल तक चलती है। महाकाव्य काव्यरूप आदर्शवादी युग की निष्पत्ति हैं। जब समाज में व्यक्तित्व-मूल्य को बढ़ा-चढ़ा करके दिखाने से सामाजिक रूप् से परिवर्तन की संभावना हो तब महाकाव्य काव्य-रूप प्रासंगिक हो उठता है। महाकाव्य में जीवन को व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखने-दिखाने का प्रयास किया जाता है। यह प्रयास लेखक कैसे करता है? इसे हम आग देखेंगे।खण्डकाव्य महाकाव्य का ही एक रूप है। महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्य का रूप सीमित होता है। इसमें किसी एक नायक केंन्द्र में रखकर कथा लेखक अपनी रचना को रूप देता है। महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्य का जीवन का विस्तार सीमित होता है। एक प्रमुख नायक के माध्यम से किसी खास मनोभूमि, चरित्र पर प्रकाश डालना ही खण्डकाव्य का उद्देश्य होता है। भारतीय साहित्य परम्परा में खण्डकाव्य की समृद्ध परम्परा मिलती है। काव्य-रूपों के इतिहास के क्रम में महाकाव्य-खण्डकाव्य का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन हम आगे के बिन्दुओं में करेंगे।

3.2 उद्देश्यः-

स्नातक द्वितीय वर्ष का प्रथम प्रश्न पत्र पद्य साहित्य की सैद्धान्तिकी पर आधारित है। इस प्रश्न पत्र का यह प्रथम खण्ड हैं। यह खण्ड पद्य साहित्य के तात्विक विवेचन पर केंद्रित है। इस खण्ड की यह तीसरी इकाई-महाकाव्य एवं खण्डकाव्य की सैद्धान्तिक पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आय-

- महाकाव्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- खण्डकाव्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- प्राचीन एवं आधुनिक महाकाव्यों का अंतर समझ सकेंगे।
- प्राचीन एवं आधुनिक महाकाव्यों का अंतर समझ सकेंगे।
- पाश्चाव्य एवं भारतीय महाकाल एवं खण्डकाव्य परम्परा से परिचित हो सकेंगे।
- प्रमुख महाकाव्यों के आलोक में समाज एवं संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- महाकाव्य एवं खण्डकाव्य के माध्यम से लेखकीय अनुभूति एवं काव्यरूपों के अंर्तसम्बन्ध को समझ सकेंगे।

3.3 साहित्यशास्त्र (काव्यरूप) की आवश्यकता

प्रस्तावना में आपने अध्ययन किया कि नये काव्यरूपों के गठन में जब बदली हुई सामाजिक रूचियों से लेखकीय प्रतिभा का संयोग होता तब नया काव्यरूप अस्तित्व लेता है। यहाँ हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि साहित्य शास्त्र क्या है? और किसी समाज-साहित्य परम्परा को साहित्य शास्त्र की आवश्यकता क्यों पड़ती है? साहित्य क्या है? तथा इसके विविध रूपों से आप परिचित हो चुके हैं। यहाँ हम साहित्यशास्त्र को समझने का प्रयास करंगे। जिस प्रकार साहित्य जीवन के व्यवहार का चित्र है उसी प्रकार साहित्यशास्त्र इस व्यवहार-चित्र का सिद्धान्त है। साहित्य जीवन में निर्वन्ति है तो साहित्यशास्त्र जीवन का अनुशासन है। जिस प्रकार भाषा का ब्याकरण होता है, अनुशासन होता है उसी प्रकार साहित्य का भी ब्याकरण होता है, अनुशासन होता है। साहित्य के ब्याकरण एवं अनुशासन को ही 'साहित्यशास्त्र' की संज्ञा दी गई है। साहित्य (जीवन) और शास्त्र (सिद्धान्त) का युग्म ही साहित्यशास्त्र है। अपने व्यापक रूप में इसीलिए साहित्यशास्त्र जीवन सिद्धान्त ही है। साहित्य के माध्यम से जीवन एवं समाज के अनुशासन को समझना ही साहित्यशास्त्र का मूल-धर्म है।

हर काव्यरूप अपनी संरचना-बनावट एवं गुण-धर्म में दूसरे कालरूप् से भिन्न होता है। काव्य की यह भिन्नता सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव और लेखक की अनुभूति की अभिव्यक्ति पर भी निर्भर करती है। सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप अनुभूतिगत वैविध्य और अभिव्यक्तिगत भिन्नता के कारण काव्यरूपों का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहता है (इसलिए प्राचीन एवं नवीन महाकाव्यों के सिद्धान्त में अंतर आ गया है), ऐसी स्थिति में कलारूप की समझ के लिए काव्य रूपों के सैद्धान्तिकरण का प्रश्न पैदा होता है। काव्य रूपों के सैद्धान्तिक

विवेचन को साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत विश्लेषित किया जाता है। किसी भी काव्य रूप के लक्षण क्या हैं? उसके तत्व क्या हैं? उसकी सामाजिक उपयोगिता क्या है? उस काव्य रूप का दूसरे काव्यरूप से भिन्नता का धरातल क्या हैं? काव्यरूप के संदर्भ में साहित्यशास्त्र का प्रश्न इसीलिए अनिवार्य हो जाता है कि- काव्यरूप के अनुशासन के माध्यम से जीवन का अनुशासन पैदा किया जाता है।

3.4 महाकाव्य एवं खण्डकाव्य-

महाकाव्य महाकाल संबधी शास्त्रीय विचार संस्कृत काव्यशास्त्र में विस्तार से मिलता है। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' के षष्ठः परिच्छेद में महाकाव्य के लक्षणा पर विचार करते हुए लिखा है-

''सर्गबन्धों महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।। 315।।

सइंशः क्षत्रियों वापि धीरोदान्तगुणान्वितः । एकवंशभवा-नामेकोङगी रस इष्यते। अंगानि सर्वेङपि रसाः सर्ने नाटकअंधयः ।। 317।।

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रवम्।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेस्वेकं च फलं भवेत्।।

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा। क्वचिन्निन्दा जलादिनां सतां च गुणकीर्तनम्।। एकवृत्तयैः पद्यैरवसनिङन्य-वृत्तकैः। नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।320।।

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन हृश्यते । सर्गान्ते भाविसर्गस्य कंथायाः सूचनं भवेत्।। संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः। प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।।321।।

संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः। रणप्रयाणोपयममन्त्र-पुत्रोदयादयः ।।323।।

वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अगी इह । कवेवृर्त्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।।324।।

नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु । सन्ध्यंङानि यथालाभमन्न विधेयाति अवसानेङन्यवृत्तकैः इति बहुवचनमविवक्षितम्। सागङोपागङा इति जलके लिंग्धुपानाट्यं। यथा- रघुवंश-शिशुपाल वध- नैषधाट्यः यथा वा मम- राघव विलासादिः।आस्मिनार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंकाः 11325।। अस्मिन्महाकाव्ये। यथा- महाभारतम्।

(सर्गोति- जिसमें सर्गों का निबन्ध हो वह महाकाव्य कहलाता है। इसमें एक देवता या सदेश क्षत्रिय - जिसमें धीरादात्तत्यादि गुण हों- नायक होता है। कहीं एक वंश के सत्कुलिन अनेक भूप भी नायक होते है। श्रंगार, वीर और शान्त में से कोई एक रस अगड़ी होता है। अन्य रस गौण होते हैं। सब नाटक सन्धियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जनसम्बन्धियों होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुवर्ग में से एक उसका फल होता है। आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होता है। कहीं फलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन होता है। इसमें न बहुत छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें प्रत्येक में एक ही छन्द होता है, किन्तु अंतिम पद्य (सर्ग का) भिन्न छनद का होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याहन, मृगया शिकार, पर्वत, ऋतु

(छहों), वन समुद्र, संभोग, वियोग मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सागङोपाङ वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से (जैसे माघ) या चरित्र के नाम से (जैसे कुमारसंभव) अथा चरित्रनायक के नाम से (जैसे रघुवंश) होना चाहिए। कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है- जैसे भट्टि। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता हैं। अवसाने यहाँ बहुवचन की विवक्षा नहीं है- यदि एक या दो भिन्नकुल हो तो भी कोई हर्ज नहीं। जलक्रीड़ा, मधुपानादिक साहदोपाद होने चाहिए। महाकाव्य के उदाहरण जैसे रथुवंशादिक।महाकाव्य सम्बन्धी यह लक्षण प्राचीन महाकाव्यों पर तो हू-व-हू लागू किया जा सकता ह लेकिन इसे आधनिक महाकाव्यों पर हू-व-हू लागू नहीं किया जा सकता। शास्त्रीय लक्षणों के संकेत से महाकाल का युग-संदर्भनुकूल लक्षण निर्धारित किया जा सकता हैं।

खण्डकाव्य की विशेषताएँ

1. महाकाव्य की अपेक्षा इसका स्वरूप छोटा होता है।
2. महाकाव्य में पूरे सामाजिक परिवेश-संसकृति को उभारना लेखक का उद्देश्य होता है जबकि खण्डकाव्य में लेखक का उद्देश्य अपने चरित्र नामक के व्यक्तिगत को उभारना।
3. महाकाव्य में कई पात्र, कई नायक होते हैं जबकि खण्डकाव्य के पात्रों की संख्या सीक्षित होती है तथा इसमें एक ही मुख्य नायक होता हैं
4. महाकाव्य की तरह इसमें भी प्रकृति वर्णन होता है।
5. खण्डकाव्य में संर्गों की संख्या   तक हो सकती है।

3.5 भारतीय महाकाव्य

भारतीय महाकाव्यों की परम्परा संस्कृत भाषा में से मिलती है। वैदिक संस्कृत की स्तुति परम्परा एवं चिंतन (वेद-उपनिषद्) से आगे लोक-समाज की संस्कृति-चिंतन को लेकर लौकिक संस्कृत अपना स्वरूप प्राप्त करती है। वैदिक संस्कृति में धार्मिक तत्वों की बहुलता थी, दर्शन के गूड प्रश्नों का उत्तर तलाशने की छटपटाहट थी। कुल मिलाकर वैदिक संस्कृति का स्वरूप धार्मिक, बौद्धिक-दार्शनिक ही ज्यादा था। लौकिक संस्कृत में ''लौकिक'' शब्द ही इस बात को ध्वनित करता है कि इसमें लोक के प्रश्नों से टकराने की ज्यादा चिंता है। संसकृत महाकाव्य का संबध लौकिक संस्कृत से ही है।

महाभारत

महाभारत विश्व का सर्वाधिक विस्तृत महाकाव्य है, जिसकी श्लोक संख्या 2 लाख के लगभग है। यह महाकाव्य 18 दिन का युद्ध है जो कौरूओं और पाण्डवों के मध्य लड़ा गया किन्तु इसका मूल प्रतिपाद्य अधर्म पर धर्म की विजय ही है। इस प्रतिपाद्य में धर्मशास्त्र राजनीति, लोक जनजाति, इतिहास, दर्शन इत्यादि सभी शामिल हैं।

रामायण

रामायण को भारतीय साहित्य परम्परा का आदिकाल कहा गया है, संभवतः विश्व साहित्य का भी यह सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। रामायण में 2400 श्लोक हैं सातकाण्डों (अध्यायों) में विभक्त है। रामायण में राम कथा के माध्यम से मर्यादा, आदर्श की स्थापना करना कवि बाल्मिकि का उद्देश्य रहा है। नायक राम सात्विक वृत्तियों के तथा खलपात्र रावण आसुरी या प्रतिगामी वृत्तियों

के प्रतीक के रूप में हमारे सामने आते हैं।

महाकाव्य और कालीदास

महाकाव्य परम्परा में कालिदास अपनी शैली, औदार्व्य के कारण विशेष रूप से चर्चित और समद्रत रहे हैं। रामायण, महाभारत महाकाल के मूल में धर्म, नीति की स्थापना करना रहा है, उससे हटकर कालिदास ने व्यक्तित्व स्थापन एवं रोमांसिक वृत्ति को (जो सामान्य जल के ज्यादा निकट है) प्रतिष्ठापित किया। कालिदास द्वारा लिखित दो महाकाव्य चर्चित रहे है- कालिदास और कुमार संभव रघुवंश में रघुकुल का वर्णन है। यह 19 सर्गों का महाकाव्य है। इस महाकाव्य में राम के जीवन वृत्त के साथ ही-साथ उनके पूर्वज तथा उत्तराधिकारीयों के जीवन वृत्त एवं कृतित्व का औदाव्यपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। रघुवंश अपनी उपमाओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। रघुवंश के नायक अपनी, वीरता पुरूषत्व के बावजूद सामान्य मनुष्य के रूप में हमारे सामने आते हैं।

कुमारसम्भव

कुमारसम्भव महाकाव्य 17 सर्गों में लिखा महाकाव्य है जो युद्ध के देवता कार्तिकेय पर आधारित है। प्रथम सात सर्गों में कुमार कार्तिकेय के माता-पिता शिव और पार्वती के परस्पर प्रभ्य और विवाह पर केंन्द्रित हैं। अंतिम 10 सर्ग कार्तिकेय पर आधारित है। तारक राक्षस के विनाश के वर्णन के साथ महाकाव्य समाप्त होता है।

भट्टिकाव्य

यह महाकाव्य लगभग 7 वीं शताब्दी में वलभी राजा श्रीधरसेंन के तत्वाधान में भतृहरि द्वारा लिखा गया है। इस महाकाव्य में 22 सर्गों में राम कथा वर्णित है। इस काव्य का मुख्य उद्देश्य संस्कृत व्याकरण के रूपों का उदाहरण देना भी रहा है।

3.5.1 खण्डकाव्य

खण्डकाव्य की परम्परा भारत एवं पश्चिम दोनों जगह के साहित्य में मिलती है। पश्चिम की अपेक्षा भारतीय साहित्य में खण्डकाव्य के लक्षणों के बारे में ज्यादा स्पष्ट ढ़ंग से वर्णन किया गया है और यह परम्परा प्राचीन भी है। चूँकि खण्डकाव्य प्रबन्ध काव्य परम्परा की रचना है और महाकाव्य विधा से इसका निकट का संबंध है इसीलिए स्वाभाविक है कि महाकाव्य एवं खण्डकाव्य के लक्षणों में काफी समानता मिले। खण्डकाव्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है- ''मोटे ढ़ंग से कहा जा सकता है कि खण्डकाव्य एक ऐसा पद्यबद्ध है जिसके कथानक में इस प्रकार की एकात्मक अन्विति हो कि उसमें अप्रांसगिंक कथाएँ सामान्य तथा अन्तर्मुक्त न हो सकें, कथा में एकांगिंता हो। साहित्यदर्पणकार के अनुसार खण्डकाव्य को कथा में एकदेशीयता पर बल होता है। इसकी कथा विन्यास क्रम में आरम्भ, विकास, चरमसीमा और निश्चित उद्देश्य पर बल होता है। चूँकि कथा में एकदेशीयता इसका गुण होता है इसलिए इसका आकार महाकाव्य की तुलना में संक्षिप्त होता है। खण्डकाव्य में महाकाव्य की तुलना में भावात्मक तत्वों की प्रबलता होती है। महाकाव्य में जीवन को बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश होती है

जबकि खण्डकाव्य में जीवन को किसी विशिष्ट व्यक्तित्व, घटना, परिस्थिति, विचार, दर्शन के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। इसलिए खण्डकाव्य की तुलना में महाकाव्य में वस्तुनिष्ठता का तत्व ज्यादा प्रबल होता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने खण्डकाव्य पर चर्चा करते हुए लिखा है- महाकाव्य के ही ढंग पर जिस काल की रचना होती है, पर जिसमें पूर्ण जीवन ग्रहण करके खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है उसे खण्डकाव्य कहते है। यह खण्ड जीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः पूर्ण प्रतीत होता है। स्पष्ट है कि खण्डकाव्य में नायक का भी संपूर्ण जीवन चित्रित हो यह आवश्यक नहीं। इस प्रकार खण्डकाव्य में किसी विशिष्ट व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक समस्या पर प्रकाश डालना तथा उस व्यक्तित्व के जीवन के किसी विशेष खण्ड पर प्रकाश डालना ही खण्डकाव्य की प्रमुख विशेषता है। हिंदी साहित्य कोश में खण्डकाव्य के लक्षण पर विचार करते हुए लिखा गया है कि- ''जिन प्रबंधकाव्यों में महाकाव्य के लक्षण (सहचरित्र, समग्र, युगजीवन, महत् उद्देश्य, गरिमामय शैली) नहीं मिलते, वे चाहें आकार में बड़े हो या छोटे, चाहै आठ से कम सर्गवाले हो या अधिक सर्गवाले, महाकाल नहीं माने जायेंगे। ऐसे प्रबंधकाव्य दो प्रकार के होते हैं- एक तो वे जिनमें किसी व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का चित्रण होता है, पर समग्र युगजीवन का चित्रण नहीं होता और न महाकाव्य के अन्य सभी लक्षण पाये जाते हैं। दूसरे वे जिनमें जीवन का खण्ड दृश्य चित्रित होता है और जो कथावस्तु की लघुता तथा उद्देश्य की सीमाओं के कारण वृहदाकार तथा महान् नहीं बन पाते। इनमें से प्रथम प्रकार के प्रबंधकाव्य को एकार्थकाव्य और दूसरे को खण्डकाव्य कहना उचित है। ''इस संबंध में आगे लिखा गया है- बाह्य रूप रचना संबधी सर्गबद्धता का नियम जिस प्रकार महाकाव्य की रचना में पालन नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार खण्डकाव्य के लिए भी यह नहीं कहा जा सकता है कि उसकी वस्तु भिन्न सर्गों में अनिवार्य रूप से विभाजित होनी चाहिए। सर्गों की संख्या निर्धारित करना और भी अंप्रासंगिक है। साधारण तथा खण्डकाव्य में छंदों की विविधता नहीं होती, प्रायः संपूर्ण काव्य एक ही छंद में रचा जाता है। परन्तु इनके अपवाद भी हैं। बीच-बीच में गीतों का प्रयोग भी खण्डकाव्य की विशेषता कही जा सकती है।''

महाकाव्य और खण्डकाव्य के स्वरूप पर डॉ0 सत्यदेव चौधरी ने भी विचार किया है। उन्होंने कथानक, पात्र, रस, छंद एवं प्रभाव के धरातल पर दोनों अनुशासनों की तुलना की है। महाकाल का कथानक जहाँ विस्तृत होता है। मुख्य-कथा के साथ इसमें प्रासंगिक कथाएँ भी चलती रहती हैं। इसके विपरीत खण्डकाव्य में केवल मुख्य कथा का ही महत्व होता है। ऐसा नहीं है कि इसमें प्रासंगिक कथायें आती ही नहीं हैं लेकिन इन कथाओं का मुख्य कथानक की गति में बहुत भोग होता है और ये बहुत देर तक या दूर तक कथानक के साथ नहीं चलती हैं जबकि महाकाव्य की प्रासंगिक कथाएँ स्वतंत्र रूप से चलती हैं, दीर्ध चलती हैं और कई कथाओं का तो मुख्य कथानक से बहुत अनिवार्य संबंध नहीं होता है। इस प्रकार पात्र योजना के संदर्भ में भी

उन्होंने विभेद किया है। महाकाव्य में पात्रों की संख्या सैकड़ों में होती है, जबकि खण्डकाव्य के पात्र सीमित होते हैं। महाकाव्य में मुख्य पात्र (नायक) भी नहीं होते हैं या हो सकते हैं जबकि खण्डकाव्य का नायक ही मुख्य पात्र होता है, बाकि पात्र गौण होते हैं और उनका कथानक की गति में बहुत योग नहीं होता है। शास्त्रीय परम्परा में नायक का कुलीन होना बताया गया था। लेकिन आधुनिक काल में सामान्य, उपेक्षित पात्रों को लेकर भी महाकाव्य लिखे जाने की प्रस्तावना की गई हो। भारतीय खण्डकाव्य में तो सामान्य पात्रों को सफलतापूर्वक नायकतत्व प्रदान किया गया है। इसी प्रकार रस, छंद के नियम में भी महाकाव्य एवं खण्डकाव्य में समानता नहीं है। महाकाल में श्रृंगार, वीर एवं शांत इन रसों में एक रस को अंगीरूप में होना अनिवार्य बताया गया है जबकि खण्डकाव्य के लिए ऐसी कोई शर्त नहीं है।

अभ्यास प्रश्न 1

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. महाकाव्य में ----------से अधिक सर्ग होने चाहिए। (8/10/12)
2. महाभारत की सर्ग संख्या -------- हैं। (18/20/25)
3. रामायण में ----- काण्ड हैं। (आठ/छः/सात)
4. रघुवंशम् ------ सर्गों का महाकाव्य है। (25/27/19)
5. कुमार संभव ----- सर्गों का महाकाव्य है। (17/20/25)

(ख) सही (√) गलत (×) का चुनाव कीजिए।

1. भट्टिकाव्य के रचयिता भतृहरि हैं। ( )
2. भ्रमरदूत खण्डकाव्य के रचयिता सत्यनारायण कविरत्न हैं। ( )
3. खण्डकाव्य प्रबन्ध काव्य है। ( )
4. महाकाव्य प्रबन्ध काव्य है। ( )
5. खण्डकाव्य में एक ही नायक होता है। ( )

3.5.2 खण्डकाव्य: इतिहास में

खण्डकाव्य की विधागत स्थापना संस्कृत काव्य परम्परा तक जाती है लेकिन इसका वास्तविक रूप आधुनिक काल में देखने को मिलता है। आधुनिक काल से पूर्व मध्यकाल के हिंदी साहित्य में खण्डकाव्य की समृद्ध परम्परा देखने को मिलती है। सुदामाचरित्र, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रूक्मिनी मंगल आदि को खण्डकाव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

रीतिकाल में भी वर्णनात्मक प्रबन्ध के अन्तर्गत दानलीला, मानलीला, जलविहार, वनविहार, होली वर्णन, जन्मोत्सव वर्णन, मंगल वर्णन इत्यादि वर्णनात्मक प्रबन्ध लिखे गये थे। वस्तुतः खण्डकाव्य लेखन की दिशा में आधुनिक काल में आकर अभूतपूर्व प्रगति होती हैं भारतेन्दु युग साहित्यिक विधाओं की उत्पत्ति का काल कहा जाता हैं निबन्ध, उपन्यास, कहानी, आत्मकथा, यात्रासाहित्य, समालोचना इत्यादि विधाएँ भारतेन्दु काल में ही सर्वप्रथम अस्तित्व गृहण करती हैं इन गद्य विधाओं के अतिरिक्त काव्यगत संस्कार की दृष्टि से भी भारतेन्दु युग का महत्वपूर्ण योगदान है। चाहै वह कविता हो या खण्डकाव्य। ब्रजभाषा में लिखित श्रीधर पाठक

के एकान्तवासयोगी, जगत सच्चाई सार को कुछ लोग खण्डकाव्य के अंतर्गत रखते हैं। इस संबंध में द्विवेदी युग में विशेष प्रगति होती हैं द्विवेदी युग के प्रतिनिधि साहित्यकार मैथिलीशरण गुप्त का स्थान इस दृष्टि से सर्वोच्च है। गुप्ताजी ने कई खण्डकाव्य की रचना पर खण्डकाव्य विधा को पर्याप्त विकसित करने में अपनी भूमिका का निर्वहन किया है। रंग में भंग, पंचवटी, जयद्रथवध, वनवैभव, बकसंद्वार, हिडिम्बा, सिद्धराज, बहुष, विष्णु प्रिया रजावली आदि उनके प्रसिद्ध खण्डकाव्य हैं। मैथिलिशरण गुप्त जी के खण्डकाव्य का क्षेत्र व्यापक है। गुप्त जी ने पौराणिक, ऐतिहासिक पात्रों को आधार बना करके अपने खण्डकाव्यों की रचना की है। द्विवेदी युग में लिखे गये अन्य खण्डकाव्यों में प्रसिद्ध हैः-

- पवनदूत -------- रामचरित उपाध्याय
- सती सावित्री -------- गिरधर शर्मा
- सुपनाल -------- अनुप शर्मा
- भ्रमरदूत -------- सत्यनारायण कविरत्न
- मौर्य विजय, नकुल -------- सियारामशरण गुप्त

आधुनिक हिंदी साहित्य में छायावाद का स्थान अपनी गीताप्मकता, कल्पना-वैभव, लाक्षमिकता, भाषा की सूक्ष्मता, प्रेम की उदात्रता के कारण सर्वोच्य रहा है। छायावाद की मुख्य उपलब्धि उसके गीत, कविता एवं महाकाव्य रहे हैं, लेकिन इस काल में कुछ महत्वपूर्ण खण्डकाव्य भी लिखे गये हैं जो खण्डकाव्य परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। छायावाद युग के खण्डकाव्य लेखकों में रामनरेश त्रिपाठी, प्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पंत इत्यादि लेखकों ने आगे बढ़ाया। इनमें रामनरेश त्रिपाठी का महत्वपूर्ण योगदान है। त्रिपाठी जी के महत्वपूर्ण खण्डकाव्यों में मिलन, स्वप्न, पथिक रहे हैं। रामनरेश त्रिपाठी के खण्डकाव्य प्राचीन शैली से भिन्न रहे हैं । मनोचरित्र, प्रकृति, काल्पनिक पात्र, राष्ट्रभक्ति जैसे अमूर्त चरित्रों की रामनरेश त्रिपाठी ने सृष्टि की है। जयशंकर प्रसाद ने 'प्रेम पथिक' नामक खण्डकाव्य की रचना की तो सुमित्रानन्दन पंत ने 'ग्रन्थि' की। निराला ने तुलसीदास के चरित्र को लोक और संस्कृति के तत्वों से संयुक्त करके एक नया रूप दिया है। छायावाद युग के ही प्रसिद्ध लेखक डॉ0 राजकुमार वर्मा ने खण्डकाव्य को ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान किया। 'चित्तौड़ की चिंता' वर्मा जी का प्रसिद्ध खण्डकाव्य रहा है, जिसमें उन्होंने चित्तौड़ के बहाने भारत की गौरवशाली परम्परा को रेखांकित किया है । छायावाद युग की भाव प्रवणता, गीतात्मकता, सौन्दर्यभिरूचि चूँकि खण्डकाव्य के अनुकूल नहीं थी इसलिए इस युग में खण्डकाव्यों का विकास पर्याप्त रूप से नहीं हो पाया ।

लेखकों में रामनरेश त्रिपाठी का प्रमुख स्थान है । रामनरेश त्रिपाठी ने खण्डकाव्य परम्परा की प्रचलित परिपाटी से हटकर (पौराणिक-ऐतिहासिक पात्र, कुलीन पात्र, कथा विकास इत्यादि) काल्पनिक, लोकाख्यान परक घटनाओं को देशभक्ति के साथ जोड़कर देखा। रामनरेश त्रिपाठी ने पथिक, मिलन एवं स्पप्न नायक तीन खण्डकाव्यों की रचना की, जो अपनी काव्य की नवीनता एवं अभिव्यक्ति के ट्रीटमेन्ट के कारण चर्चित रहै । छायावाद युग के अन्य प्रसिद्ध खण्डकाव्य हैं-

- प्रेम पथिक -------- जयशंकर प्रसाद

- ग्रन्थि -------- सुमित्रा नंदन पंत
- तुलसीदास -------- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
- चितौड़ की चिंता -------- राजकुमार वर्मा

खण्डकाव्य के विकास की दुष्टि से स्वातंत्त्योदर हिंदी काव्य विशेष समृद्ध रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कवियों के सामने सामाजिक जीवन के नये-नये प्रश्न उभरे। नवीन प्रश्नों के समाधान के लिए कवियों ने पौराणिक मिथकीय पृष्ठभूमि को अपनी रचना का आधार बनाया। खण्डकाव्य साहित्य का लोकप्रचलित आधार पौराणिक-मिथकीय ही बना रहा, यह इसकी एक सीमा रही है। हांलाकि खण्ड रचयिताओं ने इसे तत्कालीन समस्याओं के संदर्भो के रचनात्मक समाधान के लिए ही उपयोग किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे सामने दो तरह के खण्डकाव्य खण्डकाव्य लेखक सामने आए। एक, तो वे लेखक हैं जो छायावाद युग में भी लेखक कार्य कर रहै थे। ऐसे लेखकों में रामधारी सिंह 'दिनकर' , बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' नरेन्द्र शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' , उदयशंकर भट्ट, तथा सोहनलाल द्विवेदी मुख्य हैं। दिनकर भी 'रश्मिरथी' कर्ण के जीवन पर केंद्रित खण्डकाव्य है। रश्मिरथी को अपार लोकप्रियता प्राप्त हुई - इसका कारण एक तो यह था कि निकर ने इसे तत्कालीन समस्याओं सत्ता वचस्व, वर्णवोद, सामाजिक असामानता से जोड़ दिया है। दूसरे इसकी ओजस्वी भाषा-शैली ने पाठकों को सहज ही अपने प्रवाह में ले लिया। अन्य खण्डकाव्यों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का 'प्राणार्पण' नरेनद्र शर्मा का 'द्रोपती' केदारनाथ मिश्र प्रभात का 'कर्ण' उदयशंकर भट्ट की कौन्तेयकथा, सोहनलाल द्विवेदी का कुशल विशेष चर्चित खण्डकाव्य रहै हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दूसरे प्रकार के लेखक वे लोग हैं जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही लेखन कार्य प्रारम्भ किया। ऐसे लेखकों में धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुँवर नारायण, नागार्जुन तथा जगदीश गुप्त प्रमुख खण्डकाव्य लेखक हैं। उपरोक्त लेखकों ने अपनी भीम (विषय वस्तु) का चुनाव तो वैदिक-पौराणिक एवं महाकाव्यकालीन समय का चुना है लेकिन प्रश्न समसामयिक ही रखे हैं, इसीलिए ये खण्डकाव्य महत्वपूर्ण बन सके हैं।

3.6 सारांश

बी.ए. एच. एल. -201 की यह इकाई महाकाव्य एवं खण्डकाव्य पर आधारित है। इस इकाई का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि-

- महाकाव्य समाज और राष्ट्र के यर्थाथ को समग्रता में व्यक्त करने वाला काव्य रूप है।
- संस्कृत और हिंदी साहित्य के प्रमुख महाकाव्यों का परिचय प्राप्त किया। इस बहाने आपने जाना कि संस्कृत और हिंदी की जातीय चेतना इन महाकाव्यों में किस प्रकार व्यक्त हुई है।
- महाकाव्य- खण्डकाव्य काव्यरूपों के बहाने काव्यरूपों के गठन की प्रक्रिया को आपने जाना। आपने अध्ययन किया कि समाज की गति को पकड़ने के क्रम में काव्यरूप किस प्रकार निर्मित होते हैं। खण्डकाव्य, किसी यर्थाथ को पकड़ने का संक्षिप्त रूप तोहै,

किन्तु अपने घनीमून रूप में वह महाकाव्य की तुलना में ज्यादा असरकारक है, यह अध्ययन आपने किया।

3.7 शब्दावली

- अभिन्न - बिना अलगाव के, जुटा हुआ।
  साहित्य का समाजशास्त्र - साहित्य को समाज के अन्य अनुशासनों के बीच रखकर देखे जाने की पद्धति
- रूपान्तरण - बदलाव की प्रक्रिया
- साहित्यशास्त्र - साहित्य का व्याकरण एवं अनुशासन ही सहित्यशास्त्र है।
- औदात्य - गरिमापूर्व एवं भव्य लेखन शैली
- पुराण - भारतीय हिन्दू धार्मिक साहित्य, उपनिषद् काल के बाद का साहित्य
- मिथकं - ऐसा साहित्य जिसमें इतिहास व कल्पना धुल मिल गये हों।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1)

(क)

1 - 8

2 - 18

3 - सात

4 - 19

5 - 17

(ख)

1 - सही

2 - सही

3 - सही

4 - सही

5 - सही

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- हिन्दी साहित्य का आाधुनिक काल - शर्मा, हरिचरण,
मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर,
प्रथम संस्करण 2007

2- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - सिंह, बच्चन, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2009

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1- हिंदी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र,

लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2007

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. महाकाव्य की सैद्धान्तिकी पर निबंध लिखिए।
2. प्रमुख महाकाव्यों के संदर्भा में महाकाव्य की विशेषता निरूपित कीजिए।

इकाई 4- आधुनिक पद्य का रचना रूप

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 आधुनिक पद्य का रचना रूप
4.4 आधुनिक कविता का रूप विकास
4.5 काव्यभाषा किकास
4.6 सारांश

4.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग के आगमन के साथ ही पुराने जीवन मूल्य, सामाजिक संरचना में परिवर्तन हीने प्रारंम्भ हो जाते हैं। यह स्वाभाविक भी है कि हम हर युग में नये मूल्य, जीवन-पद्धति ग्रहण करते हैं। सामाजिक परिवेश की संरचना उस युग को धर्म- संस्कृति-राजनीति- एवं अर्थनीति से संचालित होती है, इसीलिए वह 'जटिल कोड' का रूप धारण कर लेती है। इसी जटिल कोड का भाष्य लेखक- रचनाकार 'अपने ढंग' से करता है। 'अपने ढंग' कहने का तात्पय्र ही है कि हर रचनाकार अपने परिवेश की संरचना को अपनी समझ के स्तर पर ग्रहण करता हैं । जाहिर है यह आनी समझ भी समाज - निरपेक्ष नहीं है। बल्कि गहरे अर्थों में 'सामाजिक गति' का 'सचेतन व्यक्ति' पर पडा़ आरोपण' ही है। यहाँ हम 'सामाजिक गति' 'संचेतन व्यक्ति; एवं ' आरोपण' शब्द को समझने का प्रयास करेंगे। 'सामाजिक गति' का तात्पर्य है ऐसा समाज जो जड़ता, रूढ़ियों, कु-प्रथाओं को अस्वीकार कर नये मूल्यों को धारण करने की क्षमता रखता हो। और केवल क्षमता ही न रखता हो बल्कि उसी के अनुरूप अपने को युगानुरूप परिवर्तित भी करता चलता है। 'संचेतन व्यक्ति' का तात्पर्य ऐसे मनुष्य से है जो युगधर्म की विशेषताओं को 'व्यापक अर्थो में ग्रहण करता हो। यानी वह व्यक्ति अपने युग की समस्त विशेषताओं को न केवल धारण करता हो बल्कि उस के अनुरूप क्रिया- रूपों का निर्माण भी करता चलता है। संचेतन का तात्पर्य इस प्रकार ऐसे व्यक्ति से है जो एक ओर तो अपनी चेतना के प्रति ईमानदार-जागरूक ही, दूसरी ओर सामाजिक चेतना को घनात्मक रूप में क्रियाशील रखता हो। 'आरोपण' क्रियारूप का साम्बन्धिक रूप है। यह सामाजिक गति; और 'संचेतन व्यक्ति' के क्रिया-प्रतिक्रिया संबंध का ही रूप है। सामाजिक गति चूँकि क्रियाशील व्यक्तियों के समूह का परिणाम है इसलिए उसमें अमूर्तता का गुण होता है। समाज मर्तता से अमूर्तता की और अग्रसर होता है और फिर मूर्तता से अमूर्तता की यात्रा करता है............ इसी क्रम में उसे सचेतन व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती हैं अतः सामाजिक गति, कुछ सचेतन व्यक्ति पर आरोपित हो जाती है और एक स्वस्थ्य परिवेश का निर्माण करती है ।

सामाजिक गति और साहित्य का गहरा सम्बन्ध है। साहित्य को साहित्य बनाने का कार्य सामाजिक गति से प्राप्त होता है तथा सामाजिक गति साहित्य से समृद्ध होती चलती है। इस प्रकार साहित्य का स्वरूप नित्य-प्रति समय परिवर्तित होता रहता है। साहित्य के माध्यम से परिवर्तित समय की प्रमाणिक पहचान साहित्य- रूपों के माध्यम से होती है। साहित्य-रूपों का संबंध व्यक्तिगत भी है।और सामाजिक भी........... जब कोई सक्षम लेखक सामाजिक आशा-आकांक्षा को नयी अभिव्यक्ति दे देता है............ तब नये साहिब - रूप सामने आते हैं या तो एक ही समय में कई लेखक- कवत ' एक विशेष कथ्य' को कहने के लिए उसी के अनुकूल नये साहित्य - रूपों का प्रयोग करने लगते हैं........... जैसे निबंध विधा या उपन्यास विधा का आगमन सामूहिक प्रयास की ही देन हैं । की यह चौथी इकाई है। इस इकाई में हम आधुनिक कविता की, विशेषकर हिन्दी कविता के रचना रूप का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

पद्य साहित्य- 201 की यह चौथी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- कविता को और बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।
- काव्य रूपों की संरचना की अच्छे ढंग से समझ सकेंगे।
- सामाजिक गति के साथ साहित्यिक काव्य रूपों के अंतर्सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- आधुनिक पद्य के रचना- रूपों से परिचित हो सकेंगे।
- काव्य रूपों के बहाने सामाजिक और साहित्यिक यात्रा- प्रक्रिया से परिचित हो सकेंगे।

4.3 आधुनिक कविता का रूप - विकास

आपने पूर्व के अध्यायों में अध्ययन किया कि आधुनिक काट के आगमन के साथ ही कथ्य व शिल्प में गुणात्मक परिवर्तन हुए। भारतेन्दु हरिचन्द्र ने काव्य क्षेत्र में कई परिवर्तन किये। काव्य की भाषा ब्रज होने के वावजूद उन्होंने खडी़ बोली में लिखने का प्रयास किया। ब्रजभाषा की कविताओं में उन्होंने छंद तो पुराने ही रखे हैं। यथा- छप्पय कविता, सवैया जैसे छन्दों का लेकिन इसके साथ ही उन्होंने चैता, कजली, होली जैसे लोक धुनों व शास्त्रीय संगीत पद्धतियां का भी कुलतापूर्वक प्रयोग किया है।

द्विवेदी युग में (महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम रखा गया, 1900-1920 ई0 तक) खडी़ बोली कविता का पर्याप्त विकास हुआ। श्रीधर पाठक जैसे कवियों ने खण्डकाव्यों का अनुवाद खडी़ बोली में करके खडी़ बोली व शिल्प के प्रति जागरूक करने का कार्य शुरू कर दिया था प्रारम्भ में खडी़ बोली कविता के संदर्भ में यह भ्रम भी फैलाया गया कि खडी़ बोली में सरस कविताऐं नहीं लिखी जा सकती । अयोध्याप्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रियप्रवास' महाकाव्य हो गया 'रसकलश' इस संदर्भ के महत्पूर्ण कार्य थे। आगे चलकर साकेत महाकाव्य (1934 ई0 प्रकाशन) के प्रकाशन तक यह विवाद चलता रहा। कुल मिलाकर द्विवेदी युग तक सैद्धान्तिक रूप से खडी़ बोली और ब्रजभाषा के बीच सैद्धान्तिक और रचनात्मक संघर्ष होता रहा। ब्रजभाषा के समर्थक जगन्नाथक 'रत्नाकर' का 'उद्ववरातक' इस ढंग के प्रयास की ही अंतिम कडी़ था। यानी कविता के एक नये 'फार्म' (रूप) 'कविता' भी इस युग में लिखी जाने लगी। भारतेन्दु युग में यह संभव नहीं था। इसी के साथ ही प्रियप्रवास व साकेत का रूप महाकाव्य बने। राम व कृष्ण इस युग के भी नायक बने । ऐसा क्यों हुआ? आधुनिक बोध के बावजूद हमारे नायक क्यों नहीं बदले? प्रिय प्रवास के नायक-नायिका कृष्ण व राधा है, किंचित बदले हुए भी..... ''संदेश यहाँ नहीं मैं, स्वर्ग का लाया/ इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया'' जैसी पंक्तियाँ बदली मनोवृा की ही परिचायक है। वस्तुतः वह युग अपनी मूल चेतना में संक्रान्तिकालीन वृत्तियों को धारण किये हुए हैं। एक ओर आधुनिकता, दूसरी ओर पुरातनता। एक और खडी़ बोली दूसरी और ब्रजभाषा । एक ओर कविता का आधुनिक फॉर्म दूसरी ओर महाकाव्य -खण्डकाव्य जैसे रूप। खण्डकाव्य की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त ने कई खण्डकाव्र लिखे हैं- स्पष्ट है कि कथ्य और रूप की अनिवार्यता के कारण ही हिन्दी कविता में रूप के संउर्भ में पुराने काव्य रूप चलते रहे।

हिन्दी कविता के रूप स्थिर करने की दृष्टि से छायावादी कविता का विशेष महत्व व योगदान है। छायावाद में भी महाकाव्य (कामायनी) है, छायावाद में भी पुराने छन्दों का प्रयोग है किन्तु

कविता को छन्दों के बंधन से मुक्त करने का कार्य भी छायावाद ने ही किया। एक ओर ब्रजभाषा कविता की समाप्ति हुई तो दूसरी ओर महाकाव्य का कथ्य भी आधुनिक हो गया। इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी के खण्काव्य स्वप्न, पथिक एवं मिलन के कथ्य-विषय भी बदल गये। खण्डकाव्य के लिए अब ऐतिहासिक व पौराणिक-मिथकीय चरित्रों की अनिवार्यता नहीं रह गई। इसी प्रकार राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता धारा में भी हिन्दी कविता का स्वरूप राष्ट्रीय-सांस्कृतिक हो चला। चाहे 'झांसी की रानी' वैलेड गीत हो या माखनलाल चुतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' (चाह नहीं, मेैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।/ चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ''/ चाह नहीं सम्राटों के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ।/ चाह नहीं, देवों के सिर पर चढूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।।)

मुझे तोड़ लेना वनमाली'। उस पथ में देना तुम फेंक''। मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने'। जिस पथ जाने वी अनेक'')

या दिनकर या सियारामशरण गुप्त का काव्य सभी अपनी चेतना में राष्ट्रीय भाव बोध से युक्त है। इसी युग में प्रगीत बहुतायत रचे गयै । प्रगतिवादी काव्य धारा के आने से हिन्दी कविता में यर्थाथवादी चेतना का पर्याप्त विकास हुआ । प्रगतिवाद में अन्य काव्य धाराओं की तरह प्रबन्ध काव्य प्रायः नहीं लिखे गये । छायावाद से एक नये काव्य रूप 'लम्बी कविता' का प्रादुर्भाव हुआ। जिस प्रकार महाकाव्य का ही आधुनिक रूप लम्बी कविता को माना जाने लगा। इस संदर्भ में सुमित्रानंदन पंत की परिवर्तन, निराला की सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास, मुक्तिबोध की अंधेरे में, ब्रह्मराक्षस, अज्ञेय की असाध्यवीणा, धूमिल की पटकथा व केदारनाथ सिंह की वाद्य जैसी कविताएँ का उल्लेख किया जा सकता है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की कविताओं पर पश्चिमी रंग भी कम नहीं है । मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद एवं अस्तित्ववाद जैसे 'वाद' के प्रभाव से हिन्दी कविता की रूप संरचना निरन्तर विस्तृत होती रही। वह चाहे मुक्तिबोध पर फेंटेसी शिल्प हो, निराला पर एलिजी गीत का प्रभाव या अज्ञेय पर जापानी-चीनी शिल्प (हायकू) का प्रभाव

अभ्यास प्रश्न

(क)- रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. भारतेन्दु युग के कविता की प्रधान भाषा..................... थी। (ब्रज/अवधी/खडी़ बोली)
2. प्रियप्रवास रचना की विधा...... है। (उपन्यास/कविता/ महाकाव्य)
3. 'रसकलस' पुस्तक के रचयिता........ हैं। (निराल/मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध)
4. साकेत महाकाव्य का प्रकाशन.......... है। (1934/1950/1970)
5. द्विवेदी युग का समय है....। (1910-1920/1900-1920/ 1850-1920)

(ख) सत्य/ असत्य का चुनाव कीजिए।

1. उद्धवशतक रचना की भाषा ब्रज है। (सत्य/असत्य)
2. खण्डकाव्य विधा में सर्वाधिक रचनाएँ मैथिलीशरण गुप्त ने लिखी हैं।(सत्य/असत्य)
3. पुष्प की अभिलाषा कविता के रचनाकार माखनलाल चतुर्वेदी हैं। (सत्य/असत्य)
4. कामायनी की रचना विधा खण्डकाव्य है। (सत्य/असत्य)

5. सरोज स्मृति शोक गीत हैं। (सत्य/असत्य)

4.4 काव्यरूप और समाज

नये युग के आगमन के साथ ही पुराने जीवन मूल्य, सामाजिक संरचना में परिवर्तन होने प्रारंभ हो जाते हैं। कारण यह कि हम हर युग में नये मूल्य, जीवन- पद्धति ग्रहण करते हैं। सामाजिक परिवेशे की संरचना उस युग की धर्म-संस्कृति -राजनीति एवं अर्थनीति से संचालित होती है, इसीलिए वह 'जटिल कोड' का रूप धारण कर लेती है। इसी जटिल कोड का भाष्य लेखक- रचनाकार 'अपने ढंग' से करता है। 'अपने ढंग' कहने का तात्पर्य ही है कि हर रचनाकार अपने परिवेश की संरचना को अपनी समझ' के स्तर पर ग्रहण करता है। लेखक की 'अपनी समझ' भी गहरे अर्थों में ' सामाजिक गति' का तात्पर्य है, ऐसा समाज जो जड़ता, रूढ़ियों, कु-प्रथाओं को अस्वीकार कर नये मूल्यों को धारण करने की क्षमता रखता हो और युगानुरूप अपने को परिवर्तित भी करता चलता है। 'सचेतन व्यक्ति' का तात्पर्य ऐसे मनुष्य से है जो युगधर्म की विशेषताओं को 'व्यापक अर्थों' में ग्रहण करता हो और उस के अनुरूप क्रिया-रूपों का निर्माण भी करता चलता है। इस प्रकार सचेतन का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो एक ओर तो अपनी चेतना के प्रति ईमानदार- जागरूक हो, दूसरी ओर समाजिक चेतना को धनात्मक रूप में क्रियाशील भी रखता हो। 'आरोहण' क्रियारूप का सांबंधिक रूप है। यह ' सामाजिक गति' और 'सचेतन व्यक्ति' के क्रिया- प्रतिक्रिया संबंध का ही रूप है।

सामाजिक गति और साहित्य का गहरा संबंध है। साहित्य को साहित्य बनाने का कार्य सामाजिक गति से प्राप्त होता है तथा सामाजिक गति साहित्य से समृद्ध होती चलती है। इस प्रकार साहित्य का स्वरूप निम्न- प्रति समय परिवर्तित होता रहता है। साहित्य के माध्यम से परिवर्तित समय की पहचान साहित्य - रूपों के माध्यम से होती है। साहित्य-रूपों का संबंध व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी..........। जब कोई सक्षम लेखक सामाजिक आशा- आकांक्षाओं को नयी अभिव्यक्ति दे देता है, तब नये साहित्य - रूप सामने आते हैं या जो एक ही समय में कई लेखक-कवि एम 'विशेष कथ्य' को कहने के लिए उसी के अनुकूल नये साहित्य - रूपों का प्रयोग करने लगते हैं। काव्य रूप के प्रयोग का समबन्ध बदलती सामाजिक अभिरूचि व साहित्यिकों के आपसी समझ के अंतर्सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है। काव्य रूप के प्रयोग का सीधा सम्बन्ध 'साहित्यिक' से जुड़ा हुआ है। काव्य रूप में बदलाव की प्रक्रिया के कई कारणहै। राजनीतिक, धार्मिक आर्थिक, सांस्कृतिक बदलाव के परिवर्तन को जब एक समाज और उसममें रहने वाले सचेतन साहित्यकार पकड़ते हैं तब एक नये काव्यरूप के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। कई बार काव्य रूप एक साथ कई साहित्यकारों द्वारा क्रमशः प्रयुक्त होने लगता है और कई बार एक सक्षम व्यक्तित्व नये काव्यरूप का निर्माता बन जाता है । लेकिन अधिकंश में ऐसा ही होता है कि एक समय में......... एक साथ ही कई साहित्यकार उस विधा की ओर झुक जाते हैं । प्रश्न यह है कि काव्रूप के गठन में लेखकीय व्यक्तित्व का क्या योगदान है? या लेखकीय व्यक्तित्व के गठन में काव्य रूप अपनी भूमिका किस प्रकार निभाते

है? हर व्यक्तित्व, खासतौर सलेखकीय व्यक्तितत्व के निर्माण में कई प्रकार के अवयव कार्य करते है। लेखक अपनी सामाजिक-राजनीतिक - सांस्कृतिक चेतना की उपज होता है........... इस प्रक्रिया में होता यह हे कि वह सारे बाह्य परिवेश को अपनी आंतरिक संरचना (अनुभूति, संवेदना की क्रिया- प्रतिक्रिया) के अनुसार ग्रहण करता है..........। हर लेखक की आन्तरिक संरचना भिन्नहोती है क्योंकि जीवन- जगत की बहुबिध छवियाँ इतनी विस्तृत होती है कि लेखक उनमें से सबको नहीं पकड़ पाता..............और जो पकड़ पता है, उनकी अनुभूति भी भिन्न प्रकार की होती है, कारण यह कि बहुविध छवियों को वह चेतना के स्तर पर ग्रहण करता है और ग्रहण अब तक प्राप्त की गई चेतना के अनुसार ही वह उन्हें आत्मसात करता है, इसीलिए लेखक सब कुछ को अपनी अनुभूति-संवेदना का अंग नहीं बना पाता है, औरजब अपनी अनुभूति - संवेदना को वह अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है तब उसकी चेतना उसकी भाषा में प्रकट हो जाती है। चूंकि हर लेखक का व्यक्तित्व- गठन उसकी चेतना, जो सबसे अलग है, का ही बाह्य- प्रकटीकरण होता है इसलिए जब वह अपनी रचना का निर्माण करता है तब स्वभावतः ही एक कथ्य की शैली उद्पाठित हो जाती है । इस प्रकार काव्य-रूप और काव्य-शैली में भेद होता है।

काव्य- रूप का सम्बन्ध कविता के एक विशेष प्रकार के ढाँचे से है। 'विशेष प्रकार के ढाँचे' का यहाँ आशय है कि - वह ढाँचा, रूप जो अपनी कथ्य की भंगिया में अलग स्वरूप रखता हो............ यानी जिसमें एक विशेष प्रकार का ही कथ्य कहा जा सके........... कथ्य के अनुरूप ही काव्य - यप तय होते हैं, इसीलिए हर रचनाकार अपने काव्य-रूप का चुनाव करता है। दूसरे ढंग से कहना चाहें तो यह कि महाकाव्य, खण्डकाव्य जैसी विधाएँ क्यों क्रमशः कम होती चजी गई? या आधुनिक सम्वेदना की अभिव्यक्ति के लिए ये विधाएँ क्यों अपर्याप्त होती गईद्य तो काव्य- रूप का सम्बन्ध जहाँ कथ्य-परिवेश के बदलाव से ज्यादा जुड़ा हुआ है वहीं काव्य- शैली का प्रश्न लेखकीय - व्यक्तित्व के ज्यादा करीब है। विशेष काव्य-रूप अपनाते हुए भी जब सक्षमल लेखक नये- नये प्रयोग करना शुरू कर देता है, तो नयी-नयी काव्य-शैलियों का जन्म होता हे। काव्य- शैली का सम्बन्ध भी अनिवार्यत लेखकीय व्यक्तित्व से सीधे जुड़ा हुआ है, इसीलिए जब अलग-अलग सक्षम लेखक भी एक ही काल, भाषा व विद्या में लिखते है, तो उनकी काव्य- शैली बदल जाती है। अज्ञेय अपने लिए छोटी कविताऐं और 'हायकू' का चुनाव करते हैं, क्योंकि भाषा की सघनता के वे पक्षधर हैं और कविता अपने संश्लिष्ट रूप में सबसे ज्यादा भाषा- मितव्ययी विद्या है। दूसरा कारण यह भी है कि अज्ञेय यूरोपीय संस्कृति खासकर जापानी संस्कृति व चीनी संस्कृति से जुड़े रहे हैं। इसी प्रकार मुक्तिबोध मनोवैज्ञानिक यर्थाथ को बहुत महत्व देते थे, इसीलिए उन्होंने 'फैंटेसी' शैली का प्रयोग किया। व्यक्तित्व के अनगढ़पन के दबाव के कारण ही मुक्तिबोध ने अपने लिए 'लम्बी कविता' विद्या का चुनाव किया। जयशंकर प्रसाद जब 'महाकाव्य' विधा का प्रयोग करते हैं तो अपना वर्व्य- विषय भारतीय संस्कृति ही चुनते हैं। 'आनन्दवाद', मानव- सम्भ्यता का विकास क्रम एवं सांस्कृतिक संघर्ष एवं आधुनिक एवं प्राचीन जीवन मूल्यों का संघर्ष महाकाव्य जेैसी विधा में ही संभव है, इसीलिए प्रसाद जी इस विधा का चुनाव करते हैं, तो क्या लेखकीय विधा और वर्व्य- विषय का अनिवार्य संबंध हैं? कई बार ऐसा होता है कि एक ही तरह के वर्व्य- विषय के लिए भिन्न-भिन्न लेखक एक ही विधा

का चुनाव करते हैं। लेखकीय व्यक्तित्व 'विधागत प्रयोग' के माध्यम से उस विधा की संभावना का विस्तार करता है।

4.5 सारांश

बी.ए.एच.एल- 203 की यह चौथी इकाई है। इस इकाई का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि-

- हर युग की सामाजिक संरचना उस युग की धर्म-संस्कृति राजनीति एवं अर्थनीति से संचालित है और इसी जटिल कोड का भाष्य लेखक, रचनाका अपने ढंग से करता है।
- साहित्य के माध्यम से परिवर्तित समय की प्रामाणिक पहचान साहित्य रूपों के माध्यम से होती है। साहित्य रूपों का संबंध व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी।
- भारतेन्दु युग की कविता रूप का प्रायः परम्परागत ही रहा।
- द्विवेदी युग में आकर कविता के रूप में प्रयोग प्रारंभ होने शुरू हो जाते हैं।
- छायावादी युग में लम्बी कविता का रूप सामने आता है।
- प्रगतिवाद, प्रयोगवाद में काव्य शिल्प में कई प्रयोग हमें देखने को मिलते हैं।

4.6 शब्दावली

सामाजिक गति	-	समाज को आगे ले जाने गले मोड़।
सचेतन व्यक्ति	-	अपनी स्थिति व सामाजिक देश काल को समझने वाला।
आरोपण		-किसी मत, विचारधारा का दूसरे पर पड़ा प्रभाव।
जड़ता	-	स्थिर नकारात्मक दशा।
अनुभूति	-	रचना का कोई खास ढंग।
छवि	-	चित्र।
मितव्यमियता	-	बचत की प्रकृति।
फैंटेसी	-	स्वप्न काव्य शैली।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)

1. ब्रज

. महाकाव्य

3. हरिऔध

4. 1934

5. 1900- 1920

(ख)

1. सत्य

2. सत्य

3. सत्य

4. असत्य
5. सत्य

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक हिंछी कविता का इतिहास- नवल, नंदकिशोर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।

4.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2. काव्य रूप और समाज के अंतर्सम्बन्ध पर निबंध लिखिए।
3. हिन्दी काव्य रूपों के विकास क्रम को रेंखांकित किजिए।

इकाई 5 हिन्दी साहित्य का आदिकालः उद्भव एव विकास

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 आदिकाल की अवधारण और सीमा निर्धारण
5.3.1 आदि काल या वीरगाथा काल
5.3.2 नामकरण वैविध्य
5.3.3 आदिकालः सीमा निर्धारण
5.4 आदिकाल आधारभूत समाग्री
5.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री
5.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 सहायक पाठ्य सामग्री
5.8 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम से सम्बंधित है। इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी साहित्येतिहास की सम्पूर्ण परम्परा एवं साहित्येतिहास की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य से प्रथम काल खण्ड आदिकाल के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अंतर्गत आप यह भी जानेंगे की हिन्दी साहित्येतिहासकारों को आदिकाल से सम्बंधित कौन -कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ा है । आदिकालीन कविता के उदय की पृष्ठभूमि तथा आदिकालीन कविता के नामकरण तथा सीमांकन का अध्ययन भी इस इकाई में किया गया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- काल निर्धारण की आधार सामग्री पर विद्वानों का मतान्तर क्यों रहा है, इसे समझ सकेंगे।
- आदिकाल की पृष्ठभूमि क्या थी, यह जान सकेंगे ।
- आदिकालीन सामान्य प्रवृत्तियों को जान पायेंगे तथा साथ हि साथ यह भी जान सकेंगे कि आदिकाल के विकास का स्वरूप क्या है।
- विभिन्न साहित्येतिहासकारों के मत-मतान्तरों की समीक्षा कर सकेंगे।

5.3 आदिकाल की अवधारणा और सीमा निर्धारण

5.3.1 आदिकाल या वीरगाथा काल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन में प्रथम काल -खण्ड को वर्गीकृत करते हुए नाम दिया गया था - वीरगाथा काल (आदिकाल- सं0 1050-1350) । विकल्प रूप में उन्होंने वीरगाथा काल को आदिकाल भी कहा क्योंकि बारह आधार ग्रन्थों में से चार अपभ्रंश भाषा की रचनाएँ थी। उन्होंने बताया कि जयचन्द्र प्रकाश, जयमंयक जसचंद्रिका (भट्ट केदार और मधुकर कवि) सूचना (नोटिस) मात्र है। हम्मीर रम्सो (शारंगधर कवि) का आधार प्राकृत-पैगंलम् में आगत कुछ पद्य हैं और वह काव्य आधा ही प्राप्त है। विजयपाल रासो के सौ छन्द ही प्राप्त हुए है, इस प्रकार यह ग्रन्थ भी अधूरा और वीसलदेव रासो की भाँति प्रेमगाथा काव्य है। वीरगाथा नहीं। अमीर खुसरो की पहै लियाँ भी वीरगाथा के अंतर्गत ग्राह्य नहीं है। पृथ्वीराज रासों की प्रामाणिकता जितनी संदिग्ध है उतनी ही परमाल रासो की क्योंकि वह लोक (श्रुत) काव्य आल्हा है। मूल पाठ का निर्धारण असंभव है।

आचार्य शुक्ल के पास जो अन्य सामग्री स्त्रोत उपलब्ध होते थे, वे उन्होनें धार्मिक एवं सांप्रदायिक मूलक बताए थे, पर परवर्ती शोध कार्यो से यह विदित होता है कि ये धार्मिक और सम्प्रदाय मूलक ग्रन्थ साहित्यिक उदारता से शून्य नहीं थे। तभी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि - धार्मिक प्रेरणा या आध्यत्मिक उपदेश होना काव्य का बाधक नहीं समझा जाना

चाहिए अन्यथा हमें रामायण, महाभारत, भागवत एवं हिन्दी के रामचरित मानस, सूरसागर आदि साहित्यिक सौन्दर्य संवलित अनुपम ग्रंथ-रत्नों को भी साहित्य की परिधि से बाहर रखना पड़ जाएगा। (हिन्दी साहित्य का आदिकाल, प्रथम व्याख्यान,पृष्ठ 49)साहित्य का इतिहास न तो इतिहास के वृत्ति प्रस्तुति का निरूपण है और न प्रशस्ति मूलक सम्वेदना । उसमें साहित्येतिहासकार के भीतर साहित्यकार की सम्वेदना का समाहार अनिवार्य है । तभी वह साहित्यिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों की संरचना से ही काल विशेष की संज्ञा प्राप्त कर सकता है।

5.3.2 नामकरण वैविध्य और आधार

हिन्दी साहित्य के इस आदिकाल विकल्प की उपेक्षा करते हुए रामचन्द्र शुक्ल से पूर्ववर्ती मिश्रबन्धु (मिश्रबन्धु विनोद) ने उसे प्रारम्भिक काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे बीजवपन काल, रामकुमार वर्मा ने उसे संधिकाल एवं चारण काल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वीरकाल एवं बच्चन सिहं ने अपभ्रंशकाल नाम दिया है । काल विभाजन और नामकरण प्रवृत्तिपरक होता है। यह आप समझ चुके हैं, पर यह भी समझना उचित होगा कि ये दो अलग प्रश्न नहीं है, मूलतः एक ही है। जिस प्रकार रचना की प्रवृत्ति काल-विभाजन का आधार है, उसी प्रकार वह नामकरण का भी महत्वपूर्ण आधार है। नामकरण के निर्मिति में तद्विषयक रचना कृतियों की बहुलता है और उन रचनाओं में प्रवृत्ति मूलक प्रतिशत निकालकर काल खण्ड विशेष का नामकरण किया जाता है। परिवर्ती हिन्दी साहित्येतिहाकारों में सभी एकमत से स्वीकार करते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास सर्वमान्य है . कुछ मूल प्रश्नों को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण ढांचा लगभग सर्वमान्य है .

5.3.3 आदिकाल: सीमा निर्धारण

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल पर विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद है। इस के मूल में महत्वपूर्ण कारण अपभ्रंश भाषा की हिन्दी में स्वीकृति या हिन्दी से बहिष्कृति की मानसिकता है। पूर्व खण्ड के अध्ययन के बाद आप यह अवश्य ही जान गए हैं कि सम्पूर्ण भारतीय वाङमय में अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। उसमें कौन से परिवर्तनकारी बिंब कब आरंभ हुए इसको सहज रूप में कह पाना संभव नहीं है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा में ये परविर्तन सहज ही उभरते गए है। वास्तव में अपभ्रंश भाषा जब परिनिष्ठित और साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हुई, तब तक वह जनभाषा से दूर हो गई और उस अपभ्रंश से इतर जनभाषा से ही हिन्दी का विकास होता है। उस समय यह अपभ्रंश ही एक नई भाषा (या पुरानी हिन्दी) के रूप में विकसित हो रही थी। हिन्दी के आरंभिक रूप का परिचय बौद्ध तांत्रिकों की रचनाओं में मिलता है। तभी गुलेरी ने लिखा है कि "अपभ्रंश या प्राकृतभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिकों और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।"

जार्ज ग्रियर्सन आदिकाल को ‘चारण काल’ कहते हैं और इसका आरंभ 643 ई0 से मानते हैं जबकि चारण काव्य परम्परा का विकास तब नहीं हुआ था क्योंकि वह काल-खण्ड

नाथों-सिद्धों का सर्जन काल था। चारण काल एवं साहित्य का आविर्भाव दसवीं शताब्दी के बाद ही होता है। इसलिए ग्रियर्सन के विचार त्याज्य है। मिश्रबंधुओं ने आदिकाल का नामकरण करते हुए प्रवृत्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। डॉ.रामकुमार वर्मा ने इस काल खण्ड को 'संधिकाल' और 'चारण काल' कहा है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. वीरगाथाकाल नामकरण क्यों अस्वीकार है ?
2. आदिकाल के विकल्प का चयन क्यों आवश्यक समझा गया ?

5.4 आदिकाल की आधारभूत सामग्री

5.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री

अभी तक के अध्ययन के उपरान्त आज यह भली भाँति जान चुके हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा आदिकाल के लिए गृहीत बारह पुस्तकों की विषय-सामग्री वीरगाथा काल के नाम की सार्थकता सिद्ध नहीं कर पाती कुछ मात्र नोटिस या सूचना मात्र थीं कुछ वीर गाथात्मक प्रवृत्तिमूलक नहीं थीं, कुछ अपूर्ण और प्रेमपरक थी। अतः विकल्प के रूप में आदिकाल को ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समर्थन दिया है । इस प्रकार आदिकाल नामकरण के निर्धारण में आधारभूत सामग्री निम्नांकित है ।

1. स्वयंभू - पउम चरिउ (पद्म चरित-रामचरित) रिट्णेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित)
2. पुष्पदन्त - पाय कुमार चरिउ (नागकुमार चरित)
3. हरिभद्र सूरि - णेमिनाथ चरिउ (नेमिनाथ चरित)
4. धनपाल - भविष्यतकथा, करकंड चरिउ, जसहर चरिउ
5. जोइन्दु - परमात्मा प्रकाश
6. रामसिंह - पाहुड़ दोहा
7. सरहपा - दोहाकोश
8. अद्दहमाण - संदेश रासक
9. है मचन्द्र - प्राकृत व्याकरण (दोहा काव्य)
10. दलपति विजय - बीसलदेव रासो
11. चन्दबरदाई - पृथ्वीराज रासो
12. कुशल शर्मा - ढोला मारूरा दूहा (लोककाव्य)
13. अज्ञात - वसंत विलास फागु
14. विद्यापति - कीर्तिलता, कीर्ति पताका
15. अमीर खुसरो - पहेलियां

5.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं

अभी तक आप आदिकाल की उपलब्ध नव्य सामग्री से परिचित हो चुके हैं । इकाई के इस भाग में आप आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाओं से परिचित हो सकेंगे। इतना तो आप जान ही चुके हैं कि इस युग में शौर्य युक्त प्रवृत्तियों ही नहीं थी अपितु अन्य अनेक प्रवृत्तियों भी एक साथ उभरी

थीं। परिणाम स्वरूप वीररसात्मक काव्य धारा के साथ श्रंगार रस सिक्त रचनाओं का प्रणयन भी हुआ। लोक कथाओं पर आधारित प्रेमकथाएं भी लिखी गई। लौकिक काव्य (पहै ली और मुकरी) की भी रचना हुई। यही नहीं इस काल खण्ड में अगर अपभ्रंश भाषा कृतियों प्राप्त हुई हैं तो ब्रज- राजस्थानी मिश्रित भाषा और मैथिली में साहित्य सर्जना हुई थी साथ ही साथ खड़ी बोली में रचनाएँ प्राप्त हुई हैं.

1. पृथ्वीराज रासो
2. बीसलदेव रास
3. ढोल मारू रा देहा
4. विद्यापति काव्य
5. अमीर खुसरो की पहेलियाँ
6. प्राकृत व्याकरण
7. सन्देश रासक
8. भाविसत्त कहा
9. पाहुड़ दोहा

पृथ्वीराज रासो - रासोकाव्य परम्परा में अनेकशः रचनाएँ हुई हैं और इनमें स्वरूप वैविध्य भी हैं. पृथ्वीराज रासो आदिकाल की प्रतिनिधि कृति है। पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्द बरदाई पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था तथा दरबारी काव्य परम्परा की प्रशस्ति मूलक रूढियों से भरे अपने आश्रय दाता के यशगान है तु रासो की रचना की है।जैसा कि अभी संकेत किया जा चुका है कि पृथ्वीराज रासो प्रशस्ति काव्य है। कविचंदबरदाई ने अपने आश्रय दाता का प्रशस्ति परक वर्णन किया है तथा उसे ईश्वर तक कहा है और तत्कालीन राजनीति , धर्म,योग, कामशास्त्र, शकुन, नगर ,युद्ध ,सेना की सज्जा, विवाह, संगीत,नृत्य, फल,फूल, पशु,पक्षी, ऋतु-वर्णन, संयोग, वियोग, श्रंगार, बसंतोत्स्व इत्यादी सभी का वर्णन भारतीय काव्य शास्त्रीरय परम्परा के अनुरूप किया है। परिणामस्वरूप ऐतिहासिकता अनैतिहसिकता प्रामाणिकता अप्रमाणिकता के अनेक प्रश्नों के रहते हुए पृथ्वीराज रासो साहित्य और तत्कालीन समाज दोनों की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब हैं ।पृथ्वीराज रासो के वर्ण्य-विषय पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- पृथ्वीराज रासो ऐसी ही रस,भय,अलंकार, युद्धबद्ध कथा थी जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रु-पराजय था।

बीसलदेव रासो –

काल खण्ड के नाम के विकल्प - आदिकाल- के चयन और वीरगाथाकाल नाम के व्याज्य के निकर्ष पर देखा जाए तो पृथ्वीराज रासो में जहाँ वीर एवं श्रृंगार की प्रधानता है वहीं वीसल देव रास मूलतः श्रृंगार रस प्रधान ;विशेषकर वियोग श्रृगांर काव्य है। इसके रचयिता नरपति नाल्ह है और रचनाकाल 1155 ईस्वी माना जाता है।

वीसलदेव रास एक विरह काव्य है। जिसमें वीसल देव की रानी का विरह वर्णन किया गया है . भोज परमार की पुत्री राजमती से विवाह के तुरन्त बाद राजमती की गर्वोक्ति सुनकर वीसलदेव उड़ीसा चला जाता है। बारह वर्ष तक राजमती वियोग की ज्वाला में जलती रहती है। इसके बाद राजमती अपने राज पुरोहित से अपने पति के लिए सन्देश भिजवाती है। जब तक राजा लौटता है

तब तक राजमती अपने पिता के घर जा चुकी होती है। बीसलदेव उड़ीसा से लौटकर अपनी ससुराल जाकर अपनी पत्नी को घर ले आता है।

ढोला मारू रा दूहा - अभी तक आपने आदिकाल की दो महत्वपूर्ण कृतियों का परिचय प्राप्त कर लिया है जो अपभ्रंश भाषा से इतर आदिकाल की तत्कालीन भाषा प्रवाह का परिनिष्ठित भाषा रूप लेकर रची गई है जो राजस्थान एवं ब्रज भाषा के साथ विविध भाषाओं की शब्दावली से युक्त हैं . इस बार आप लोकाश्रित एवं तत्कालीन लोक भाषा काव्य का परिचय पायेंगे। यह ढोला मारू रा दूहा नाम से प्रसिद्ध लोक गाथा काव्य है। लोक कथा या लोक गाथा का रचयिता व्यक्ति न होकर लोक ही होता हो और उसके पाठ में समयानुसार भिन्नता की सम्भवना होती है। ढोला मारू रा दूहा का रचयिता कुशल शर्मा कहै जाते हैं तथा इसका रचना काल ग्याहरवीं शताब्दी है।

विद्यापति काव्य - विद्यापति हिन्दी और आदिकाल के प्रमुख कवि हैं चौदहवी-पंद्रहवी शताब्दी के मध्य विद्यापति तिरहुत के राजा कीर्ति सिंह के दरबारी कवि थे और उनकी शौर्यता का चित्रण ही कवि ने अपनी कीर्तिलता नामक पुस्तक में किया है। दूसरी ऐसी ही प्रशस्ति कथा कीर्तिपताका में है। इन दोनों काव्यों की भाषा को उन्होंने अवहटठ् ,अपभ्रंशद्ध कहा है

अमीर खुसरो पहै लियाँ - अमीर खुसरो आदिकाल के ऐसे प्रमुख कवि हैं जो अपने समय से आगे की खड़ी बोली के सूत्र-प्रसारक कहै जा सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र के अनुसार उनका लेखन 1293 ई के आसपास आरम्भ हो गया था। उन्होंने तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली भाषा में कविता की। लेकिन आप यह भी जान लीजिए कि अमीर खुसरो ने ब्रजभाषा में भी कविता लेखन किया था पर उस पर खड़ी बोली का स्पष्ट प्रभाव था यथा-

उज्जवल बरन अधीन तन एक चित्र दो ध्यान।
देखत में साधु है निकट पाप की खान।।
खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।
तन मोरो मन पीउ को दोउ भए एकरंग।।
गारी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपनै रैन भई यह देस ।।

अमीर खुसरो ने पहै लियों को देखकर ऐसा नहीं लगता कि ये आठ से आठ सौ से अधिक वर्ष पूर्व लिखी गई होंगी । यथा-

एक **थात मोती भरा सबके सिर आँधा धरा।**
चारों ओर वह थाली फिरे । मोती उससे एक न गिरे।

अमीर खुसरो अरबी फारसी,तुर्की,ब्रज और हिन्दी के विद्वान कवि थे। साथ ही उन्हें संस्कृत भाषा का भी थोड़ा ज्ञान था। सूचना के स्तर पर आपको बताया जा सकता है कि उन्होंने 99 पुस्तकें लिखी थी । लेकिन इनके बीस,बाईस ग्रन्थ ही प्राप्त होते हैं।

प्राकृत व्याकरण - आदिकाल के अपभ्रंश काव्य के रूप में अब आप ऐसी कृति का परिचय पाऐंगे जो दसवीं शताब्दी में रचित सिद्ध है मचन्द्र शब्दानुशासन के नाम से प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ है और उसके रचयिता है मचन्द्र हैं। इस कृति में है मचन्द्र ने संस्कृत,प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का समावेश किया है किन्तु विशेष बात यह है कि अपभ्रंश का उदाहरण देते हुए उन्होंने पूरा दोहा ही उद्धृत किया है परन्तु उनके रचयिताओं के विषय में कोई संकेत नहीं किया है हे

मचन्द्र के इस प्राकृत व्याकरण को आदिकाल की निर्णायक कृतियों के रूप में उल्लेख किया जाना आपको सहज ही आश्चर्य में डाल सकता है क्योंकि यह शब्दानुशासन यानी व्याकरण की पुस्तक ही प्रतीत होती लेकिन व्याकरण कृति होते हुए भी इसमें प्रयुक्त दोहों का चयन है मचन्द्र ने पूर्ववर्ती या तद्युगीन रचनाकारों की रचनाओं से किया है। ये दोहै व्याकरण से अधिक तत्कालीन समय एवं परिवेश का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं क्योंकि ये दोहै उस काल की लोक भावनाओं से परिपूर्ण है।

सन्देश रासक - संदेशरासक अहद्‌माण या अब्दुर्रहमान रचित खण्ड काव्य है। अहद्दमाण कबीर की भाँति जुलाहा परिवार से थे तथा मुल्तान निवासी थे। उन्होंन स्वयं लिखा है - मैं मलेच्छ देशवासी तंतुवाय भीर सेन का पुत्र हूँ। उनकी कृति सन्देश रासक जो एक सन्देश काव्य है . इसके रचना काल के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है अतः इसे ग्यारहवी से चौदहवीं के मध्य की रचना माना जाता है।सन्देश रासक वियोग, विरह, श्रृंगार की रचना है । इसकी विषय-वस्तु के सम्बन्ध में इतना कहा जा सकता है कि प्रिय के परेदश जाने और वहाँ से लौटने में विलम्ब होने के कारण प्रियतमा पत्नी-नायिका का हृदय विरहकातर हो उठता है। अहद्‌माण ने इस कृति के बीच-बीच में प्राकृत गाथाएं संजोयी हैं। इसमें विरहिणी नायिका एक पथिक से पति को सन्देश भिजवाती है । कवि ने दो सौ तेईस छन्दों में कथा प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक छन्द को स्वयं में स्वतंत्र रखा है क्योंकि कवि को विरहाभिव्यक्ति का उल्लेख करना है कथा कहना मात्र उसका उद्देश्य नहीं है . सन्देश रासक तीन प्रक्रमों में विभाजित और 223 छन्दों में रचित ऐसा सन्देश काव्य है जिसका अध्ययन करके आप यह विधिवत् जान पायेंगे कि इसका प्रथम प्रक्रम मंगलाचरण, कवि का व्यक्तिगत परिचय , ग्रन्थ रचना का उद्देश्य तथा आत्मनिवेदन से अनुपूरित है। दूसरे प्रक्रम से मूल कथा आरंभ होती है पर कथा सूत्र इतना ही है कि विजय नगर की एक प्रोषितपतिका अपने प्रिय के वियोग में रोती हुई एक दिन राजमार्ग से जाते हुए एक बटोही को देखती है और दौड़कर उसे रोकती है। उसे जब यह पता चलता है कि वह बटोही साभांर से आ रहा है और स्तंभ तीर्थ को जा रहा है तो वह पथिक से निवेदन करती है कि अर्थलोभ के कारण उसका प्रिय उसे छोड़ कर स्तम्भ तीर्थ चला गया है इसीलिए कृपा करके मेरा सन्देश को ले जाओ पथिक को संदेश देकर नायिका ज्यों ही उसे विदा करती है कि दक्षिण दिशा से उसका प्रिय आता हुआ दिखाई देता है। तीसरे प्रक्रम में अब्दुर्रहमान कृतिका समापन करता है जिसे पढ़कर निश्चित आप जान पायेंगे कि नायिका का कार्य अचानक सिद्ध हो जाता है .उसी प्रकार पाठकों को भी यह अनुभव होता है कि कवि को कथा से कोई भी मतलब नहीं था उसका उद्देश्य साम्भर नगर के जीवन, पेड़-पौधों तथा ऋतु वर्णन के साथ प्रोषितपतिका की विरह भावना का वर्णन करना था .काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सन्देश रासक अपभ्रंश साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

भविस्यत्त कहा –

जैन कवि धनपाल रचित भविस्यत्त कहा अपभ्रश में लिखित दसवीं शती की ऐसी काव्य कृति है जिसमें तीन प्रकार की कथाएँ बाईस संधियों में जुडी़ हुई है। अभी तक आप यही जानते रहै हैं कि जैन काव्य धार्मिक है और आचार्य शुक्ल ने उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के

निमित्त आधार ग्रंथ के रूप में गणनीय तक नहीं माना था। यद्यपि जैन साहित्य में धर्म से विलग साहित्यिक कृतियों का अभाव नहीं था। उन्ही में से एक कृति भविस्यत्त कहा है। यह वर्णन हृदयग्राही है जिसमें श्रृंगार एवं वीररस के साथ शान्त रस का परिपाक होता है।

आपके ज्ञानवर्द्धन के लिए यह उल्लेखनीय है कि कवि धनपाल का यह काव्य शुद्ध घरेलू ढंग की कहानी पर आधारित है जिसमें दो विवाहों का दुःखद पक्ष उभरता है। कणिक पुत्र भविष्यदत्त की कथा अपने सौतेले भाई बंधुदत्त द्वारा कई बार छले जाने ,जिन महिमा ,जैन चिन्तन के कारण सुखद परिणति तक पहुंचती है। यह प्रमुख कथा चौदह सन्धियों तक विस्तार पाती है।

पाहुड़ दोहा - राजस्थान के रामसिंह द्वारा लिखित दो सो बाईस दोहो ,छन्दों में लिखित लघुकाव्य पाहुड़ दोहा का संपादन परवर्ती काल में हीरालाल जैन द्वारा किया गया है। उनके अनुसार जैनियों में पाहुड शब्द का प्रयोग किसी विजय के प्रतिपादन के लिए किया जाता है।

अब आप यह जान लीजिए कि इस कृति का रचना काल में वास्तव में ऐसा युग था जिसमें प्रत्येक धर्म के भीतर इसके उदारमना चिन्तक कवि पैदा हुए थे जो अपने मत और समाज की रूढियों का विरोध करते हुए मानवता की सामान्य भावभूमि पर एक साथ खडे थे। इसका अन्य मतों से कोई विरोध नहीं था। वे सबके प्रति सहिष्णु थे और उनका विश्वास था कि सभी मत एक ही दिशा की ओर ले जाते हैं और एक ही परमतत्व को विविध नामो से पुकारते हैं।

बोध प्रश्न . 2

1. आदिकाल की आधारभूत सामग्री क्या है ? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
2. **सुमेलित कीजिए**

पृथ्वीराज रासो	अब्दुर्रहमान
ढोला मारू रा दूहा	धनपाल
वीसलदेव रास	है मचन्द्र
विद्यापति का काव्य	रामसिंह
पहै लियाँ	कुशलशर्मा
प्राकृतव्याकरण	चंद्रबरदाई
सन्देशरासक	नरपति नाल्ह
भविस्यत्त कहा	विद्यापति
पाहुड़ दोहा	अमीर खुसरो

5.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

- हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत काल-निर्धारण की प्रक्रिया को जान चुके होंगे
- आदिकाल की पृष्ठभूमि एवं उसकी सामान्य प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- आदिकाल के उद्भव एवं क्रमिक विकास को समझ चुके होंगे

- आदिकाल की प्रमुख पुस्तकों से परिचित हो चुके होंगे

5.6 शब्दावली

वैविध्य	-	विविधतापूर्ण , भिन्न-भिन्न
परवर्ती	-	बाद के समय का
वाङमय	-	साहित्य
आविर्भाव	-	पैदा होना
रस सिक्त	-	रस से भरा हुआ
इतर	-	अलग
सहिष्णु	-	उदार

5.7 सहायक पाठ्य सामग्री

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

(2) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(3) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

(4) सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दी काव्य-धारा, किताब महल, इलाहाबाद 1945

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव एवं विकास पर एक विस्तृत निबंध लिखिए
2. आदिकाल की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए आदिकाल की प्रमुख रचनाओं का परिचय दीजिए

इकाई 6 भक्तिकालीन कविता का उदय

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण
6.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश
6.4.1 राजनीतिक परिस्थिति
6.4.2 आर्थिक परिस्थिति
6.4.3 सामाजिक परिस्थिति
6.4.4 सांस्कृतिक परिस्थिति
6.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप
6.6 भक्ति का उदय
6.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत
6.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद
6.7.2 द्वैतवाद
6.7.3 शुद्धाद्वैतवाद
6.7.4 द्वैताद्वैतवाद
6.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार
6.8.1 संत काव्य का दार्शनिक आधार
6.8.2 सूफी मत
6.9 भक्ति आन्दोलन
6.9.1 भक्ति आंदोलन: उदय एवं विकास
6.9.2 भक्ति आंदोलन: उदय के कारण
6.9.3 भक्ति आंदोलन: महत्व
6.10 भक्ति कालीन कविता का उदय
6.11 सारांश
6.12 शब्दावली
6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम लोग भक्ति कविता के आधार एवं जिस परिवेश में भक्ति कविता का जन्म होता है, की चर्चा करेंगे। साहित्य में भक्ति की धारा का प्रादुर्भाव सहसा नहीं होता। पूर्व परम्परा एवं युगीन परिस्थितियों दोनों मिलकर भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य को जन्म देती हैं। इस इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल सीमांकन एवं नामकरण, भक्तिकालीन युग एवं परिवेश, भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप भक्ति का उदय, भक्ति सम्बन्धी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत, निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार, भक्ति आंदोलन, भक्तिकालीन कविता का उदय-की विस्तृत विवेचना की जाएगी। दरअसल यह इकाई भक्तिकालीन कविता की पूर्व पीठिका के तौर पर है। उपरोक्त विभिन्न पक्षों के क्रमवार विवेचन द्वारा भक्तिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं धाराओं, उसकी पृष्ठभूमि को बेहतर ढंग से समझ पाना संभव होगा।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- पूर्व मध्यकाल की समय-सीमा एवं नामकरण को जान सकेंगे।
- भक्तिकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति के अर्थ एवं स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता के दार्शनिक आधार को बतला सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन के उदय, विकास एवं महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के उदय की व्याख्या कर सकेंगे।

6.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पूर्व-मध्यकाल की समय सीमा 1318 ई. से 1643 ई. तक निर्धारित की है। आचार्य शुक्ल के इस सीमांकन को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। आदिकालीन सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में दिखलाई पड़ने वाले भक्ति तत्व के आधार पर न तो इस काल की सीमा को पीछे खींचा जा सकता है और न ही रीतिकालीन, भक्तिकालीन रचनाओं के आधार पर इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। क्योंकि सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में भक्ति का वह उन्मेष, वह तन्मयता नहीं दिखलाई पड़ती, जो भक्ति काव्य में निहित हैं। दूसरी तरफ रीतिकालीन भक्तिपरक रचनाएँ सरस तो हैं, किंतु उनमें अधिकांशतः भक्तिकाव्य का ही अनुकरण है। अतः उपलब्ध सामग्री के आधार पर आचार्य शुक्ल का सीमांकन ही सर्वथा उचित और ग्राह्य हैं। मोटे तौर पर हम पूर्व मध्यकाल को 14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक मान सकते है। क्योंकि आदिकालीन रचना प्रवृत्तियों का प्राघान्य 14वीं सदी के मध्य तक दिखलाई पड़ता है और 17वीं सदी के मध्य तक आते-आते साहित्य में भक्ति के स्थान पर रीति कालीन प्रवृत्तियों की प्रबलता दृष्टिगोचर होने लगती है।

पूर्वमध्यकाल का आचार्य शुक्ल ने भक्तितत्व की प्रधानता के आधार पर भक्ति काल नामकरण किया है। हम देखते हैं कि इस युग के कविता की मूल संवेदना भक्ति है। चाहै संतकाव्य हो या प्रेमाख्यानक काव्य, रामभक्ति मार्ग हो या कृष्ण भक्तिमार्ग -सबमें भक्ति की ही केन्द्रीयता है, भले ही भक्ति के स्वरूप में भिन्नता है। भक्ति के अतिरिक्त इस युग में वीरगाथा, नीति और रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति भी मिलती है। किंतु भक्तिपरक रचनाओं की तुलना में ऐसी रचनाओं की संख्या कम है। नीति तो बहुधा भक्ति के साथ संयुक्त होकर आई है। अतः पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल कहना उचित ही है।

6.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश

युगीन परिस्थितियाँ साहित्यिक प्रवृत्तियों को निर्मित करती है, उन्हें प्रेरित, प्रभावित करती हैं। रचनाकार जिस युग एवं परिवेश की उपज होता है। वह उससे उदासीन नहीं रह सकता। वह रचना में अपने युग के अभिव्यक्त ही नहीं करता, बड़ा रचनाकार युगीन सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने युग को नए मूल्य-मान, नया स्वप्न-संकल्प भी देता है। पूर्व मध्यकाल राजनीतिक सत्ता, सामाजिक अवस्था, सांस्कृतिक परिवेश में बड़े परिवर्तनों और उलट-फेर का काल है। मुसलमानों के आक्रमण एवं मुसलमानी सत्ता की स्थापना से पूरे समाज पर एक गहरा प्रभाव पड़ा, नयी आर्थिक-सामाजिक स्थितियाँ निर्मित हुई जो भक्ति आंदोलन के उदय में सहायक हुई। अतः भक्ति कालीन कविता को समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय आवश्यक है। आइए हम क्रमवार इन्हें देखे-

6.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

भक्तिकाल राजनीतिक दृष्टि से तुगलकवंश से लेकर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन तक का काल है। दसवीं शताब्दी में पश्चिममोत्तर भारत में तुर्कों के कई आक्रमण हुए, तत्कालीन भारतीय राजाओं की आपसी फूट एवं प्रतिस्पर्धा के कारण धीरे-धीरे मुसलमानों का राज उत्तर भारत में स्थापित हो गया। पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गोरी के बीच 1192 में लड़े गए तराइन के युद्ध में गोरी की विजय होती है। पृथ्वीराज उस समय का सबसे प्रतापी राजा था। भारतीय इतिहास में यह युद्ध काफी निर्णायक माना जाता है, इस युद्ध ने भारत में तुर्कों की सत्ता स्थापित करने की जमीन तैयार कर दी। 1194 के चंदावर युद्ध में कन्नौज के शासक जयचंद को भी गोरी ने परास्त कर दिया। अब तुर्कों की ताकत से टकराने वाला कोई नहीं था। गोरी विजित भारतीय क्षेत्रों का शासन अपने गुलाम सेनापतियों को सौंपकर वापस गजनी लौट गया। 1206 में तुर्की गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली में गुलाम वंश की नींव डाली। उधर गजनी में चल्दोज गोरी का उत्तराधिकारी बना, उसने दिल्ली पर अपना दावा पेश किया। तभी से दिल्ली सल्तनत ने गजनी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इससे मध्य एशिया की राजनीति से अलग दिल्ली सल्तनत का अपना स्वतंत्र विकास हुआ। तुर्कों की अपनी सत्ता स्थापित करने में काफी मशक्कत करनी पड़ी। उन्हें तुर्की अमीरों के आतंरिक विरोध, राजपूत राजाओं और विदेशी आक्रमण से खतरा था। किंतु अन्ततः सभी बाधाओं पर काबू पा लिया गया और एक सुदृढ़ और विस्तृत तुर्की राज्य बना। बलबन गुलाम वंश का सबसे प्रभावशाली शासक सिद्ध हुआ। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो एवं अमीर हसन उसी के दरबार में रहते थे।

1290 से 1320 तक दिल्ली सल्तनत पर खिलजी वंश का शासन रहा। अदाउद्दीन खिलजी (1296-1316) ने अपनी आक्रामक नीति से जहाँ दिल्ली सल्तनत को दक्षिण तक फैलाया वहीं बाजार नियंत्रण, राजस्व-व्यवस्था के पुर्नगठन द्वारा शासन-व्यवस्था को भी मजबूती प्रदान किया। अमीर खुसरों का उसका राजाश्रय प्राप्त था। 1320 में गयासुद्दीन तुगलक ने तुगलक वंश की नींव डाली। गयासुद्दीन के पश्चात् मुहम्मद बिन तुगलक उत्तराधिकारी बना। मध्यकालीन सुल्तानों में वह सर्वाधिक योग्य, शिक्षित और विद्वान था। अपनी दो योजनाओं (1) दिल्ली से दौलताबाद राजधानी परिवर्तन (2) सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन के कारण वह इतिहास में प्रसिद्ध है। अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता उसी के शासन काल में भारत आया था। उसी के शासनकाल में विजयनगर और बहमनी राज्य नामक दो स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आते हैं। मुहम्मद बिन तुगलक के पश्चात् फिरोज तुगलक दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। वह अपने सुधार-निर्माण कार्यों के लिए प्रसिद्ध है, उसने लगभग 300 नये नगरों की स्थापना की, जिनमें हिसार, फिरोजाबाद, फतेहाबाद, जौनपुर, फिरोजपुर आदि प्रमुख हैं। तुगलक वंश के पश्चात् 1398 में तैमूर का आक्रमण होता है, उसने दिल्ली को तहस-नहस कर दिया। दिल्ली सल्तनत पर क्रमशः सैय्यद और लोदी वंश का शासन रहा। अंतिम लोदी सुल्तान इब्राहिम शाह लोदी के समय में पंजाब के शासक दौलत खां लोदी के निमंत्रण पर बाबर ने भारत पर आक्रमण। पानीपत के प्रथम युद्ध 1526 ई. में उसने इब्राहिक शाह लोदी को पराजित कर मुगल वंश की नींव डाली। पानीपत के पश्चात् खानवा, चंदेरी और घाघरा के युद्धों में विजय हासिल कर उसने मुगल राज्य को सुरक्षित एवं सुदृढ़ बना दिया। बाबर एक सफल सेनानायक, साम्राज्य निर्माता ही नहीं अपितु एक साहित्यकार भी था, उसने 'बाबरनामा' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी। 1530 में बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हुमायूँ उत्तराधिकारी बना। उसका शासनकाल संकटों और चुनौतियों से भरा रहा। 1540 में बिलग्राम युद्ध में अफगान वंशीय शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को पराजित कर आगरा, दिल्ली पर कब्जा कर लिया। हुमायूँ को सिंध भागना पड़ा। जहाँ उसे 15 वर्षों तक निर्वासित जीवन जीना पड़ा। शेरशाह एक कुशल योद्ध और शासक था। कुशल प्रशासन और केन्द्रीकृत व्यवस्था द्वारा उसने व्यापार को बढ़ावा दिया, उसने ग्रांड ट्रक रोड की मरम्मत करवाई, पाटिलपुत्र को पटना के नाम से पुनः स्थापित किया, डाक प्रथा का प्रचलन करवाया। 1545 में कालिंजर के किले को जीतने के क्रम में उसका असामयिक निधन हो गया। मौका पाकर 1555 में हुमायूँ पंजाब के शूरी शासक सिकंदर को पराजित कर पुनः दिल्ली पर कब्जा करने में सफल रहा। 1556 में पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई। उसी वर्ष पंजाब के कलानौर में 13 वर्ष की अल्पायु में हुमायूँ के पुत्र अकबर का राज्याभिषेक हुआ। 1556-60 तक बैरम खाँ उसका संरक्षक रहा। अकबर के शासनकाल में मुगल साम्राज्य भलीभाँति भारत में स्थापित हो गया। उसका साम्राज्य पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में असम तक, उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में अहमद नगर तक विस्तृत था। वह दूरदर्शी, उदार और साहित्य-कला का संरक्षक शासक था। अकबर के पश्चात् जहाँगीर (1605-1627) और शाहजहाँ (1628-58) बादशाह बनते हैं। इनका शासनकाल प्रायः शांतिपूर्ण रहा यह व्यापार-वाणिज्य साहित्य, कला, संस्कृति के उन्नति का काल था। सल्तनत काल में विजयनगर, बहमनी राज्य, जौनपुर, काश्मीर बंगाल, मालवा, गुजरात, मेवाड़, खानदेश स्वतंत्र राज्य भी थे, कालांतर में इन पर मुगल

साम्राज्य का आधिपत्य हो गया।

6.4.2 आर्थिक परिस्थिति

सल्तनत काल एवं मुगल काल में स्थिर एवं केन्द्रीकृत व्यवस्था के कारण अर्थव्यवस्था में प्रगति हुई। कुछ अपवादों को छोड़ कर यह कालखण्ड प्रायः शांतिपूर्ण था। शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित थी, राजस्व वसूली की एक नियमित व्यवस्था थी। सुचारू प्रशासन के लिए मुगल साम्राज्य का बँटवारा सूबों में, सूबों का सरकार में, सरकार का परगना या महाल में, महाल का जिला या दस्तूर में, दस्तूर ग्राम में बँटे थे। केन्द्रीय प्रशासन के साथ स्थानीय शासन व्यवस्था भी थी। ये परिस्थितियाँ आर्थिक प्रगति में सहायक सिद्ध हुई। अलाउद्दीन, शेरशाह सूरी, अकबर ने भूराजस्व प्रणाली को व्यवस्थित बनाया। अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। कृषि के विकास के लिए अलग से कृषि विभाग (दीवाने को ही) की स्थापना, उत्पादकता के हिसाब से भूमि का वर्गीकरण, सिंचाई है तु नहरों का निर्माण कराया गया।

इस काल में आगरा, पटना, दिल्ली, जौनपुर, हिसार आदि कई नए नगरों का उदय हुआ । इससे कामगार, कारीगर वर्ग को रोजगार के लिए अवसर मिले और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। नए नगर व्यापार-वाणिज्य के केन्द्र के रूप में भी विकसित हुए। तुर्कों के आगमन से भारत में कई नयी तकनीकि भी आई, जैसे चरखा, धुनकी, रहत, कागज, चुम्बकीय कुतुबनुमा, समयसूचक उपकरण, तोपखाना आदि। इसका प्रभाव उद्योग-धंधे एवं व्यापार पर पड़ा। वस्त्र उद्योग, धातु खनन, हथियार निर्माण, कागज निर्माण, इमारती पत्थर का काम, आभूषण निर्माण उस समय के प्रमुख उद्योग धंधे थे। आगरा नील उत्पादन के लिए, सतगाँव रेशमी रजाईयों के लिए, बनारस सोने, चाँदी एवं जड़ी काम के लिए, ढाका मलमल के लिए प्रसिद्ध था ।

इस काल में व्यापार-वाणिज्य की खूब उन्नति हुई। व्यापक पैमाने पर नयी सड़कों का निर्माण एवं पुरानी सड़कों की मरम्मत कराया गया। सड़कों के किनारे सराय बनवाये गए। राहगीरों एवं व्यापारियों की सुरक्षा का प्रबंध किया गया। इसका सीधा प्रभाव व्यापार पर पड़ा। देशीय व्यापार के साथ विदेशी व्यापार की स्थिति भी अच्छी थी। यहाँ से सूती एवं रेशमी वस्त्र, चीनी, चावल, आभूषण आदि का निर्यात होता था। देवल अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह के रूप में प्रसिद्ध था । निस्संदेह मध्यकाल में उद्योग, व्यापार में प्रगति हुई, कृषि में सुधार हुआ। किंतु गाँवों में किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। लगान और अकाल के कारण उन्हें काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। अकाल और भूख से बेहाल किसान की पीड़ा को तुलसी ने व्यक्त किया है- ‘कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।’ उस समय यदि एक वर्ग खुशहाल था तो दूसरा वर्ग भूख, गरीबी, बेकारी से त्रस्त था, तुलसी लिखते हैं-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीधमान सोच बस,
कहै एक एकन सों ‘कहाँ जाई का करी’।।

6.4.3 सामाजिक स्थिति

इस काल में हिंदू समाज वर्णों और जातियों में विभक्त था। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था, शूद्रों की निम्न स्थिति थी। जातिगत श्रेष्ठता एवं छुआछूत की

भावना तत्कालीन परिवेश में व्याप्त थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं उनकी सत्ता स्थापित होने से परंपरागत भारतीय समाज को एक धक्का लगा। सामंतों एवं पुरोहितों की स्थिति कुछ कमजोर हुई। एक तरफ जहाँ परम्परागत सामाजिक संरचनाको बचाये रखने के लिए वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा का कठोरता से पालन करने पर जोर दिया गया, वहीं दूसरी तरफ समानता और आपसी भाईचारे पर आधारित इस्लाम के प्रति हिंदू समाज की निचली जातियाँ आकर्षित हुई। बहुतों ने धर्मांतरण कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। धर्मांतरण स्वेच्छा में भी हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा बलात् भी कराया गया। ऊँच-नीच की भावना सिर्फ हिंदू समाज में ही नहीं मुस्लिम समाज में भी विद्यमान थी। अफगानी, तुर्की, ईरानी एवं भारतीय मुसलमानों में नस्लगत श्रेष्ठता एवं प्रतिस्पर्धा की भावना थी। मुसलमान शासक भारत में आक्रांता के रूप में आए थे, हिंदुओं में उनके प्रति अलगाव, विरोध, शंका का भाव होना स्वाभाविक था। किंतु दोनों कौमों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं सामंजस्य भी बढ़ रहा था। सूफियों का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। मुस्लिम शासकों एवं राजपूत शासकों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुए।

उस काल में सामान्यतः संयुक्त परिवार का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज में बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा प्रचलित थी। मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की स्थिति हिंदू स्त्रियों की तरह ही थी। विदेशी यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि उस समय दास प्रथा का भी प्रचलन था।

6.4.4 सांस्कृतिक स्थिति-

संस्कृति किसी देश समाज की मूलभूत प्रवृत्तियों उसकी सौन्दर्यबोधात्मक एवं मूल्यबोधों क्रियाकलापों-उपलब्धियों, उसके आचार-विचार का समन्वित रूप हैं। धर्म, कला, साहित्य, संगीत, शिल्प आदि संस्कृति के विभिन्न तत्व हैं। मध्यकालीन भारतीय समाज धर्मप्राण समाज है। हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, सिक्ख उस समय प्रचलित प्रमुख धर्म थे। बहुसंख्यक जनता हिंदू धर्मावलंबी थी। हिंदू धर्म भी शैव, शाक्त, वैष्णव आदि कई संप्रदायों में विभक्त था। इन विभिन्न संप्रदायों में परस्पर संघर्ष एवं सामंजस्य दोनों स्थितियाँ दिखलाई पड़ती हैं। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, बहुदेव उपासना, गौ एवं ब्राह्मण का सम्मान, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा, कर्मफलवाद, स्वर्ग-नरक की अवधारणा, आदि हिंदू धर्म एवं समाज की विशेषता थी। पश्चिम भारत में जैनियों की बहुलता थी, बौद्ध धर्म को मानने वाले पूर्वी भारत में ज्यादा थे। बौद्ध धर्म तंत्रयान, मंत्रयान, ब्रजयान आदि शाखाओं में विभक्त था, उसका मूल स्वरूप विकृत हो गया था और वह कई प्रकार की रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, अंधविश्वासों का शिकार हो गया था। फलतः उसका पहले जैसा प्रभाव और आकर्षण नहीं रह गया था। सिद्धों और नाथों का तत्कालीन समाज पर गहरा असर था। धर्म का जहाँ तक शास्त्रीय रूप था, वहीं उसका एक लोकवादी रूप भी था स्थानीय देवताओं की पूजा, जादू-टोना आदि इसी के अंतर्गत आता है। मध्यकाल में साधनाओं एवं संप्रदायों की एक बाढ़ सी दिखलाई पड़ती है। धर्म के आवरण में मिथ्याचार, अनाचार, व्यभिचार भी पनप रहा था, धर्मक्षेत्र में एक अराजकता-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच भक्ति आंदोलन का उदय और विकास होता है, जिसने भारतीय समाज को काफी गहरे तक प्रभावित किया।

इस काल में साहित्य, कला, वास्तु, संगीत में प्रगति दिखलाई पड़ती है। इस्लामी एवं भारतीय

संस्कृति के मेल से कला की नयी शैलियों का जन्म होता है।

6.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप

भक्ति पूर्व-मध्यकालीन साहित्य का मूलभूत तत्व है। आइए हम भक्ति को समझने की कोशिश करते हैं। ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम, समर्पण की भावना ही भक्ति हैं। 'भक्ति' शब्द की निष्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'भजना'। अर्थात् ईश्वर का चिंतन-मनन, उसके गुणों का श्रवण-कीर्तन, उसकी सेवा करना। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि सांसारिक प्रवृत्तियों का शमन कर ईश्वर के प्रेम में डूबे रहना। भारतीय चिंतन परम्परा में ईश्वर-प्राप्ति, मोक्ष के तीन मार्ग बतलाए गए हैं-कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्म का सम्बन्ध व्रत, तप, जप, तीर्थ यज्ञादि कर्मकाण्डों से जिनका सम्यक् व्यवहार कर मनुष्य ईश्वर के सानिध्य-साक्षात्कार का लाभ प्राप्त करता है। ज्ञान का सम्बन्ध ईश्वर विषयक तत्व-चिंतन से है, इसमें सम्यक ध्यान-समाधि द्वारा व्यक्ति ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है। भक्ति विशुद्ध भाव मूलक है, इसके लिए न तो कर्मकाण्ड अपेक्षित है और न ही तत्व-चिंतन। भक्ति मार्गमें ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा-समर्पण द्वारा ही मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त करता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को 'परम प्रेमरूपा' एवं 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है- 'सात्वस्मिन परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूप च।' तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम जो अमृत के समान फलदायक है, वही भक्ति है। इस भक्ति को प्राप्त करने पर व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं और बंधनों से ऊपर उठ जाता है, वह आनंदमग्न, आत्माराम हो जाता है। नारद मुक्ति सूत्र में कहा गया है- ''उस परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है। उस भक्ति को प्राप्त करने के बाद मनुष्य को न किसी भी वस्तु की इच्छा रहती है न वह शोक करता है, न वह द्वेष करता है, न किसी वस्तु में ही आसक्त होता है। उस प्रेमरूपा भक्ति को प्राप्त करे वह प्रेम में उन्मत्त हो जाता है।'' 'शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र' में 'ईश्वर में परम अनुरक्ति' को भक्ति कहा गया है- ''सा परानुक्तिरीश्वरे''। अर्थात् ईश्वर के प्रति अत्यंत गहरी निष्ठा-प्रेम की अनुभूति-अभिव्यक्ति ही भक्ति है। ईश्वर प्राप्ति के जो कर्म, ज्ञान, भक्ति तीन मार्ग बतलाए गए है, इनमें उत्कट राग की उपस्थिति भक्ति मार्ग में ही होती है। ज्ञान एवं कर्म मार्ग में प्रेम को केन्द्रीय महत्व नहीं दिया गया है। भक्ति पर व्यावहारिक लौकिक दृष्टि से विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा है। भक्ति की व्याख्या करते हुए वह लिखते हैं- ''जब पूजा भाव की बुद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि में आनंद का अनुभव होने लगे-जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति रस का संचार समझना चाहिए।'' (चिंतामणि, भाग-1, पृ0 26) स्पष्ट है कि शुक्लजी के मत में भक्ति के लिए ईश्वर के प्रति सिर्फ प्रेम भाव ही नहीं पूज्य भाव भी होना चाहिए, भक्त ईश्वर की महिमा-महत्व से अभिभूत रहता है, वह उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर, उन्हीं को अपना सर्वस्व मान लेता है।

भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुगम माध्यम माना गया है। सहज, साध्य होने के कारण ही आचार्यो ने भक्ति को प्रमुखता दी है-'अन्य स्मात् सौलभ्यं भक्तौ।' शास्त्रों में कहा गया है कि

कलियुग में केवल ईश्वर के नामस्मरण द्वारा ही जीव का उद्धार हो जाता है वह परम पद को प्राप्त कर लेता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को निष्काम कहा गया है, क्योंकि वह निरोध स्वरूप है। निरोध का अर्थ सांसारिक विषयों-प्रपंचों से विमुख होकर चित्त को पूर्णतया ईश्वरोन्मुख कर देना। भक्त मन, वचन, कर्म से अपना सर्वस्व अर्पित कर प्रभु को भजता है। उसके लिए शास्त्रीय विधि-विधान, लौकिक कर्मों का कोई महत्व नहीं है, भक्ति ज्ञानमूलक, कर्ममूलक न होकर भावमूलक है। नारद भक्ति-सूत्र में कहा गया है- 'वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठकर है, क्योंकि वह फलरूपा है अर्थात् उसका कोई अन्य फल नहीं है, वह स्वयं ही फल है।?' भक्ति ही भक्त का चरम लक्ष्य है, वह साधन भी है और साध्य भी। इस भक्ति की प्राप्ति प्रभुकृपा से होती है। भक्ति के लिए प्रभु का गुण श्रवण और कीर्तन-गान अनिवार्य तत्व है। नारद के अनुसार उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण समपर्ण और विस्मरण में परम व्यापकता होनी चाहिए- 'नारदस्तु तदर्पिताऽखिला चारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।' भक्ति के स्वरूप के संदर्भ में नारद ने कहा है- 'प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है- गूंगे के स्वाद की तरह।.............वह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेद रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है। उस प्रेम को प्राप्त करके प्रेमी उस प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है अर्थात् अपनी मन-बुद्धि इंद्रियों से केवल प्रेम का ही अनुभव करता हुआ प्रेममय हो जाता है।' आचार्य शुक्ल के अनुसार भक्ति सांसारिक व्यक्ति के प्रति भी हो सकती है और ईश्वर के प्रति भी। ईश्वरीय भक्ति की विवेचना करते हुए उन्होंने लिखा है- 'भक्ति का स्थान मानव ह्रदय है- वहीं श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है। अतः मनुष्य की श्रद्धा के जो विषय ऊपर कहे जा चुके हैं, उन्हीं को परमात्मा में अत्यंत विशद रूप में देखकर उसका मन खींचता है और वह उस विशद-रूप विशिष्ट का सीमाप्य चाहता है, उसके ह्रदय में जो सौन्दर्य का भाव है, जो शील का भाव है, जो उदारता का भाव है, जो शक्ति का भाव है उसे वह अत्यंत पूर्ण रूप में परमात्मा में देखता है और ऐसे पूर्ण पुरूष की भावना से उसका ह्रदय गदगद हो जाता है और उसका धर्मपथ आनंद से जगमगा उठता है। धर्म-क्षेत्र या व्यवहार पथ में वह अपने मतलब भर ही ईश्वरता से प्रयोजन रखता है। राम, कृष्ण आदि अवतारों में परमात्मा की विशेष कला देख एक हिंदू की सारी शुभ और आनंदमयी वृत्तियाँ उनकी ओर दौड़ पड़ती है, उसके प्रेम, श्रद्धा आदि को बड़ा भारी अवलंब मिल जाता है। उसके सारे जीवन में एक अपूर्व माधुर्य और बल का संचार हो जाता है। उसके सामीप्य का आनंद लेने के लिए कभी वह उनके आलौकिक रूप-सौन्दर्य की भावना करता है, कभी उनकी बाल लीला के चिंतन से विनोद प्राप्त करता है, कभी-धर्म-वंदना करता है-यहाँ तक कि जब जी में आता है, प्रेम से भरा उलाहना भी देता है। यह ह्रदय द्वारा अर्थात् आनंद अनुभव करते हुए धर्म में प्रवृत्त होने हो सुगम मार्ग है।' (चिंतामणि भाग-1, पृष्ठ 31) भक्ति के इस स्वरूप-प्रकृति के कारण ही शुक्ल जी ने भक्ति को ''धर्म की रसात्मक'' अनुभूति'' कहा है। दरअसल भक्ति ईश्वर के प्रति समर्पण की एक रागयुक्त प्रवृत्ति, अवस्था है। भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद्सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति का उल्लेख मिलता है। इसे ही नवधा भक्ति कहा गया है। दरअसल ये प्रभु की भक्ति की विभिन्न प्रक्रियाएं हैं। परम्परा में भक्ति के दो रूप बतलाये गए है- गौणी और परा। गौणी भक्ति

के अंतर्गत देवपूजा, भजन-सेवा आदि प्रवृत्तियाँ आती है। पराभक्ति को सर्वश्रेष्ठ और सिद्धावस्था का सूचक माना गया है। गौणी भक्ति को साधकर ही भक्त पराभक्ति की अवस्था में पहुँचता है। गौणी भक्ति के भी दो भेद हैं-वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति शास्त्रानुमोदित विधि विधान पर आधारित है औरा रागानुगा भक्ति का आधार प्रेम अथवा राग है। रामागनुगा भक्ति के दो रूप है- संबंध रूपा और कामरूपा। विभिन्न सांसारिक संबंधों-भावों का ईश्वरोन्मुखीकरण ही सम्बधरूपा भक्ति है। भक्त ईश्वर से विभिन्न संबंध-भाव निवेदित-स्थापित कर भक्ति करता है इसके अन्तर्गत पाँच भावों को स्वीकारा गया है-शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव। कामरूपा भक्ति कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है इसके अंतर्गत भक्त प्रणय या दांपत्य भावना से प्रभु की भक्ति करता है।

अब आप भक्ति के तात्विक स्वरूप से परिचित हो चुके है अब हम भक्ति के उदय की पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करेंगे।

6.6 भक्ति का उदय-

भक्ति की प्रवृत्ति, पद्धति का सम्बन्ध सिर्फ भागवत् धर्म और भक्ति आंदोलन से ही नहीं है। भक्ति का एक क्रमिक विकास होता है। वैसे भक्ति के बीज वेदों में मिलते हैं। विभिन्न प्राकृतिक उपादनों का दैवीकरण, सुख-शांति समृद्धि की कामना से उनकी स्तुति वैदिक ऋचाओं की मूल विशेषता है। ईश्वर की कल्पना, आत्म निवेदन, शरणागत की भावना, दैन्य भाव, श्रद्धा का भाव आदि जो भक्ति की मूलभूत विशेषताएं हैं-ये बातें हमें वैदिक ऋचाओं में भी मिलती हैं। परमात्मा की माता-पिता, बंधु-सखा के रूप में अर्चना की गई है-'प्रभु! तुम्हीं हमारे पिता हो, तुम्हीं हमारी माता हो। है अनंतज्ञानी! आपसे ही हम आनंद-प्राप्ति की अकांक्षा करते है-

'त्व हि नों पिता वसोत्वं माता शतक्रतो वभूविथ। अद्या ते सुम्नमीमहै (ऋृग्वेद 8/98/11)।' पूरी तन्मयता और सर्वस्व सर्मपण की भावना को प्रकट करते हुए ऋग्वेद का ऋषि कहता है-'प्रभो ये हैं तेरे उपासक, तेरे भक्त। ये प्रत्येक स्तवन में, तेरे कीर्तन-गान में ऐसे तन्मय होकर बैठते हैं, जैसे मधुमक्षिकाएँ मधु को चारों ओर से घेर कर बैठ जाती हैं। तेरे अंदर बस जाने की कामना रखने वाले तेरे ये स्तोता अपनी समस्त कामनाओं को तुझे सौंपकर वैसे ही, निश्चिंत हो जाते हैं, जैसे कोई व्यक्ति रथ में निश्चिंत होकर बैठ जाता है।'

इमें हि ब्रह्मकृतः सुते सचा मधो न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः।। (ऋ. 7/32/2)

वेदों मं ईश्वर की सर्वसमर्थता, उसकी महिमा का बखान, उसके प्रति श्रद्धा निवेदित किया गया हैं-

यो भूतं च भव्यं च सर्व श्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः (अथर्ववेद-10 /8/1)

अर्थात् भूत भविष्य और वर्तमान का जो स्वामी है, जो समस्त विश्व में व्याप्त हैं तथा जो निर्विकार आनद प्रदान करने वाला है, उस ईश्वर को मेरा प्रणाम।' उपनिषदों में तत्व-चिंतन की प्रधानता है- किंतु कहीं-कहीं पर भक्ति विषयक बातें भी मिलती है। ऐतरेय, श्वेताश्वतरोपनिषद में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं, कठोपनिषद में कहा गया है- 'यह आत्मा उत्कष्ट

शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेघा के द्वारा प्राप्त, नहीं होता, बहुत पांडित्य के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। यह जिसको वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। जिसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।'

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणुते तनू, स्वाम।।'

यहाँ प्रभुकृपा का वर्णन है, जो कि भक्ति का आधार है। भगवत्कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती और भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति। भक्ति चिंतन में ईश्वर ही परमतत्व, जगत निर्माता, जगत नियंता, सृष्टि विनाशक है, उसी के द्वारा सृष्टि का सृजन होता है और उसी में सृष्टि विलीन हो जाती है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत।' अर्थात् 'जगत की सभी वस्तुएं ब्रह्म हैं, क्योंकि सभी ब्रह्म से ही उत्पन्न होती हैं, ब्रह्म में ही अवस्थान करती है तथा ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है। इस प्रकार चिंतन करते हुए मन को शांत रखकर उपासना करनी चाहिए।' छांदोग्य उपनिषद में ही भक्ति को सबसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस कहा गया है- 'स एवं रसानां रसतमः परम परार्धे।

उपनिषदों के बाद भक्ति की प्रबल धारा भागवत धर्म के रूप में प्रकट हुई। भागवत धर्म के प्रवर्तन के साथ ही अवतारवाद की अवधारणा का जन्म हुआ बहुदेवोपासना और लीलागान का प्रचलन हुआ। इसमें ईश्वर को ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज-इन 6 गुणों से युक्त माना गया, जिनके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण, भरण-पोषण और संहार करता है। अवतारवाद एवं भक्ति का पुराणों में विस्तृत वर्णन है। इनमें भागवत पुराण मुख्य है। दक्षिण के आलवार नयनार भक्तों ने भक्ति तत्व का प्रचार प्रसार किया, आठवीं सदी में शंकराचार्य के अद्वैत एवं मायावाद के कारण भक्ति का प्रवाह थोड़ा अवरूद्ध होता है। किंतु कालांतर में रामानुजाचार्य, निम्बाकाचार्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य ने राम-कृष्ण की भक्ति को लोकप्रिय ही नहीं बनाया उसे एक सैद्धांतिक आधार प्रदान कर शास्त्रीय गरिमा भी दी।

इस प्रकार हम देखते है कि भक्ति का तत्व वेद उपनिषद महाभारत, पुराण आदि से होते हुए सतत् प्रवाहमान रहा, निरंतर विकसित होता रहा। भक्ति आंदोलन ने उसे व्यापक और लोकप्रिय बना दिया। अब आप भक्ति के उदय को समझ गए होंगे, वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति विषयक सिद्धांतों एवं भक्ति आंदोलन की आगे चर्चा की जाएगी।

6.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत

भक्ति के दार्शनिक पक्ष की स्थापना भक्ति आंदोलन की देन है। 8-9वीं सदी में शंकराचार्य दार्शनिक स्तर पर बौद्धों, जैनों से टकराते हैं और वैदिक धर्म को पुनप्रतिष्ठित करते हैं। शंकर का दार्शनिक सिद्धांत अद्वैतवाद कहलाता है। उनके अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या। आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। किंतु सांसारिक माया के कारण मनुष्य आत्मा-परमात के अद्वैत का अनुभव नहीं कर पाता है। ज्ञान द्वारा ही अपने आत्मस्वरूप को जाना जा सकता है। वह ज्ञान मार्गी हैं और निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। शंकर के अद्वैतवाद और मायावाद का परवर्ती वैष्णव आचार्यों द्वारा विरोध किया गया, उन्होंने ज्ञान की

जगह भक्ति को प्रमुखता दी। शंकर ने माया वाद द्वारा जिस जगत को मिथ्या कहकर, खारिज कर दिया था, उस जगत को इन आचार्यो ने सत्य माना, ब्रह्म का अंश मानते हुए उसे प्रभु की लीला भूमि के रूप में देखा। आइए, अब हम भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के सिद्धांतों से अवगत हों।

6.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद

आचार्य रामानुजाचार्य ने अवतारी राम को उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की। उनकी दृष्टि में पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष है। ब्रह्म चित्त और अचित विशिष्ट है। ब्रह्म की तरह जीव और माया भी सत्य है। इस भक्ति मार्ग को श्री संप्रदाय भी कहते है। श्री अर्थात् लक्ष्मी इसकी आदि आचार्य हैं, जीव 'लक्ष्मी' की शरण में जाने से ही सगुण ब्रह्म अर्थात् विष्णु तक पहुँच सकता है। भक्तों पर अनुग्रह के निमित्त ही भगवान अवतार ग्रहण करते हैं। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध शेष-शेषी भाव का है। जीव सेवक है ब्रह्म सेव्य। प्रपत्ति या शरणागति ही परमकल्याण का मार्ग है।

जीव, जगत, माया ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी ब्रह्म के ही अंग है। रामानुज का मत शंकर की अपेक्षा उदार है। उन्होंने भक्ति को जाति भेद से ऊपर मानते हुए सभी मनुष्य की समानता-एकता का प्रतिपादन किया है। इस संप्रदाय का गहरा प्रभाव रामानंद पर पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति भी सेव्य-सेवक भाव की है।

6.7.2 द्वैतवाद

इस मत का प्रवर्तन मध्वाचार्य (12वीं शता0) ने किया। इनके अनुसार जगत सत्य है, ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद, जड़ का जीव से भेद वास्तविक है। जीव और जगत परतंत्र है तथा ईश्वर स्वतंत्र। जीवों के बीच ऊँच एवं नींच की तारतम्यता है, यह सांसारिक अवस्था में ही नहीं मोक्ष दशा में भी विद्यमान रहती है। जीव की अपनी वास्तविक सुखानुभूति ही मुक्ति है। जिसे अमला भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। समस्त जीव हरि के अनुचर हैं। वेद का समस्त तात्पर्य विष्णु ही है। इस संप्रदाय के आचार्य ब्रह्मा है, अतः इसे ब्रह्म संप्रदाय भी कहते है। रामानुज की तरह मध्वाचार्य भी भक्ति मार्ग में सबकी समानता के पक्षधर थे। इस संप्रदाय में कांत या माधर्य भाव की भक्ति है।

6.7.3 शुद्धाद्वैतवाद

इस संप्रदाय के आचार्य रूद्र है अतः इसे रुद्र संप्रदाय भी कहा गया है। इस संप्रदाय के आचार्य विष्णुस्वामी (13-14वी सदी) के अनुसार ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है, जो सदैव अपनी संविद् शक्ति से युक्त रहता है और माया उसी के अधीन रहती है। उन्होंने नृसिंह को ईश्वर का प्रधान अवतार माना है। कुछ लोगों के मत में वे नृसिंह और गोपाल दोनों के उपासक थे।

विष्णु स्वामी की शिष्य परंपरा में ही वल्लभाचार्य (15वीं सदी) आते हैं। उन्होंने रूद्र संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार ब्रह्म सर्वथा शुद्ध है। अपनी तीन शक्तियों-संघिनी, संवित तथा आह्लादिनी द्वारा वह क्रमशः सत्, चित् और आनंद का आविर्भाव करता है। ब्रह्म सत्य और नित्य है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जीव भी नित्य हैं। जीव अणु है और ब्रह्म भूमा। शुद्ध, संसारी और मुक्त-जीव की तीन कोटियाँ हैं। जड़ जगत की उत्पत्ति एवं का विनाश नहीं होता उसका केवल आर्विभाव और तिरोभाव ही होता है। उन्होंने भगवान के पोषण (अनुग्रह) को ही भक्ति की प्राप्ति का आधार माना है। इसीलिए उनके मत को पुष्टि मार्ग कहा

गया। रागानुगा भक्ति ही पुष्टि भक्ति है जो साधन भक्ति से श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म, पुरुषोत्तम और रसरूप है। इस संप्रदाय में कृष्ण के बालरूप की साधना को प्रमुखता दी गयी है।

6.7.4 द्वैताद्वैतवाद-

निम्बार्क (11वीं सदी) ने द्वैताद्वैतवाद का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार जीव का ब्रह्म के साथ भेद और अभेद दोनों संबंध है। इसका मूल कारण अवस्था भेद है। जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी संबंध है। जीव अल्पज्ञ अणु है। जीव ईश्वर का अंश होने से नित्य है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। इस संप्रदाय में राधा-कृष्ण को युगलोपासना को प्रमुखता दी गई है। इस संप्रदाय के आचार्य सनकादि होने से इसे सनकादि संप्रदाय भी कहते है। इस संप्रदाय की भक्ति सख्य भाव की है।

निम्नलिखित तालिका द्वारा उपरोक्त भक्ति विषयक सिद्धांतों को सरलता से याद किया जा सकता है।

दर्शन	संप्रदाय	संस्थापक	भक्ति-भाव
विशिष्टाद्वैतवाद	श्री	रामानुजाचार्य	दास्य
द्वैतवाद	ब्रह्म	मध्वाचार्य	कांत या माधुर्य
शुद्धाद्वैतवाद	रुद्र	विष्णुस्वामी/वल्लभाचार्य	वात्सल्य
द्वैताद्वैतवाद	सनकादि/निम्बार्क	निम्बार्काचार्य	सख्य

6.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार

निर्गुण भक्ति के अंतर्गत संत मत और सूफीमत आता हैं। दोनों भक्ति मार्ग में ईश्वर को अजन्मा, अशरीरी, अगोचर माना गया है । आइए दोनों भक्ति मार्ग के दार्शनिक आधार का हम अध्ययन करें ।

6.8.1 संतकाव्य का दार्शनिक आधार

संतमत का विकास वैष्णव धर्म, सिद्धों, नाथों, सूफी मत, शंकर के अद्वैतवाद से प्रेरणा-प्रभाव ग्रहण कर होता है। वैष्णवों से अहिंसा और प्रपत्ति भावना, सिद्धों-नाथों से जाति-पाति, कर्मकाण्ड, शास्त्र का नकार, काया योग, शून्य समाधि, शंकराचार्य से अद्वैत दर्शन, सूफियों से प्रेमतत्व को लेकर कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, अजन्मा मानते हुए अवतारवाद, बहुदेववाद का खण्डन किया। परमतत्व एक ही है जो सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है। जीव अज्ञानता के कारण क्षणभंगुर संसार को सत्य समझ परमात्मा से विमुख रहता है। सद्गुरू की कृपा से व्यक्ति को आत्मज्ञान मिलता है, और ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है । उस परमात्मा की भक्ति के लिए न तो शास्त्रज्ञान अपेक्षित है और न ही बाह्य विधि-विधान। ब्रह्म, माया, जीव, जगत सम्बन्धी संत मत की अवधारणाएं शंकराचार्य से प्रभावित है।

6.8.2 सूफी मत

सूफी मत इस्लाम की ही एक शाखा है जिसका उदय इस्लाम के प्रवर्तन के ढाई-तीन सौ वर्षों बाद होता है। भारत में सूफियों का आगमन 12वीं सदी में माना जाता है। यह एक उदार, सहिष्णु मत है जो इस्लाम की शाखा होते हुए भी उससे बहुत मामलों में भिन्न हैं। 'सूफी' शब्द

की व्युत्पत्ति कैसे हुई, इस पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'सफ' से मानते है जिसका अर्थ होता है पंक्ति। उनके अनुसार ईश्वर का प्रिय होने के कारण जो लोग कयामत के दिन सबसे पहली पंक्ति में खड़े होंगे, उन्हें सूफी कहते हैं। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सूफ' शब्द से हुई, जिसका अर्थ है मस्जिद का चबूतरा। जो फकीर मस्जिद के चबूतरे पर सोकर अपनी रात गुजारते थे, सूफी कहलाए। कुछ लोगों के अनुसार 'सूफ' का अर्थ 'पवित्र' है। 'सूफ' ऊन के भी अर्थ में है। सादा और पवित्रता युक्त जीवन जीने वाले और ऊनी चोंगा पहनने वाले फकीरों को ही सूफी कहा जाने लगा। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सोफिया' शब्द से हुई जिसका अर्थ होता है ज्ञान। परमात्मा का ज्ञान रखने वाले फकीरों को सूफी कहा गया। इस प्रकार सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सम्बन्धी कई मत है। आचार्य शुक्ल के अनुसार ''प्रारंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख-प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे।'' ('जायसी ग्रंथावली' की भूमिका, पृ0 168)। इस प्रकार सूफी वे फकीर थे जो सांसारिक भोग-विलास से दूर रहकर, सादा एवं त्यागपूर्ण जीवन जीते हुए हमेशा खुदा के ख्वाब-ख्याल में डूबे रहते थे। सूफियों के अनुसार खुदा सारी कायनात में व्याप्त है। उनका मत इस्लामी एकेश्वरवाद की अपेक्षा शंकर के अद्वैतवाद के ज्यादा करीब है। सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ हैं- (1) शरीअत-अर्थात् शास्त्रानुसार विधि-निषेधों का सम्यक् पालन (2) तरीकत-वाह्य विधि-विधान से परे हटकर हृदय को शुद्ध रखकर ईश्वर का ध्यान। (3) हकीकत-साधना द्वारा तत्व-बोध की अवस्था। (4) मारिफत-आत्मा का परमात्मा में लीन होने की अवस्था, सिद्धावस्था। सूफीमत का मूल तत्व है प्रेम। परमात्मा के प्रेम में पूरी तरह लीन, उन्मुक्त होकर ही प्रेमस्वरूप परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता हैं किंतु यह प्रेम-साधना सरल नहीं, अत्यंत कठिन है। सूफी कवि इश्क मिजाजी (लौकिक प्रेम) के जरिए इश्क हकीकी (अलौकिक) प्रेम का वर्णन करते हैं। उन्होंने परमात्मा को प्रेयसी रूप और आत्मा को प्रेमी रूप में चित्रित किया है। गुरुकृपा से ही परमात्मा का (प्रियतमा के सच्चे रूप का) ज्ञान होता है। प्रियतमा को प्राप्त करने के लिए प्रेमी को ढेर सारी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। माया या शैतान के कारण विघ्न-बाधाएँ उपस्थिति होती हैं। अन्ततः अपने सच्चे प्रेम के कारण गुरु और परमात्मा की कृपा से उसे सफलता मिलती है।

6.9 भक्तिआंदोलन

भक्ति आंदोलन मध्यकाल की एक महत्वपूर्ण घटना है। एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया जिसने भारतीय समाज की गहरे तक प्रभावित किया। बुद्ध के बाद का सबसे प्रभावी आंदोलन जो समूचे देश में फैला जिसमें ऊँच-नीच, स्त्री-पुरूष, हिंदू-मुस्लिम सभी की भागीदारी थी। अपने मूल रूप में यद्यपि यह एक धार्मिक आंदोलन था, किंतु सामाजिक रूढ़ियों,

सामंती बंधनों के नकार का स्वर, एक सहिष्णु, समावेशी समाज की संकल्पना भी इसमें मौजूद थी। भक्ति काव्य इसी भक्ति आंदोलन की उपज है। आइए हम इसके विविध पक्षों-उदय एवं विकास, उत्पत्ति के कारणों, महत्व एवं प्रदेय की पड़ताल करें-

6.9.1 भक्ति आंदोलन उदय एवं विकास

मध्यकाल में लगभग 3-4 सौ वर्षों तक चलने वाले भक्ति आंदोलन का जन्म सहसा नहीं होता। भक्ति आंदोलन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते 6-10 सदी और 10-16 सदी का कालखण्ड। भक्ति के बीज तो वैदिक काल में ही मिलते है। ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण से होते हुए क्रमशः भक्ति का विस्तार होता है। और भागवत संप्रदाय के रूप भक्ति को एक व्यापक आयाम मिलता है। एक आंदोलन के रूप में भक्ति को प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय, दक्षिण के अलवार, नयनार भक्तों को है जिनका समय 6-10 सदी तक है। भक्ति आंदोलन का उदय दक्षिण से हुआ और वह क्रमशः उत्तर भारत में फैलता गया। हिन्दी में उक्ति है-'भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद/प्रगट करी कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड।' दोनों उद्धरणों से विदित होता है कि भक्ति का उदय द्रविड़ देश (तमिलनाडु) में हुआ। एक संस्कृत श्लोक से ज्ञात होता है कि द्रविड़ देश में उदय के पश्चात्, भक्ति का आगे विकास कर्नाटक, फिर महाराष्ट्र में हुआ और उसका पतन गुजरात देश में हुआ, फिर वृंदावन में उसे पुनर्जीवन, उत्कर्ष मिला। हिन्दी की अनुश्रुति में भक्ति को रामानंद द्वारा दक्षिण से उत्तर ले जाने और कबीर द्वारा प्रचारित-प्रसारित किए जाने का स्पष्ट संकेत है। स्पष्ट है कि संस्कृत श्लोक का सम्बद्ध कृष्ण भक्ति से और हिन्दी अनुश्रुति का सम्बन्ध रामभक्ति से है। बहरहाल आलवारों नयनारों का प्रमुख विरोध बौद्ध और जैन धर्म से था। उन दिनों दक्षिण में इन दोनों धर्मों का काफी प्रभाव था, किन्तु अपने मूल स्वरूप को खोकर ये धर्म कर्मकाण्डीय जड़ता और तमाम तरह की विकृतियों के शिकार हो गए थे। ऐसे समय में आलवार (विष्णुभक्त) और नयनार (शिव भक्त) संतों ने जनता के बीच भक्ति को प्रचारित करने का कार्य किया। महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन को ज्ञानदेव, नामदेव ने आगे बढ़ाया। इनकी भक्ति सगुण-निर्गुण के विवादों से परे थी। ज्ञानदेव की भक्ति पर उत्तर भारत के नाथ पंथ का भी गहरा प्रभाव था। आगे चलकर महाराष्ट्र में तुकाराम और गुरु रामदास हुए। आठवीं सदी में शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का प्रतिवाद करते हुए वेदों, उपनिषदों की नई व्याख्या कर वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। उनका विरोध अलवार एवं नयनार से भी था। उन्होंने अद्वैतवाद, मायावाद का प्रवर्तन कर ज्ञान को, सर्वोपरि महत्ता दी। शंकराचार्य का विरोध परवर्ती वैष्णव आचार्यों रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य, निम्बार्क ने किया। ये लोग सगुण ब्रह्म के उपासक और भक्ति द्वारा मुक्ति को मानने वाले थे। शंकराचार्य जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे वहीं इन आचार्यों का भक्तिमार्ग भेदभाव रहित था।

रामानुज के शिष्य राघवानंद ने भक्ति को उत्तर भारत में प्रचारित किया। इनके शिष्य रामानंद हुए, जिन्होंने भक्ति मार्ग को और भी उदार बनाकर सगुण-निर्गुण दोनों की उपासना का उपदेश दिया। इनके शिष्यों में सगुण भक्त और निर्गुण संत दोनों हुए। इनके बाहर शिष्य प्रसिद्ध है-रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, पद्मावती, सुरसुरी। रामानंद ने रामभक्ति मार्ग को प्रशस्त किया, जिसमें आगे चलकर तुलसीदास हुए। श्री कृष्ण भक्तिमार्ग को वल्लभाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, हितहरिवंश, विट्ठलनाथ ने आगे बढ़ाया निर्गुण भक्तिमार्ग

में कबीर सर्वोपरि है, उन्होंने, वैष्णव सम्प्रदाय से ही नहीं, सिद्धों, नाथों और महाराष्ट्र के संतज्ञानेश्वर, नामदेव से बहुत कुछ ग्रहण कर निर्गुण पंथ का उत्तर भारत में प्रवर्तन किया।

भारत में इस्लाम के आगमन के साथ सूफी मत का भी प्रवेश हुआ। सूफी मत इस्लाम की रूढ़ियों से मुक्त एक उदारवादी शाखा है। इसके कई संप्रदाय है-चिश्ती, कादिरा, सुहरावर्दी, नक्शबंदी, शत्तारी। भारत में चिश्ती और सुहरावर्दी संप्रदाय का विशेष प्रसार हुआ। हिंदू-मुस्लिम के सांस्कृतिक समन्वयीकरण में सूफी मत काफी सहायक हुआ।

इस प्रकार भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से शुरु होकर समूचे भारत में फैला और शताब्दियों तक जन सामान्य को प्रेरित-प्रभावित करता है। उसका एक अखिल भारतीय स्वरूप था, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी जगहों पर हम इस आंदोलन का प्रसार देखते हैं, सभी वर्ग, जाति, लिंग, समुदाय, संप्रदाय, क्षेत्र की इसमें भूमिका, सहभागिता थी। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, रामदास, गुजरात में नरसी मेहता, राजस्थान में मीरा, दादू दयाल, उत्तर भारत में, कबीर, रामानंद, तुलसी, सूर जायसी, रैदास, पंजाब में गुरु नानक देव, बंगाल में चण्डीदास, चैतन्य, जयदेव असम में शंकरदेव सक्रिय थे। भक्ति आंदोलन में दौरान कई संप्रदायों का जन्म हुआ, जिन्होंने मानववाद के उच्च मूल्यों का प्रसार किया, सामान्य जन-जीवन में स्फूर्ति एवं जागरण का संचार किया।

6.9.2 भक्ति-आंदोलन के उदय के कारण-

भक्ति आंदोलन का उदय मध्यकालीन इतिहास की एक प्रमुख घटना है। इसका उदय अकस्मात नहीं होता है बल्कि बहुत पहले से ही इसके निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी, जिसे युगीन परिस्थितियों ने गति प्रदान किया। ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन माना है- उनका यह मत अप्रमाणिक, अतार्किक है। आचार्य शुक्ल ने इसे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम मानते हुए पराजित हिंदू समाज की सहज प्रतिक्रिया माना है, वह लिखते है-'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने उनके देव-मंदिर गिराए जाते थे, देव, मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नही कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनैतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश लोगों के लिए भगवान की शक्ति और कारण की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 60)। इस प्रकार शुक्ल जी भक्ति आंदोलन के उदय को इस्लाम के आक्रमण से क्षत-विक्षत, अपने पौरुष से हताश हिन्दू जाति के पराजय बोध से जोड़ते हैं। भक्ति काल के उदय सम्बन्धी शुक्ल जी के मत से असहमति जताते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि-'मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस हिंदी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा कि आज है।' (हिंदी साहित्य की भूमिका) आचार्य द्विवेदी भक्तिआंदोलन पर इस्लामी आक्रमण का प्रभाव तो स्वीकार करते हैं, किंतु भक्ति आंदोलन को उसकी प्रतिक्रिया नहीं मानते। बहरहाल दोनों आचार्यों के मतों में भिन्नता के

बावजूद इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भक्ति आंदोलन का एक सम्बन्ध इस्लामी आक्रमण से भी है। द्विवेदी जी भक्ति आंदोलन को भारतीय पंरपरा का स्वाभाविक विकास मानते है, इसे उन्होंने शास्त्र और लोक के द्वन्द्व की उपज माना है जिसमें शास्त्र पर लोकशक्ति प्रभावी साबित हुई, और भक्ति आंदोलन का जन्म हुआ। इसके मूल में वह बाहरी कारणों की जगह भीतरी शक्ति की ऊर्जा देखते है-'भारतीय पांडित्य ईसा की एक शताब्दी बाद आचार-विचार और भाषा के क्षेत्रों में स्वभावतः ही लोक की ओर झुक गया था। यदि अगली शताब्दियों में भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना अर्थात् इस्लाम का प्रमुख विस्तार न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता। उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकास की ओर ठेले जा रही थी।' (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ0-15)। द्विवेदी जी, मध्यकालीन भक्ति साहितय के विकास के लिए बौद्ध धर्म के लोक धर्म में रूपांतरित होने और प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगार प्रधान कविताओं की प्रतिक्रिया को देखते है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत उल्लेखनीय है-'अच्छा होगा कि प्रभाव और प्रतिक्रिया दोनों रूपों में इस्लाम की व्याख्या सहज भाव और अकुंठ मन से किया जाए। तब आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के बीच दिखने वाला यह प्रसिद्ध मतभेद अपने-आप शांत हो जाएगा। भक्ति-काव्य के विकास के पीछे बौद्ध धर्म का लोक मूलक रूप है और प्राकृतों के श्रृंगार काव्य की प्रतिक्रिया है तो इस्लाम के सांस्कृतिक आतंक से बचाव की सजग चेष्टा भी है।' (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ0-33) वह मध्यकालीन भक्तिकाव्य के उदय में इस्लाम की आक्रामक परिस्थिति का गुणात्मक योगदान स्वीकार करते हैं। भक्ति आंदोलन के उदय के पीछे तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियाँ भी कार्यरत थी, इसका विवेचन के दामोदरन, इरफान हबीब, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध ने किया है। इस्लामी राज्य की उत्तर भारत में स्थापना और उसकी स्थिरता के कारण व्यापार वाणिज्य का तेजी, से विकास होता है, नये उद्योग-धंधे ही नहीं, स्थापित होते, नए-नए नगरों का भी निर्माण होता है, इसके फलस्वरूप भारत का जो कामगार वर्ग था, जिसमें प्रायः निचली जातियों के लोग अधिक थे की आर्थिक स्थिति में सुधार होता और उनमें एक आत्मसम्मान, अपनी सम्मानजनक सामाजिक स्थिति को पाने की भावना बलवती होती है। यह अकारण नहीं है कि भक्ति आंदोलन में इन निचली जातियों की भागीदारी सर्वाधिक है। इस्लामी राज्य स्थापित से होने से परम्परागत सामाजिक ढाँचें को एक धक्का लगता है, सामंतों एवं पुरोहितों का प्रभुत्व-प्रभाव कम होता है। कह सकते है भक्ति आंदोलन के उदय में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ सभी अपना योगदान दे रही थी। अत: भक्ति आंदोलन के उदय में कई कारणों का संयुक्त योगदान है।

6.9.3 भक्ति आंदोलन का महत्व-

भक्ति आंदोलन मध्यकाल का एक व्यापक और प्रभावी आंदोलन था, जिसने भारतीय समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। इसने एक ओर जहाँ सत्य शील, सदाचार, करूणा, सेवा जैसे उच्च मूल्यों को प्रचारित किया वहीं समाज के दबे-कुचले वर्ग को भक्ति का अधिकारी, बनाकर उनके अंदर आत्मविश्वास का संचार भी किया। भक्ति आंदोलन की प्रगतिशील भूमिका को रेखांकित करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते है-'इस आंदोलन में पहली बार राष्ट्र के एक विशेष भूभाग के निवासी तथा कोटि-कोटि साधारण जन ही शिरकत नहीं

करते, समग्र राष्ट्र की शिराओं में इस आंदोलन की ऊर्जा स्पंदित होती है, एक ऐसा जबर्दस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते है, सब एक दूसरे को प्रेरणा देते है, एक-दूसरे से प्रेरणा लेते है, और मिलजुल कर भक्ति के एक ऐसे विराट नद की सृष्टि करते हैं, उसे प्रवहमान बनाते हैं, जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि-कोटि साधारण जन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं, अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्म् विश्वास, जिंदा रहने की, आत्म सम्मान के साथ जिंदा हरने की शक्ति पाते हैं।' (भक्ति-आंदोलन और भक्तिकाव्य-पृ. 11) भक्ति आंदोलन एक व्यापक लोकजागरण था।

6.10 भक्ति कालीन कविता का उदय-

भक्तिकाव्य भक्ति आंदोलन की उपज है। सबसे पहले हमें निर्गुण पंथ दिखलाई पड़ता हैं, जिनमें कबीर प्रमुख हैं। कबीर रामानंद के शिष्य हैं। कबीर के पहले महाराष्ट्र में नामदेव हिंदी में रचना कर चुके थे, उनमें निर्गुण और सगुण दोनों की उपासना है। कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन पर अद्वैतवाद, वैष्णवी अहिंसावाद, प्रप्रत्तिवाद, सिद्ध, नाथ मत का पूरा प्रभाव था। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर जोर देते हुए, बहुदेववाद, शास्त्रों एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया। उनकी भक्ति भावमूलक हैं, जिसकी उपलब्धि सद्गुरू की कृपा से होती है। कबीर की ही परंपरा में रैदास, रज्जब, दादू आदि संत कवि आते हैं। सूफी मत पर आधारित प्रेमाख्यानक काव्य तब प्रकाश में आता है जब भारत में सूफी मत का प्रसार होता हैं। सूफी फकीरों में निजामुद्दीन ओलिया और ख्वाजामुइनुद्दीन चिश्ती प्रमुख हैं। सूफी संत कवियों में कुतुबुन, मंझन, मलिजक मुहम्मद जायसी, उसमान आदि प्रमुख हैं। इन सूफी संतों ने प्रचलित हिंदू कथाओं को, आधार बनाकर ईश्वरीय प्रेम का निरूपण किया है। रामभक्ति की शुरुआत रामानंद से होती है। जिसे चरमोत्कर्ष पर गोस्वामी तुलसीदास ले जाते हैं। उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति का प्रसार वल्लभाचार्य ने किया। पुष्टिमार्गी अष्टछाप के कवियों ने कृष्णकाव्य का प्रणयन किया इनमें सूरदास और नंददास प्रमुख है। अष्टछाप कवियों के पूर्व संस्कृत में जयदेव और मैथिल में विद्यापति ने कृष्ण काव्य की रचना की थी। आगे की इकाई में भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं के उद्भव एवं विकास का विस्तृत विवेचन किया जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आलवर भक्तों में महिला भक्त थीं?
2. द्वैताद्वैत का प्रवर्तन किसने किया?
3. शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करने वाले प्रथम वैष्णव आचार्य हैं?
4. गुजरात के प्रमुख भक्त कवि हैं?
5. नवधा भक्ति का उल्लेख किस ग्रंथ में हैं?
6. भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन किसने माना है?
7. भक्ति आंदोलन को भारतीय परंपवरा का स्वाभाविक विकास किस आलोचक ने माना है?

8. नामदेव की भक्ति किस प्रकार हैं?

6.11 सारांश

हिंदी साहित्य का पूर्वमध्यकाल (14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक) के साहित्य की मूल संवेदना भक्ति होने के कारण भक्तिकाल कहा गया। भक्ति के आदि बीज वेदों में मिलते हैं, ब्राह्मण, ग्रंथों, उपनिषद, पुराणों से होते हुए भागवत धर्म में भक्ति को व्यापक आयाम मिलता है। कालांतर में वैष्णव आचार्यों रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य ने भक्ति को दार्शनिक आयाम देते हुए भक्ति मार्ग को उदार बनाया। दक्षिण के आलवार भक्तों ने राम, कृष्ण की उपासना पर जोर दिया और दक्षिण भारत में एक आंदोलन की तरह भक्ति आंदोलन का प्रचार किया। दक्षिण से भक्ति आंदोलन का प्रसार उत्तर भारत में होता है रामानंद, वल्लभाचार्य के माध्यम से। भक्ति आंदोलन एक व्यापक आंदोलन था जिसमें सभी वर्ग, जाति, क्षेत्र, भाषा की भूमिका थी। मूलतः धार्मिक आंदोलन होते हुए भी भक्ति आंदोलन का एक सामाजिक आयाम भी है। तत्कालीन राजनीति, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ और पहले चली आ रही लोकपरम्परा, भक्ति आंदोलन के उदय का कारण बनती है। भक्ति काव्य इसी आंदोलन की उपज है। इसी की कोख से, संत काव्य, सूफी प्रेमाख्यान काव्य, रामकाव्य, कृष्ण भक्ति काव्य का जन्म होता है। जिसे कबीर, जायसी, सूर, तुलसी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

6.12 शब्दावली

(1) अवतारवाद- वैष्णव संप्रदाय में ईश्वर के अवतार की कल्पना की गई। ईश्वर धर्म और धरा की रक्षा के लिए धरती पर जन्म लेता है। विभिन्न शास्त्रों में अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न है, कहीं 7, कहीं 10 कहीं 24 अवतारों का उल्लेख मिलता है। राम और कृष्ण प्रमुख अवतार है, जिनकी भक्ति का मध्यकालीन भक्ति काव्य में वर्णन मिलता है।

(2) प्रपत्ति भावना- प्रपत्ति का अर्थ है शरणागति। प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर देना। प्रपत्ति को भक्ति का प्रमुख साधन माना गया हैं।

(3) अनात्मवाद- भारतीय चिंतन परंपरा में आत्मा सम्बन्धी दो विचारधारा है- आत्मवाद और अनात्मवाद या नैरात्म्यवाद। आत्मवाद के अनुसार आत्मा नित्य, अजर-अमर, चेतन है। हिंद-धर्म-दर्शन आत्मवादी है। अनात्मवाद के अनुसार या तो आत्मा है ही नहीं और यदि है तो वह नश्वर और परिवर्तनशील है।

(4) मायावाद- शंकराचार्य के अनुसार आत्मा, परमात्मा दोनों में अद्वैत संबंध है। किंतु माया के कारण मनुष्य दोनों की अद्वैतता का अनुभव नहीं कर पाता। माया के कारण ही मनुष्य सांसारिक प्रपंचों और जगत को सत्य मान परमात्मा से विमुख रहता है। इस माया के नाश द्वारा ही मनुष्य को परमपद की प्राप्ति हो सकती है। माया के बंधनों से मुक्ति ज्ञान से होती है।

(5) बहुदेवोपासना- बहुदेववाद हिंदू धर्म की विशेषता है। हिंदू धर्म में ईश्वर के कई रूपों की मान्यता है। दअसल बहुदेववाद अवतारवाद की देन है।

(6) नवधाभक्ति-भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों का उल्लेख है। ये नौ साधन हैं-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य, आत्मनिवेदन। यही नवधा भक्ति है।

6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंडाल
2. निम्बार्क
3. रामानुजाचार्य
4. ‘नरसी मेहता
5. भागवत पुराण
6. ग्रियर्सन
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. सगुण-निर्गुण

6.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
4. शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
5. मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

6.15 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	- रामस्वरूप चतुर्वेदी
2.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	- सं. नगेंद्र
3.	भारतीय चिंतन परम्परा	- के0 दामोदरन
4.	हिन्दी साहित्य कोश-भाग-1	- सं. धीरेन्द्र वर्मा
5.	भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार	- सं. गोपेश्वर सिंह
6.	भक्ति काव्य का समाज दर्शन	- प्रेमशंकर

6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के मतों का परिचय दीजिए?

(2) भक्ति आंदोलन के उदय एवं विकास पर प्रकाश डालिए?

(3) ‘अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी हिन्दी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।’ इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों की व्याख्या कीजिए।

(4) भक्ति आंदोलन की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकई 7 रीतिकालः परिचय एव आलोचना

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 रीतिकाल परिचय
7.3.1 पृष्ठभूमि एव प्रवर्त्तक का प्रश्न
7.3.2 काल-विजान
7.3.3 नामकरण
7.3.4 वर्गीकरण
7.3.5 प्रवृत्तियाँ
7.4 रीतिकालः आलोचनात्मक संदर्भ
7.4.1 दरबारीपन
7.4.2 वर्ण्य- संकोच: नकल या मौलिकता
7.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान
7.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ
7.6 रीतिकाल: मूल्यांकन
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री
7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास के उत्तर-मध्यकाल को 'रीतिकाल' की संज्ञा प्रदान की गई है। मध्यकालीन कविता के दो भाग है, जिसमें एक को भक्तिकाल कहा गया और दूसरे को रीतिकाल। भक्तिकाल अपनी विषय वस्तु एवं अभिव्यक्ति में अलग ढंग का काव्य है, तो रीतिकाल अलग ढंग का। कालगत मजबूरी न हो तो भक्तिकाल एवं रीतिकाल को एक साथ विवेचित करने का भी कोई औचित्य नहीं है। भक्तिकाल लोक संवेदना से युक्त काव्य है तो रीतिकाल राजाश्रय प्राप्त काव्य। एक भक्तित्व से युक्त है तो दूसरा श्रृंगारिक तत्व से। रीतिकालीन साहित्य के बारे में तटस्थ मूल्यांकन भी कम ही हुए हैं। एक वर्ग के आलोचक जहाँ इसे घोर सामंती छाया का काव्य मानते हैं तो दूसरा वर्ग इसे साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ काव्य कहता है। इन दो अतिवादों के बीच रीतिकालीन कविता के पुनर्मूल्यांकन के प्रयास भी समय-समय पर होते रहें हैं। इस इकाई के माध्यम से हम रीतिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं उसके साहित्यिक मूल्यांकन का प्रयास करेंगे।

7.2 उद्देश्य

'मध्यकालीन कविता' शीर्षक प्रश्न पत्र का यह रीतिकाल संबंधित खण्ड की प्रथम इकाई है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रीतिकाल के काल-सीता, नामकरण से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकालीन प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकालीन समाज, संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल के वर्गीकरण एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल के प्रमुख कवियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल की उपलब्धि एवं सीमा को जान सकेंगे।

7.3 रीतिकाल परिचय

'रीतिकाल' मध्यकाल का प्रमुख काव्यान्दोलन था। भक्ति काल के बाद रीतिकालीन साहित्य का आगमन और फिर रीतिकालीन साहित्य के बाद पुनर्जागरणकालीन चेतना का उदय, यह चक्र कई इतिहासकारों के लिए पहे ली सा है। लेकिन जो इतिहासकार साहित्य के समाज शास्त्रीय पद्धति से उसका अध्ययन करता है, उसके लिए रीतिकालीन साहित्य सामंती समाज को समझने का एक प्रामाणिक माध्यम भी बन जाता है। इस दृष्टि से रीतिकालीन कविता का अपना अलग महत्व है। इस इकाई में हम रीतिकालीन कविता को उसकी संपूर्णता में समझने को प्रयास करेंगे। रीतिकालीन साहित्य की विशेषता से पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करें।

7.3.1 पृष्ठभूमि

भारतीय मध्यकाल में भक्तिकाल का साहित्य जहाँ अपने औदात्य में प्रसंशित काव्य रहा है,

वहीं रीतिकाल विषय-वस्तु के स्तर पर हमें उतना संतुष्ट नहीं कर पाता। इसके कई कारण हैं, जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे। कई आलोचकों ने यह प्रश्न उठाया है कि भक्तिकाल जैसे श्रेष्ठ साहित्यिक काल के बाद रीतिकाल का आगमन कैसे और क्यों हुआ? साहित्य में क्या इतिहास-संस्कृति या समाज में परिवर्तन अचानक नहीं होता। लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के बाद कोई परिवर्तन होता है। इतिहास के राजनीतिक दृष्टिकोण से यदि हम देखें कि क्या कोई बड़ा (आधाभूत) परिवर्तन हुआ है तो इसका उत्तर हमें नहीं में मिलेगा। पूरे मध्यकाल की चेतना राजनीतिक दृष्टि से सामंती ही है, हाँ उसके स्वरूप में परविर्तन अवश्य हुआ है। रीतिकाल तक आते-आते सम्पूर्ण देश पर (प्रायः) मुगलकालीन सल्तनत स्थापित हो चुकी होती है। छोटे-छोटे हिन्दु राजा मुगल दरबार में 'कर' भेजकर भोग-विलीस में रत होते हैं। राजाश्रय प्राप्त कवियों का प्रधान ध्येय कामोद्दीप्त राजाओं के लिए उपभोग के चित्र खड़ा करना हो गया, कविता के मल्य पीछे चले गये। भक्तिकाल से रीतिकाल में रूपान्तरण पर टिप्पणी करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है.......''भक्ति की अनुभूति की सद्यनना को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र, और दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया। .... कालान्तर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप में हट गए और वे महज़ दाम्पत्य जीवन के प्रतीक -रूप में अवशिष्ट रह गए। प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई, और प्रेम का श्रृंगारिक रूप केन्द्र में आ गया। भक्तिकाल के रीति- काल में रूपान्तरण की यही प्रक्रिया है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) राजनीतिक दृष्टि से मुगलसत्ता की प्रतिष्ठा और हिन्दु राजाओं का लडा़ई से अलग होना, मनोवैज्ञानिक रूप से श्रद्धा तत्व के अभाव में प्रेम का वासनामय होना, परम्परा की दृष्टि से प्राकृत-संस्कृत की श्रृंगारिक रचना इत्यादि वे कारण थे, जो रीतिकाल के उदय होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

7.3.2 काल-विभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का काल-विभाजन करते हुए इसे 1643 ई. से लेकर 1843 ई. तक स्थिर किया है। चिंतामणि त्रिपाठी से लेकर अन्तिम बड़े रीतिकालीन कवि पद्माकर के रचनाकर्म को यह काल- समेटे हुए है। मोटे तौर पर प्रमुख आलोचकों ने रीतिकाल का काल विभाजन इस प्रकार किया है-

समय सीमा	**आलोचक**
1643-1843 ई.	रामचन्द्र शुक्ल
1700- 1900 ई.	हजारी प्रसाद द्विवेदी
1700-1868 ई.	डा. नगेन्द्र
1650-1850 ई.	रामस्वरूप चतुर्वेदी
1650- 1850 ई.	रामविलास शर्मा/ बच्चन सिंह
1624- 1832 ई.	मिश्रबंधु

काल-विभाजन संबंधी प्रमुख आलोचकों के मतों को देखने पर यह बात सहज ही ध्वनित होती है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल-विभाजन ही मोटे तौर पर स्वीकृत रहा है।रीतिकाल के काल-विभाजन को संशोधित रूप में 1650 ई. से 1850 ई. के बीच मान लिया गया है। 1643

ई. से चिन्तामणि त्रिपाठी के माध्यम से रीतिकालीन प्रवृत्ति अखंड रूप से चली और पद्माकर की मृत्यु 1832 ई. के बाद समाप्त होती है। 1842- 43 ई. से राजा लक्ष्मण सिंह और राजा शिवप्रसाद सितारे ‘हिन्द’ का रचनाकाल प्रारंभ हो जाता है, अतः मोटे तौर पर 1850 ई. से रीतिकाल का समापन काल एवं आधुनिक काल का प्रारम्भ वर्ष मान लिया गया है।

रीतिकाल के प्रवर्त्तन के प्रश्न पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में मतैक्य नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी रीतिकाल के प्रवर्त्तन का श्रेय चिंतामणि त्रिपाठी को दिया है। उन्होंने लिखा है- ‘‘ इसमें संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने किया। पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की ‘कविप्रिया’ के प्रायः 50 वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।’’ केशवदास का समय 1590 से प्रारम्भ होता है, जो कविप्रिया, रसिकप्रिया का रचनाकाल भी है। आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त रीतिकाल के प्रवर्त्तक पर अन्य आचार्यों का मत इस प्रकार है-

केशव - जगदीश गुप्त, श्यामयुन्द दास, डा. नगेन्द्र

विद्यापति - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

कृपाराम - भगीरथ मिश्र

इन सभी मतों का समन्वय करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ‘‘हिन्दी रीतिकाल परम्परा का आरंभ कहाँ से होता है, इस संबंध में कई दृष्टिकोण उपस्थित किए गए हैं। कालक्रम की दृष्टि से कृपाराम (रचनाकाल – 1541 ई.) का नाम पहले आता है, रचनाकार – व्यक्तित्व की समृद्ध की दृष्टि से केशव दास का (1555-1617 ई.) और आगे अखंड परम्परा चलने के विचार से चिंतामणि का (रचनाकाल - 1643 ई. के आस-पास)। रीतिकाव्यधारा अधिक सजग और व्यस्थित रूप से चलने के कारण यहाँ प्रवर्त्तन की बात कुछ अधिक स्पष्ट रूप से उठती है। कई काव्यशास्त्रीय पक्षों, और प्रबंध तथा मुक्तक शैलियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण भक्ति से रीतिकाव्यधारा में रूपान्तरण का श्रेय अधिकतर केशवदास को दिया जाता है। वे कालक्रम से भक्तिकाल में है, पर प्रवत्ति की दृष्टि से रीतिकाल में। "(हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास’, पृष्ठ - 63) आधुनिक आलोचकों ने रीतिकाल का सम्यक् निरूपण करने के कारण केशवदास को ही रीतिकाल का प्रवर्त्तक मान है।

7.3.3 नामकरण

रीतिकाल के नामकरण के प्रश्न पर टिप्पणी करते हुए डा. बच्चन सिंह ने लिखा है ‘‘ इस काल का नाम रीतिकाल रखने का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल को है। प्रवृत्ति की दृष्टि से इससे बेहतर नाम की कल्पना नहीं की जा सकती ।’’ (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास’ पृष्ठ 179) नामकरण के औचित्य पर चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 में टिप्पणी की गई है-" इस काल के काव्य की प्रभुत्व धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। यह ‘रीति’ शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ‘रीति’ शब्द से भिन्न अर्थ रखनेवाला है। ......संस्कृत की रीति संबंधी यह धारण हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गई है। परन्तु रीति को काव्य - रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य- रचना

करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो। इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही 'रीति' नाम से विख्यात हुई। '' (पृष्ठ- 563) रीतिकालीन काव्य रचना की विशेष पद्धति क्या थी? इस प्रश्न को थोडा़ और अच्छे ढंग से समझ लेना चाहिए। रीतिकाल के अधिकांश कवि, आचार्य - कवि थे। वे राजकुमार- राजकुमारियों को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए शिक्षक नियुक्त किये गए थे। अतः पहले वे शास्त्रीय ढंग से किसी विषय के लक्षण बताया करते थे और फिर व्यावहारिक रूप से लक्षण को स्पष्ट रकने लिए उदाहरण के रूप में स्व-निर्मित कविता की रचना किया करते थे। इस प्रकार लक्षण- उदाहरण की यह विशेष पद्धति ही 'रीतिकाल' नामकरण का आधार बनी। 'रीतिकाल' का नामकरण इसी आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। बावजूद इसके कई आलोचकों ने इस नामकरण से असहमति व्यक्त की है। उनका तर्क है कि 'रीतिकाल' नामकरण से इस युग की किसी प्रवृत्ति का बोध नहीं होता । रीतिकाल के अतिरिक्त इस युग का नामकरण अन्य आलोचकों ने अपने तर्कों के अनुसार किया है , उसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

नामकरण	**आलोचक**
अलंकृत काल	मिश्रबंधु
कलाकाल	डा. रामाशंकर शुक्ल 'रसाल'
श्रृंगार काल	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
रीतिकाल	ग्रियर्सन
मुक्तक काल	नन्ददुलारे बाजपेयी
दरबारीकाल	राहुल सांस्कृत्यायन
रीतिकाल	रामचन्द्र शुक्ल, डा. नगेन्द्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह

रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की प्रधानता रही, अलंकरण की वृत्ति के कारण अलंकारों का प्रयोग ज्यादा हुआ तथा दरबारी वृत्ति के प्रायः रचनाकार थे, अतः उपरोक्त नामकरण भी अपनी सार्थकता अवश्य रखते हैं। किन्तु 'रीतिकाल; नामकरण अपनी वैज्ञानिकता एवं प्रसिद्धि के कारण बहुमान्य रहा है। अतः यहाँ हम भी इसी नामकरण को उचित मानते हैं।

7.3.4 वर्गीकरण

रीतिकाल का मूल स्वरूप दरबारीकाल और श्रृंगारिक रहा है, किन्तु उसके स्वरूप में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम रीतिकाल का विभाजन किया है। शुक्ल जी ने स्पष्ट ढंग से रीतिकाल को दो भागों में विभाजित किया है-

रीतिकाल

रीतिग्रन्थकान कवि अन्य कवि

(बिहारी-प्रतिनिधि कवि) (घनानन्द प्रतिनिधि कवि)

शुक्ल जी के अनुसार रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति रीति निरूपण की रही है। लेकिन कुछ कवियों ने रीति पद्धति का पालन नहीं किया है, इसलिए उन्होंने उन कवियों को 'अन्य कवि' कहा है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल का सबसे पूर्व, वैज्ञानिक विभाजन करने हुए इसे रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध इत्यादि कहा है। डा. नगेन्द्र ने इसे और स्पष्ट ढंग से विभक्त करते हुए रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त नाम दिया है। डा. बच्चन सिंह ने रीतिकालीन कविता का विभाजन करते हुए इसे रीतिचेतस और काव्य चेतस नाम दिया है। रीतिबद्ध कविता के साथ ही उन्होंने मुक्त रीति नामक विभाजन और किया है और उसे पुनः क्लासिकल (बिहारी) और स्वच्छन्द (घनानन्द) के उप-विभाजनों में बाँट दिया है। वस्तुतः रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन विभाजन ही सर्वमान्य रहे हैं, जिसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

रीतिकालीन कविता का वर्गीकरण

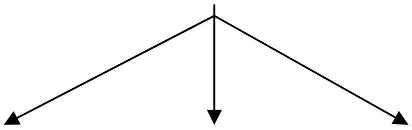

रीतिबद्ध रीतिसिद्ध रीतिमुक्त

रीतिबद्ध **रीतिसिद्ध** **रीतिमुक्त**

रीतिबद्ध	रीतिसिद्ध	रीतिमुक्त
(चिन्तामणि त्रिपाठी, भूषण, केशव, देव, प्रतावसिंह, मतिराम,सूदन इत्यादि कवि)	(बिहारी मुख्यतः)	घनानन्द,आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव इत्यादि

रीतिकाल कविता संबंधी उपरोक्त विभाजन का आधार यह है कि जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना की है, वे रीतिबद्ध कहलाये। जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर उदाहरणों की रचना की, वे रीतिसिद्ध कहलाये तथा जिन कवियों ने रीतिकालीन लक्षण-उदाहरण से इतर स्वच्छन्द रूप से प्रेमपरक कविताएँ लिखी है वे रीतिमुक्त कहलाये।

7.3.5 प्रवृत्तियाँ

जैसा कि हमने अध्ययन किया कि रीतिकालीन साहित्य राजश्रय प्राप्त साहित्य रहा है। राजश्रय प्राप्त साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि में राजाओं की इच्छा, उनकी रूचि एवं उनके हित साधन की प्रवृत्ति प्रेरक रूप में रहती है। रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति भी सामंती कारणों से पचिचालित हुई है। संक्षेप में यहाँ हम रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति समझने की कोशिश करेंगे।

- **रीति-निरूपण की प्रवृत्ति :** रीतिकाल कविता की सबसे बड़ी पहचान यह है कि कविता करने की एक विशेष पद्धति का पालन अधिकांश कवियों ने किया है, उसी को रीति-निरूपण कहा गया है। पहली पंक्ति में लक्षण एवं द्वितीय पंक्ति में उदाहरण लिखना इसी पद्धति के अंतर्गत आते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि वाग्धारा बँधी हुई नालियों में कहने लगी। कविता कहने की बँधी हुई रीति का पालन करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि कवियों द्वारा चुने गए वर्ण्य- विषयों में संकोच हो गया। रूप-विधान के

चुनाव से साहित्य कैसे संकुचित होता है, इसका अच्छा उदाहरण है- रीतिकालीन कविता।

श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति - रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की ही अधिकता रही। इसी का लक्ष्य कर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'श्रृंगार काल' कहा था।अन्य रसों वीर रस की दृष्टि से भूषण का काव्य महत्वपूर्ण है, लेकिन वह उस युग की मूल प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता है। श्रृंगार प्रवृत्ति के मूल में सामंतो की उपभोगपरक दृष्टि की मुख्य भूमिका रही है। इस काल के कवियों ने भी राजाओं को कामोद्दीप्त करना। अपनी कविता का प्रधान लक्ष्य मान लिया था। श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति के मुख्य वर्ण्य विषय बने-नायिका भेद, नखशिख एवं ऋतु-वर्णन। 'पानिप अमल की झलक झलकन लागी/काई-सी गइ है लरिकाई कढ़ि अंग ते ।।' जैसे वाक्य रीतिकालीन कविता में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है- ''नगर के बाहर के उनके उपवनों में भारतीय और पारसी पुष्पों की बहार थी। कमलो से सुशाभित और भ्रमरों से मुखरित स्वच्छ सरोवरों मै स्नान करती हुई सुन्दरियों के अनावृत्त सौन्दर्य को देखकर कवियों की सरस्वती फूट पड़ती थी''

सहजता बनाम अलंकरण- भक्तिकालीन सहजता की प्रतिक्रिया रीतिकालीन अलंकरण के रूपमें हुई। मिश्रबंन्धु जैसे इतिहासकारों ने इस काल की कविता में अलंकारों के आधिक्य को देखकर ही इसे 'अलंकृत' काल कहा है। केशवदास जैसे बड़े कवि की कविता अलंकारों के आधिक्य से दुरूह हो गई है। भूषण जैसे प्रतिभाशाली कवियों में भी अलंकार का निरर्थक प्रयोग हुआ है। कविता में अलंकार जहाँ सौन्दर्य की वृद्धि करे वहाँ तक तो ठीक है, लेकिन जहाँ वह केवल सजावट के लिए लाये गये हों, वहाँ कविता की आत्मा मर जाये तो आश्चर्य ही क्या? अलंकरण की इस प्रवृत्ति को आचार्य शुक्ल ने- हाथी-दाँत के टुकड़े पर महीन बेलबूटे कहा है। भूषण का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' अलंकार ग्रन्थ ही है। केशव की कविप्रिया और मतिराम की 'ललित ललाम ' में अलंकार विवेचन ही है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से जसवन्त सिंह का 'भाषा भूषण' रीतिकाल का आधार ग्रन्थ रहा है।

सामंती चित्र और दरबारीपन-

रीतिकालीन-कविता की प्रेरक शक्ति सामंतवाद और दरबारीपन रहै हैं। राहुल सांकृत्यायन, रामविलास शर्मा जैसे आलोचक रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति 'दरबारीपन' मानते हैं। इसमें आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति पर बल होता है। भूषण का ग्रन्थ शिवराज भूषण, छत्रसालदशक राजप्रशस्ति और दरबारी मनोवृत्ति का अच्छा उदाहरण है। तुसली जहाँ इस बात के लिए सतर्क थे कि उनकी लेखनी से प्राकृत लोगों का गुनगान न हो जाये ('कीन्हे प्राकृतजन गुन गाना/सिर धुनि गिरा लागि पछताना') वहीं इस काल के कवियों ने गर्व से अपने को दरबारी कवि बताया है। सामंती उपभोग चित्रों पर टिप्पणी करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है- ''सामंती दिनचर्या का वर्णन देव ने अपने अष्टयाम में किया है। ऋतु के अनुकूल मादक द्रव्य एकत्र करने में कोई चूक नहीं होती थी। वसंत और वर्षा अपने-आप उद्दीपन है। ग्रीष्म में बर्फ, शीतल पाटी, अंगूरी आसव, खस की टाटी, और ऊँचीहीं कुच है , तो शिशिर में गिलमैं, गुनीजन, गलीचा, सेज, सुराही , सुबाला आदि।............. यह सब सामंती शान के आदर्श थे। जीवन-दर्शन के इस सोपान पर कवि अपनी कल्पना के बल पर पहुँच जाता था। इन आदर्शी से गाँव का कोई नाता

नहीं था। इसलिए नागर संस्कृति में बिहारी ने गाँव की हँसी उडा़ने में कोई कसर नहीं की है। सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवन्त चित्रण कहीं नहीं मिलेगा।''

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. रीतिकाल का समय .... ईसवीं के बीच है।
2. रीतिकालीन साहित्य पर......................... ने सबसे पहले वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया।
3. रीतिकाल को श्रृंगार काल .... ने कहा है।
4. चिन्तामणि त्रिपाठी से रीतिकाल का प्रवर्त्तन .... ने माना है।
5. कृपाराम से रीतिकाल का प्रवर्त्तन.................................. ने माना है।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित शब्दों पर 8-10 पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1. रीतिकाल की पृष्ठ भूमि
2. रीतिकालः नामकरण की समस्या
3. रीतिकाल की प्रवृत्ति

7.4 रीतिकालः आलोचनात्क संदर्भ

रीतिकालीन काव्य प्रकृति पर चर्चा करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - '' रीतिकाल में कवि ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण करता है (भक्तिकाल में ईश्वर की नर- लीला का चित्रण है।) यहाँ भक्तिकाल और (रीतिकाल की प्राथमिकता के बीच अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। भक्त तुलसीदास लिखते हैं-

''कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ।''

पर आचार्य भिखारीदास का कहना है-

आगे के सुकबि रीझिहें तों कविताई न तौ,
राधिका - कन्हाई सुमिरन को बहानों है।''

कहने का अर्थ यह है कि दोनों काव्य आन्दोलनों की प्रेरणा भूमि अलग है। आइए अब हम रीतिकालीन कविता को आलोचनात्मक संदर्भों में समझने का प्रयास करें।

7.4.1 दरबारीपन

दरबारीपन स्थिति नहीं प्रवृत्ति है। जब कोई कवि, लेखक आपने आश्रयदाता की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा अपने संकुचित स्वार्थ के लिए करता है, जब कोई कवि/ लेखक सामजिक गतिशीलता से विमुख होकर किसी आधिपत्यकारी ताकतों के हित में लिखता है तो उसे हम दरबारीपन कह सकते हैं। दरबारीपन के लिए जरूरी नहीं कि कवि/ लेखक राज दरबार में बैठकर ही लिखे। हाँलाकि रीतिकालीन कविता राजाश्रय और दरबार में ही लिखी गई है। रीतिकालीन साहित्य की उपयोगिता का मूल्यांकन करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में लिखा गया

है ''यह काव्य समाज को प्रगति प्रदान करने में समर्थ नहीं है। रीतिकाव्य और कुछ प्रबन्धकाव्यों में भी हमें व्यापक जीवन-दर्शन वहीं मिलता, इसमें कोई सन्देह नहीं। .... आश्रयदाता की प्रशंसा में उठी हुई काव्य- स्फूर्ति का सामाजिक तो नहीं परन्तु ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। आश्रयदाता की प्रशंसा कला और काव्य के संरक्षण और आश्रय के कारण भी थी और इसके लिए उनकी उदार भावना सराहनीय है। ये राजाश्रय, जिनमें रीतिकालीन कलाकृतियों का विकास हुआ , कवि- दूर से प्रति-भावों को अपने गुणों और कला-प्रेम के कारण खींच सके। अतः मध्ययुगीन राजाश्रय ने कला, काव्य के संरक्षण और प्रेरणा के लिए महत्तवपूर्ण कार्य किया है, यह हमें मानना पड़ेगा।''

7.4.2 वर्ण्य-संकोचः नकल या मौलिकता

रीतिकालीन कविता के वर्ण्य-संकोच पर प्रायः आलोचकों में आपत्ति की है। 200 वर्षों तक कविता श्रृंगार नायिका -भेद, अलंकरण एवं रीति-निरूपण के इर्द-गिर्द घूमती रही है। इस वर्ण्य-संकोच के कारण जहाँ यह कविता सामजिक गतिशीलता में अपना काम जोड़ने से रह गई, वहीं दूसरी ओर कविता के कुछ सुन्दर चित्र भी इकट्ठे हुए। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- ''संस्कृत का काव्यशास्त्र, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और पुस्तक-परंपरा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य और उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित शास्त्रीय संगीत- इन सबका रचनात्मक संपर्क रीतिकाल में हुआ। तब यह स्वाभाविक था कि इन कवियों के लिए मौलिकता का एक ही क्षेत्र सूक्ष्म परिकल्पना का रह जाए। आश्रयदाता की प्रशंसा तथा श्रृंगार -वर्णन के समय बहुत बार यह परिकल्पना अतिरंजना के आवेश में ऊहा का रूप धारण कर लेती है ।.........पर बहुत जगहों पर यह परिकल्पना आत्मीय अनुभूति में डूब कर अनुपम काव्य- लय की सृष्टि करती है जो रीतिकाव्य की श्रेष्ठतम् उपलब्धि है। पंडितों के अलावा ऐसे छंन्द ग्रामीण अंचलों तक के मध्य-वित्त परिवार में लोगों को कंठस्थ रहे हैं, 'हजारा' जैसे संकलन इसके कारण और प्रमाण है । '' आगे रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि - ''इनकी मौलिकता काव्य- पक्ष में है, आचार्यत्व में नहीं। और हिन्दी कविता के इतिहास के लिए यह अच्छा ही है। क्योंकि यदि आचार्यत्व की मौलिकता होती तो फिर इन्हें हिन्दी आलोचना और काव्यशास्त्र के संदर्भ में देखा- परखा जाता । कविता के संदर्भ में नहीं। "रीतिकालीन कविता -सिद्धान्त की मौलिकता पर टिप्पणी करतेहुए रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक ही दोहै में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म में प्रवृत्ति हो जाते थे। काव्यागां का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन, नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ । "रीतिकालीन आचार्यों ने किसी मौलिक सिद्धान्त की रचना नहीं की लेकिन क्या इनकी कविता का कोई मूल्य नहीं है? इस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य

शुक्ल लिखते हैं- ‘‘इन रीतिग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः श्रृंगाररस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षणों से चुनकर इक्ट्ठा करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।’’

7.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान

रीतिकाल पर आचार्य रामचन्द्र ने सर्वप्रथम वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार किया। शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकाल के समानान्तर भक्तिकालीन साहित्य था, इसलिए वे भक्तिकालीन काव्यात्मक (नैतिकता एवं लोकबद्धता) प्रतिमान के धरातल पर रीतिकाल का मूल्यांकन करते हैं, जिसका परिणाम यह रहा कि वे रीतिकालीन साहित्य को सहानुभूति न दे सके। इसका असर यह हुआ कि रीतिकालीन साहित्य के प्रति वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन का अभाव ही रहा। जैसा कि हिन्दी साहित्य कोश भाग एक में लिखा गया है- ‘‘ रीतिकालीन काव्य के सम्बन्ध में सामान्यतः दो प्रकार के मत हैं- एक उसे नितान्त है य और पतनोन्मुख काव्य कहकर उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जगाता है और दूसरा उस पर अत्यधिक रीझकर केवल उसे ही काव्य मानता है और अन्य रचनाओं, जैसे भक्ति और आधुनिक युग की कृतियों को उत्तम काव्य में परिगणित नहीं करता। वस्तुतः ये दोनों ही दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण है। रीतिकालीन काव्य पर जो दोष लगाये जाते हैं, वे ये हैं- अश्लीलता, समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता, आश्रयदाता की प्रशंसा, विलासप्रियता और रूढ़िवादिता। रीतिकालीन समस्त काव्य को दृष्टि में रखकर जब हम इन दोषों पर विचार करते हैं तो हम कह सकते हैं कि ये समस्त दोष उस युग के काव्य या समस्त रीतिकाव्य पर लागू नहीं किये जा सकते हैं। साथ ही, इन दोषों में से अधिकांश प्रत्येक युग के काव्य में किसी-न-किसी अंश में पाये जाते हैं।’’ (पृष्ठ - 564) पीछे हमने पढ़ा कि रीतिकालीन कविता को दो स्वरूप हैं। एक, सैद्धान्तिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने लक्षण देकर काव्य की सैद्धान्तिक विवेचना की हैं दूसरे, व्यावहारिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने कविताओं की रचना की है। लक्षण-मुक्त कविता ही रीतिकालीन साहित्य का प्राणतत्व है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, ‘‘रीतिकालीन काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि उसकी मूल प्रेरणा ऐहिक है।" (‘हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) डा. नगेन्द्र ने भी काव्यात्मक प्रतिमान के आधार पर रीतिकालीन कविता को महत्तवपूर्ण माना है। श्रृंगारिक चित्रों की सरसता जैसी रीतिकालीन साहित्य में देखने को मिलता है, वैसी अन्य किसी साहित्य में नहीं। एक -दो उदाहरण देखें-

कुन्दन को रँगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारू गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई।।
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों -ज्यों निहारियों नेरे है नैननि त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई।।
फाग की भीर अभीरन तें गहि गोविन्दैं लैगई भीतर गोरी।
भाई करी मन की ‘पद्माकर’ ऊपर नाय अबीर की झोरी।।
छीन पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।

नैन नचाइ, कह्यो मुसक्याइ, लला, फिर आइयो खेलन होरी ।।

7.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ

रीतिकालीन कविता की भाषा प्रधानतः ब्रजभाषा ही रही है। ब्रजभाषा श्रृंगार एवं नीति के सर्वथा अनुकूल पड़ती है। समरसता की दृष्टि से तो रीतिकालीन कविता की प्रशंसा अधिकांश आलोचकों ने की है, लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से यह कविता हमें बहुत संतुष्ट नहीं कर पाती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा हैः '' रीतिकाल में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युतसंस्कृति दोष का निराकरण होता जो ब्रजभाषा काव्य में थोडा़ बहुत सर्वत्र पाया जाता है। और नहीं तो वाक्य दोषों का पूर्ण रूप से निरूपण होता जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 169) शुक्ल जी ने भाषा अव्यवस्था का कारण ब्रज और अवधी इन दोनों काव्यभाषाओं का कवि इच्छानुसार सम्मिश्रण भी था। इस सम्बन्ध में बच्चन सिंह ने टिप्पणी की हैः ''पर रीतिकाल में हिन्दी का भौगौलिक क्षेत्र पहले से व्यापक हो गया। .... अतः उनकी बोलियों में स्थानीय बोलियों का भी सन्निवेश हो गया। इससे ब्रजभाषा और भी समृद्ध हुई। '' (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ 186) यानी शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकालीन भाषा में व्याकरणिक दोष है वहीं बच्चन सिंह ने भाषाई विस्तार को रीतिकालीन कविता का गुण कहा है। इन सबसे अलग रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन भाषा की तुलना भक्ति काल की भाषा से की है। एक ओर भक्ति कवि भाखा (लोकभाषा) में रचना करने पर गर्व करते हैं **(भाखाबद्ध करवि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई - तुलसी)** तो दूसरी ओर केशवदास भाखा में रचना करने के कारण लज्जित है। रामस्वरूप चतुर्वेदी की इस संदर्भ में टिप्पणी है ''रीतिकालीन काव्य भाषा का सामान्य रूप क्रमशः अधिकाधिक स्थिर और शास्त्रीय होता गया। रीतिकालीन भाषा के क्रमशः जड़ होने के पीछे एक कारण यह भी था कि जहाँ अन्य युगों में काव्यभाषा के कई आधार कवियों को विकल्प रूप में सुलभ थे- खडी़ बोली - ब्रजभाषा - अवधी-वहाँ रीतिकाल में आकर काव्यभाषा का एक ही आधार प्रतिष्ठित हो गया- ब्रजभाषा। स्वभावतः कबीर और सूर के समय से लेकर भिखारीदास तक ब्रजभाषा के पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया कितनी बार संभव हो सकती थी?'' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 57)

अभ्यास प्रश्न 3

सत्य/असत्य बताइए -

1. रीतिकालीन कविता राजाश्रय में लिखी गई है।
2. रीतिकालीन को अलंकृत काल मिश्रबधुओं ने कहा है।
3. लक्षण ग्रन्थों का सम्यक समावेश हिन्दी कविता में आचार्य केशव ने किया है।
4. कृपाराम की 'हिततरंगिणी' रीतिकाल की पहली रचना मानी जाती है।
5. रीतिकाला की कविता का समय मुगल काल का समय है।

7.6 रीतिकालः मूल्यांकन

आपने अध्ययन किया कि रीतिकालीन कविता का लक्ष्य सामजिक जागरण करना या समाज को गतिशील करना नहीं था, बल्कि इसका लक्ष्य सामंतों का मनोरंजन करना या राजकुमार/राजकुमारियों को शिक्षा देना था या जीवकोपार्जन करना । इस दृष्टि से नैतिकता की तुला पर कोई चाहे तो इस काव्य को खा़रिज कर सकता है, जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। लेकिन यह देखने पर यह काव्य उतना है य नहीं है, बल्कि कहीं-कहीं यह हमारी मदद भी करता है। डा. बच्चन सिंह ने रीतिकाल का मूल्यांकन करते हुए लिखा हैः ‘‘ मुगल शैली के मिनिएचर चित्रों की भाँति रीतिकालीन काव्यों- विशेषतः श्रृंगारिक काव्यों की बिंब चेतना अनेक मुद्राओं में अभिव्यक्त हुई है। मुद्राओं का इतना वैविध्य भक्तिकालीन काव्य में नहीं मिलेगा। "रीतिकाल का समय मोटे तौर पर भारतीय इतिहास में मुगलकाल का समय है। हम जानते हैं कि मुगलकाल में चित्रकला, वास्तुकला एवं संगीत का प्रचुर विकास हुआ था। रीतिकाल के काव्यों में मूर्तिमता, चित्र , बिंब, ध्वनि इल्यादि पर मुलकालीन ललित कलाओं का पर्याप्त प्रभाव है। सामंती जीवन के चित्र उकेरने की दृष्टि से रीतिकाल जैसे परिचायक मिलना कठिन है। डा. बच्चन सिंह ने लिखा है कि सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवंत चित्रण कहीं नहीं मिलेगा। इस प्रकार का मन्तव्य इतिहासकार हरिशचन्द्र वर्मा ने व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि मुगलकाल की सभ्यता - संस्कृति को समझने के लिए रीतिकालीन साहित्य से अच्छा परिचायक दूसरा कोई नहीं है। रीतिकालीन काव्य के मूल्यांकन के प्रश्न पर विचार करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है ‘‘ रीतिकालीन काव्य का आकर्षण समाज में क्यों बना रहा? इस प्रश्न से आलोचक और इतिहासकार बार-बार उलझते हैं और घूम फिरकर एक ही सामधान उभरता है इस काव्य की श्रृंगारिकता को गाढ़े रेखांकित करके। ....एक सामान्यतः धर्म-भीरू समाज को काव्यास्वाद की यह बहुत बड़ी सहूलियत मिल गई। रीतिकालीन श्रृंगार-चित्रण की यह अपने में विशिष्टता है। ....आकर्षण का एक दूसरा कारण यह है कि रीतिकालीन काव्य भले राजाश्रय में लिखा गया हो, ये ग्रन्थ आश्रयदाताओं को समर्पित हों या उनका नामकरण इन कृपालु शासकों के नाम पर हुआ है और वे उनकी साहित्य-शिक्षा के लिए रचे गए हों, पर इन मुक्तकों में अंकित जीवन प्रायः शत्-प्रतिशत् सामान्य ग्रहस्थ घरों का है। ये नायक- नायिकाएँ राजा-रानियाँ-राजकुमारियाँ नहीं है, वरन् साधारण गोप- गोपियाँ या खाते-पीते घरों की युवतियाँ हैं, जिन्हें उस युग का मध्य वर्ग कहा जा सकता है। ’’ (हिन्दी साहित्य संवेदना का विकास, पृष्ठ - 58)

7.7 सारांश

मध्यकालीन कविता की ‘रीतिकालः परिचय एवं आलोचना’ शीर्षक यह 11 वीं इकाई है। इस इकाई के माध्यम से अब तक आप रीतिकालीन कविता के स्वरूप एवं प्रवृत्ति से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि-

- हिन्दी साहित्य का ‘उत्तर रमध्यकाल’ (1650- 1850 ई.) रीतिकाल कहलाता है।

- इस काल की कविता का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। काव्य-रचना की प्रणाली के रूप में रीति को ग्रहण किया गया है। कवि अपनी कविता में पहले काव्य के लक्षण लिखता था और फिर उसको स्पष्ट करने के लिए उदाहरण की रचना करता था। लक्षण-उदाहरण की यह विशिष्ट पद्धति ही 'रीति' है। और इसी कारण इस काव्य धारा को 'रीतिकाल' कहा गया है।
- रीतिकाल के विकास में कई तत्वों का योगदान है। संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और मुक्तक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य, उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित संगीत, तत्कालीन राजनीतिक वातावरण, जिसमें हिन्दु राजा युद्ध से अलग होकर उपभोग की ओर मुड़े, भक्तिकाल के भक्ति-आस्था की श्रृंगार में प्रतिक्रिया इत्यादि तत्वों का प्रभाव एवं प्रेरणा रीतिकालीन कविता पर देखा जा सकता है।
- रीतिकालीन कविता राजदरबार में लिखा गया है। अतः इसका उद्देश्य राजाओं की रूचि से जुड़ा रहा है। श्रृंगारिक चित्र, अलंकरण की वृत्ति, दरबारीपन एवं रीति-निरूपण रीतिकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।
- रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन भेद किए गये हैं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त
- रीतिकालीन साहित्य नैतिकता की दृष्टि से या मानवीय मूल्यों के औदात्य की दृष्टि से हमें भले ही सन्तुष्ट न कर पाये, लेकिन मुगलकालीन सामंती क्रियाकलापों का यह प्रामाणिक दस्तावेज है।

7.8 शब्दावली

रीतिबद्ध	-	काव्य रचना की बँधी हुई परिपाटी पर काव्य रचना करना।
दरबारीपन	-	सामंत/ राजा को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया काव्य।
अखण्ड	-	बिना अवरोध के चलने वाली प्रवृत्तियाँ
प्रशस्ति	-	किसी की प्रशंसा बढ़ा-चढ़ा करना।
पुनर्जागरण	-	नवीन चेतना का उदय
रूपान्तरण	-	स्वरूप बदलने की प्रक्रिया।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. 1650- 1850 ई. 2. रामचन्द्र शुक्ल 3. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
4. रामचन्द्र शुक्ल 5. भगीरथ मिश्र

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम- (सं) ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी।

7.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डा. नगेन्द्र, मयूर पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. रीतिकाल की भूमिका - डा. नगेन्द्र

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रीतिकालीन कविता के नामकरण की समस्या पर विस्तार से विचार कीजिए?
2. रीतिकालीन कविता का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 8.प्रिय प्रवास - पाठ एवं विवेचन (प्रथम सर्ग)

इकाई की रुपरेखा

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 हरिऔध- जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व
    8.2.1 जीवन परिचय
    8.2.2 व्यक्तित्व
    8.2.3 कृतित्व
8.3 हरिऔध- काव्यकला
    8.3.1 भावपक्ष
    8.3.2 कलापक्ष
8.4 प्रियप्रवास- कथावस्तु
8.5 प्रियप्रवास- पाठ एवं व्याख्या
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी युग के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। आधुनिक खड़ी बोली को साहित्यिक रूप प्रदान करने वाले कवियों में हरिऔध जी का विशिष्ट स्थान है। हरिऔध जी ने अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ ब्रजभाषा में भी लिखी हैं। उनकी खड़ी बोली की संस्कृतनिष्ठ शब्दावली अत्यधिक प्रभावपूर्ण है। हरिऔध जी ने प्रकृति का जो इतिवृतात्मक स्थूल चित्रण किया है वह द्विवेदी युगीन काव्य में अद्वितीय है। प्रकृति के मनोरम चित्रों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं का आधुनिक युग के अनुरूप निरूपण करने में कविवर हरिऔध को पूर्ण सफलता मिली है। उन्होंने राधा कृष्ण के उत्कृष्ट चारित्रिक गुणों को बड़ी ही कुशलता से निरूपित किया है। उनकी राधा केवल कृष्ण की आदर्श प्रेमिका ही नहीं अपितु सम्पूर्ण लोक-कल्याण की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। कृष्ण के लोक रंजनकारी रूप की अपेक्षा उन्होंने उनके लोक कल्याणकारी आदर्श स्वरूप को अधिक महत्व दिया है। उनके प्रियप्रवास में कृष्ण के लोक-कल्याणकारी स्वरूप को लोक-रक्षक एवं आदर्श मानव नेता के रूप में अभिव्यंजित किया गया है। प्रियप्रवास के कृष्ण अवतारी पुरूष न होकर एक आदर्श लोक रक्षक एवम् लोक हितकारी महापुरूष के रूप में सामने आये हैं। प्रियप्रवास आधुनिक खड़ी बोली का पहला महाकाव्य ही नहीं अपितु कृष्ण काव्य परम्परा का एक आदर्श ग्रन्थ भी है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
2. जीवन परिवेश व साहित्यिक पृष्ठभूमि रचनाकर्म को प्रभावित करती है, हरिऔध जी के काव्य के अध्ययन से इस तथ्य को समझ सकेंगे।
3. हरिऔध कृत प्रियप्रवास के कथानक की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. प्रियप्रवास के महत्वपूर्ण सर्गों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।
5. हरिऔध जी के काव्य की संवेदनागत और शिल्पगत चेतना का अध्ययन कर सकेंगे।
6. हरिऔध जी के स्थान और उनके योगदान को समझ सकेंगे।

8.3 हरिऔध- जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

8.3.1 जीवन परिचय

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' **(15 अप्रैल, 1865-16 मार्च, 1947)** हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार है। यह हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति रह चुके हैं और सम्मेलन द्वारा विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किये जा चुके हैं। प्रिय प्रवास हरिऔध जी का सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह हिंदी खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है और इसे मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ जिले के निजामाबाद नामक स्थान में हुआ। उनके पिता का नाम पंडित भोलानाथ उपाध्याय था। उन्होंने सिख धर्म अपना कर अपना नाम भोला सिंह रख लिया था, वैसे उनके पूर्वज सनाढ्य ब्राह्मण थे।

इनके पूर्वजों का मुग़ल दरबार में बड़ा सम्मान था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा निजामाबाद एवं आजमगढ़ में हुई। पांच वर्ष की अवस्था में इनके चाचा ने इन्हें फ़ारसी पढ़ाना शुरू कर दिया था। हरिऔध जी निजामाबाद से मिडिल परीक्षा पास करने के पश्चात काशी के क्वीन्स कॉलेज में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए गए, किंतु स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण उन्हें कॉलेज छोड़ना पड़ा। उन्होंने घर पर ही रह कर संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी और अंग्रेजी आदि का अध्ययन किया और १८८४ में निजामाबाद के मिडिल स्कूल में अध्यापक हो गए। इसी पद पर कार्य करते हुए उन्होंने नार्मल-परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इनका विवाह आनंद कुमारी के साथ संपन्न हुआ।

सन १८८९ में हरिऔध जी को सरकारी नौकरी मिल गई। वे कानूनगो हो गए। इस पद से सन १९३२ में अवकाश ग्रहण करने के बाद हरिऔध जी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अवैतनिक शिक्षक के रूप से कई वर्षों तक अध्यापन कार्य किया। सन १९४१ तक वे इसी पद पर कार्य करते रहे। उसके बाद यह निजामाबाद वापस चले आए। इस अध्यापन कार्य से मुक्त होने के बाद हरिऔध जी अपने गाँव में रह कर ही साहित्य-सेवा कार्य करते रहे। अपनी साहित्य-सेवा के कारण हरिऔध जी ने काफी ख़्याति अर्जित की। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें एक बार सम्मेलन का सभापति बनाया और विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किया। सन १९४५ ई० में निजामाबाद में आपका देहावसान हो गया।

हरिऔध जी ने ठेठ हिंदी का ठाठ, अधखिला फूल, हिंदी भाषा और साहित्य का विकास आदि ग्रंथ-ग्रंथों की भी रचना की, किंतु मूलतः वे कवि ही थे उनके उल्लेखनीय ग्रंथों में शामिल हैं: -

1. प्रिय प्रवास
2. वैदेही वनवास
3. पारिजात
4. रस-कलश
5. चुभते चौपदे
6. चौखे चौपदे
7. ठेठ हिंदी का ठाठ
8. अध खिला फूल
9. रुक्मिणी परिणय
10. हिंदी भाषा और साहित्य का विकास
11. प्रिय प्रवास, हरिऔध जी का सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह हिंदी खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इस रचना पर इन्हें मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

काव्यगत विशेषताएँ

वर्ण्य विषय - हरिऔध जी ने विविध विषयों पर काव्य रचना की है। यह उनकी विशेषता है कि उन्होंने कृष्ण-राधा, राम-सीता से संबंधित विषयों के साथ-साथ आधुनिक समस्याओं को भी लिया है और उन पर नवीन ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। प्राचीन और आधुनिक भावों के मिश्रण से उनके काव्य में एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

वियोग तथा वात्सल्य-वर्णन- प्रिय प्रवास में कृष्ण के मथुरा गमन तथा उसके बाद ब्रज की दशा का मार्मिक वर्णन है। कृष्ण के वियोग में सारा ब्रज दुखी है। राधा की स्थिति तो अकथनीय है। नंद यशोदा आदि बड़े व्याकुल हैं। पुत्र-वियोग में व्यथित यशोदा का करुण चित्र हरिऔध ने खींचा है, यह पाठक के ह्रदय को द्रवीभूत कर देता है- प्रिय प्रति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है? दुःख जल निधि डूबी का सहारा कहाँ है? लख मुख जिसका मैं आजलौं जी सकी हूँ। वह ह्रदय हमारा नैन तारा कहाँ है?

लोक-सेवा की भावना- हरिऔध जी ने कृष्ण को ईश्वर रूप में न दिखा कर आदर्श मानव और लोक-सेवक के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने स्वयं कृष्ण के मुख से कहलवाया है- विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का, सहाय होना असहाय जीव का। उबारना संकट से स्वजाति का, मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है। कृष्ण के अनुरूप ही राधा का चरित्र है वे दोनों की भगिनी अनाश्रितों की माँ और विश्व की प्रेमिका हैं। अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग का दुख सह कर भी वे लोक-हित की कामना करती हैं- प्यारे जीवें जग-हित करें, गेह चाहे न आवें।

प्रकृति-चित्रण - हरिऔध जी का प्रकृति चित्रण सराहनीय है। अपने काव्य में उन्हें जहाँ भी अवसर मिला है, उन्होंने प्रकृति का चित्रण किया है। और उसे विविध रूपों में अपनाया है। हरिऔध जी का प्रकृति-चित्रण सजीव और परिस्थितियों के अनुकूल है। संबंधित प्राणियों के सुख में प्रकृति सुखी और दुःख में दुखी दिखाई देती है। कृष्ण के वियोग में ब्रज के वृक्ष भी रोते हैं- फूलों-पत्तों सकल पर हैं वादि-बूँदें लखातीं, रोते हैं या विपट सब यों आँसुओं की दिखा के। जहाँ हरिऔध जी ने वृक्षों आदि को गिनाने का प्रयत्न किया है, वहाँ उनका प्रकृति-वर्णन कुछ नीरस क्षौर परंपरागत-सा लगता है, किंतु ऐसा बहुत कम हुआ है। अधिकतर उनका प्रकृति चित्रण सरल और स्वाभाविक और ह्रदयग्राही है। संध्या का एक सुंदर दृश्य देखिए- दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला। तरु शिखा पर थी जब राजती, कमलिनी-कुल-वल्लभ का प्रभा।

काव्य भाषा - हरिऔध जी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में ही कविता की है, किंतु उनकी अधिकांश रचनाएँ खड़ी बोली में ही हैं। हरिऔध की भाषा प्रौढ़, प्रांजल और आकर्षक है। कहीं-कहीं उसमें उर्दू-फारसी के भी शब्द आ गए हैं। नवीन और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का तो इतनी अधिकता है कि कहीं-कहीं उनकी कविता हिंदी की न होकर संस्कृत की सी ही प्रतीत होने लगती है। राधा का रूप-वर्णन करते समय देखिए- रूपोद्याम प्रफुल्ल प्रायः कलिका राकेंदु-बिंबानना, तन्वंगी कल-हासिनी सुरसि का क्रीड़ा-कला पुत्तली। शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्य लीलामयी, श्री राधा-मृदु भाषिणा मृगदगी-माधुर्य की मूर्ति थी। भाषा पर हरिऔध जी का अद्भुत अधिकार प्राप्त था। एक

ओर जहाँ उन्होंने संस्कृत-गर्भित उच्च साहित्यिक भाषा में कविता लिखी वहाँ दूसरी ओर उन्होंने सरल तथा मुहावरेदार व्यावहारिक भाषा को भी सफलतापूर्वक अपनाया। उनके चौपदों की भाषा इसी प्रकार की है। एक उदाहरण लीजिए- नहीं मिलते आँखों वाले,पड़ा अंधेरे से है पाला। कलेजा किसने कब थामा, देख छिलते दिल का छाला।।

शैली - हरिऔध जी ने विविध शैलियों को ग्रहण किया है। मुख्य रूप से उनके काव्य में निम्नलिखित शैलियाँ पाई जाती हैं- १. संस्कृत-काव्य शैली- प्रिय प्रवास में। २. रीतिकालीन अलंकरण शैली- इस कलश में। ३. आधुनिक युग की सरल हिंदी शैली- वैदेही-वनवास में। ४. उर्दू की मुहावरेदार शैली- चुभते चौपदों और चोखे चौपदों में।

रस-छंद-अलंकार - हरिऔध जी के काव्य में प्रायः संपूर्ण रस पाए जाते हैं, रुणा वियोग, शृंगार और वात्सल्य रस की पूर्णरूप से व्यंजना। हरिऔध जी की छंद-योजना में पर्याप्त विविधता मिलती है। आरंभ में उन्होंने हिंदी के प्राचीन छंद कवित्त सबैया, छप्पय, दोहा आदि तथा उर्दू के छंदों का प्रयोग किया। बाद में उन्होंने इंद्रवज्रा, शिखरिणी, मालिनी वसंत तिलका, शार्दूल, विक्रीड़ित मंदाक्रांता आदि संस्कृत के छंदों को भी अपनाया।

अलंकार - रीतिकालीन प्रभाव के कारण हरिऔध जी अलंकार प्रिय है, किंतु उनकी कविता-कामिनी अलंकारों से बोझिल नहीं है। उनकी कविता में जो भी अलंकार हैं, वे सहज रूप में आ गए हैं और रस की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुए हैं। हरिऔध जी ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही को सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। अनुप्रास, यमक, उपमा उत्प्रेक्षा, रूपक उनके प्रिय अलंकार हैं।

मूल्यांकन - हरिऔध जी ने गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में हिंदी की सेवा की। वे द्विवेदी युग के प्रमुख कवि है। उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली में काव्य-रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि उसमें भी ब्रजभाषा के समान खड़ी बोली की कविता में भी सरसता और मधुरता आ सकती है। हरिऔध जी में एक श्रेष्ठ कवि के समस्त गुण विद्यमान थे। 'उनका प्रिय प्रवास' महाकाव्य अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण हिंदी महाकाव्यों में 'माइल-स्टोन' माना जाता है। श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के शब्दों में हरिऔध जी का महत्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है- 'इनकी यह एक सबसे बड़ी विशेषता है कि ये हिंदी के सार्वभौम कवि हैं। खड़ी बोली, उर्दू के मुहावरे, ब्रजभाषा, कठिन-सरल सब प्रकार की कविता की रचना कर सकते हैं।

8.3.2 व्यक्तित्व

हरिऔध जी बड़ी ही सरल प्रकृति के सहृदय व्यक्ति थे। उनकी स्वाभिमान की भावना तो बड़ी प्रखर थी। किन्तु वे अभिमानी नहीं थे। सरकारी सेवा में तो वे सदर कानूनगो के पद पर नियुक्त थे, जिसकी उस जमाने में पर्याप्त महत्ता थी, लेकिन इतने उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद भी उनमें अहं भावना नहीं आई थी। उनका स्वभाव गम्भीर और सौम्य था चंचल नहीं और न कृत्रिम। गम्भीर प्रकृति के होने के कारण वे एकान्त जीवन व्यतीत करना अधिक पसन्द करते थे।

हरिऔध जी अतिथि सत्कार के प्रति विशेष जागरूक रहते थे और यदा कदा तो उनकी इस सजगता से अतिथि भी परेशान हो उठते थे।हरिऔध के व्यक्तित्व में आदर्शवादिता कूट-कूटकर भरी हुई थी। वे भजन-पूजन को विशेष महत्व नहीं देते थे। किन्तु सनातन धर्म में विशेष श्रद्धा रखते थे।हरिऔध जी स्वभाव से भीरू थे। उनको भीरू बनाने में उनकी माता का पर्याप्त योग रहा। उनकी माता के हृदय में सदैव यह भाव रहा कि मेरे लाल को कोई कष्ट न हो। इससे हरिऔध लाड़ प्यार में पलते रहै । विषाद और कष्टों से हरिऔध को सदैव दूर रखा। उनके व्यक्तित्व के संदर्भ में 'हरिऔध अभिनन्दन ग्रंथ' की निम्नांकित टिप्पणी अवलोकनीय है- "आपके छोटे भाई पंडित गुरूसेवक सिंह तो वंश परम्परा का परित्याग करके सिक्खों की वेष-भूषा छोड़ बैठे थे और पूर्णतया पाश्चात्य सभ्यता में रँग गये थे(वे डिप्टी कलक्टर थे), परन्तु हरिऔध जी अंत तक अपनी परम्परा का पालन करते रहै । आप लम्बे केश तथा दाढ़ी रखते थे । आपकी मुखाकृति अत्यन्त आकर्षक थी । आपका शरीर दुबला-पतला और रंग गेंहुआ था । वैसे मुख पर सदैव तेज विद्यमान रहता था, परन्तु कुछ दिनों तक अर्श से पीड़ित रहने के बाद अन्तिम दिनों में आपके चेहरे पर चिन्ता की क्षीण रेखाएं विद्यमान हो गयी थी । अब घर पर प्रायः कमीज, बास्केट तथा पाजामा पहनते थे । परन्तु अन्य सार्वजनिक स्थानों पर जाते समय श्वेत पगड़ी, शेरवानी, पाजामा, अंग्रेजी जूते तथा मोजे धारण किया करते थे। गले में दुपट्टा भी डालते थे। वैसे खद्दर पहनने के विशेष शौकीन नहीं थे ।

9.2.3 कृतित्व

हरिऔध जी सरस्वती के वरद-पुत्र थे। अतः उन्होंने उनके भंडार की बहुमुखी श्रीवृद्धि की है। उन्होंने कव्य क्षेत्र ही नहीं, गद्य क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा अच्छा प्रदर्शन किया है। उनकी कृतियों के नाम निम्नलिखित है-

(क)	रूपक	1. प्रधुम्नविजय व्यायोग, 2. रूक्मिणी परिणय	
(ख)	महाकाव्य	1. प्रियप्रवास, 2. वैदेही वनवास	
(ग)	उपन्यास	1. ठेठ हिन्दी का ठाठ, 2. अधखिला फूल	
(घ)	आलोचनात्मक कृतियॉ	1. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास	
		2. कबीर वचनावली की आलोचना	
		3. साहित्य संदर्भ	
		4. विविध ग्रंथों की भूमिकाएँ	
(ड़)	स्फुट काव्य संग्रह	1. चुभते चौपदे 2. चोखे चौपदे	
		3. बोलचाल	4. रस कलश
		5. पद्य प्रसून	6. काव्योपवन
		7. कल्पलता	8. पारिजात
		9. प्रेम प्रंपच	10. ऋतु मुकुर
		11. प्रेमाम्बु प्रवाह	12. प्रेमाम्बु प्रस्रवण
		13. प्रेम पुष्पोपहार	14. प्रेमाम्बु वारिधि

उपर्युक्त मौलिक कृतियों के साथ-साथ उनकी गद्यात्मक एवं पद्यात्मक दोनों ही प्रकार की अनुदित रचनाएँ भी हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं-

पद्यात्मक अनुदित रचनाएँ- 1. उपदेश कुसुम तीन भाग
(गुलिस्ताँ के आठवें अध्याय का अनुवाद)
2. विनोद वाटिका(गुलजार दविस्तां का अनुवाद)

गद्यात्मक अनुदित रचनाएँ- 1. वेनिस का बाँका
2. नीति निबन्ध
3. उपदेश कुसुम
4. विनोद-वाटिका

8.4 हरिऔध- काव्यकला

8.4.1 भावपक्ष

आधुनिक हिन्दी साहित्य को प्रतिष्ठित एवं समृद्ध करने में अयोध्या सिंह उपाध्याय जी का अपूरणीय योगदान है। हिन्दी खड़ी बोली को जिन कवियों ने साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया उनमें हरिऔध जी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। भाषा भाव एवं कला इन तीनों दृष्टियों से इनकी काव्यकला उल्लेखनीय है। इनका काव्य प्रियप्रवास आधुनिक हिन्दी खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य है।

1. प्रकृति चित्रण- हरिऔध जी का प्रकृति चित्रण अत्यधिक आकर्षक एवं भव्य है। इन्होंने प्रकृति के स्थूल स्वरूप की बड़ी भावपूर्ण विवेचना की है। प्रियप्रवास में सान्ध्यकालीन प्रकृति का चित्रण करते हुए कविवर हरिऔध लिखते है-

"दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरू शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा"

उन्होंने प्रत्येक सर्ग के प्रारम्भ में प्रकृति का भावुक निरूपण किया है। प्रातःकालीन प्रकृति का भी बड़ा रसपूर्ण चित्रण उनके काव्य में परिलक्षित होता है। आलम्बन, उद्दीपन, दूती, उपदेशात्मक एवं मानवीकरण आदि अनेक रूपों में उन्होंने प्रकृति चित्रण किया है।

2. रस निरूपण- प्रियप्रवास का प्रधान रस वियोग श्रृंगार है। किन्तु उसमें अन्य रसों की भावपूर्ण योजना प्रस्तुत हुई है। वीर, करूण, इत्यादि रसों का समायोजन प्रियप्रवास में दिखाई देता है। प्रियप्रवास प्रमुखतः प्रेम के वियोग पक्ष का करूण निर्दशन है। प्रियप्रवास का श्रृंगार 'प्रवास विप्रलम्भ' की श्रेणी में आता है।

3. नारी भावना- प्रियप्रवास वास्तव में भारतीय नारी की व्यापक करूण भावनाओं का निरूपण है। प्रियप्रवास की राधा एक आदर्श नायिका है जो अपने प्रियतम की भावनाओं को सर्वोपरि स्थान देती है। उसके मन में प्रियतम से मिलने की अपेक्षा लोक-कल्याण की भावनाएँ अधिक है, वे कहती है।

"प्यारे जीवें लोक हित करें
गेह चाहै ना आवें।

आधुनिक काल में जिस राधा के दर्शन होते है वह द्विवेदी युगीन नैतिकता लोक हित और सुधारवाद से प्रभावित है। हरिऔध की राधा पूर्ववर्ती कवियों की राधा से सर्वथा अलग है। प्रियप्रवास की चित्रपटी पर राधा का चरित्र कुछ अनूठे ढंग से चित्रित किया गया। हरिऔध की नारी लोक सेविका एवं भारत भूमि की अनुपम नारी के रूप में परिलक्षित हुई है। उस नारी में दीन-दुखियों के प्रति दया, करूणा कूट-कूट कर भरी हुई है।

4. समन्वय एवं आधुनिकतावादी दृष्टिकोण- कविवर हरिऔध के महाकाव्य प्रियप्रवास के कृष्ण अवतारी कृष्ण न होकर मानव जाति के उद्धारक पुरूष कृष्ण के रूप में चित्रित हुए हैं। तत्कालीन राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर नवयुवकों को प्रेरित करने के लिए हरिऔध जी ने लोकसंग्रह का भाव अधिक ग्रहण किया है। उनके काव्य में श्रीकृष्ण को ब्रज के रक्षक नेता के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रियप्रवास के कृष्ण जहाँ एक ओर सहृदय प्रेमी हैं वहाँ दूसरी ओर मानवता, सामाजिक मर्यादा के महान संरक्षक भी है। श्रीकृष्ण का ब्रजभूमि में जो कीर्तिमान होता है उसका मूल कारण उसके उत्कृष्ट गुण और सर्वभूत हित की भावना ही है। लोक-सेवा और लोक कल्याण का भाव ही हरिऔध के काव्य का मूल उद्देश्य एवं केन्द्र बिन्दु है।

“भू में सदा यदपि है जन मान पाला
राज्याधिकार अथवा धन द्रव्य द्वारा
होता परन्तु वह पूजित विश्व में है
निस्वार्थ भूत हित और कर लोक सेवा“

9.3.2 कला पक्ष

हरिऔध जी की कविता के कला पक्ष का विवेचन निम्न शीर्षकों के आधार पर प्रस्तुत है।

1. **भाषा**- कवि या रचियता के कथ्य को पाठकों तक सम्प्रेषित करने का एकमात्र माध्यम
2. उपयुक्त भाषा ही होती है। हरिऔध जी ने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों भाषाओं में कविता रचना की है। ब्रजभाषा में लिखी हुई उनकी कविताओं का विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि ब्रजभाषा का युग समाप्त हो रहा था और कविता में खड़ीबोली की स्थापना का आन्दोलन चलाया जा रहा था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी खड़ीबोली के पक्षधर थे। उन्होंने केवल देशभक्ति एवं अंग्रेजी शासन की आलोचना करने वाली कविताएँ खड़ीबोली में लिखी। भक्ति सम्बन्धी कविताएँ ब्रजभाषा में लिखकर भारतेन्दु ने यह सिद्ध किया था कि खड़ीबोली में कोमल भावों वाली कविताएँ नहीं लिखी जा सकती। हरिऔध ने अपने ‘प्रियप्रवास’ व ‘वैदेही-वनवास’ महाकाव्यों की रचना खड़ीबोली में करके यह सिद्ध कर दिया कि खड़ीबोली में सभी प्रकार के भावों का प्रकाशन हो सकता है। हरिऔध जी कविता में प्रयुक्त खड़ीबोली प्रायः सरल और लोक प्रचलित है। उसमें कहीं-कहीं संस्कृत के तत्सम शब्द आ गये है, जैसे-

“उछलते शिशु थे अति हर्ष से
युवक थे रस की निधि लूटते
जरठ को फल लोचन का मिला
निरखके सुषमा सुखमूल की।

हरिऔध जी की भाषा कहीं-कहीं संस्कृत शब्दों की अधिकता के कारण समझने में कठिन भी हो गयी है। जैसे-

“रूपोद्यान प्रफुल्य प्राय कलिका राकेन्द्र बिम्बानना, तन्वंगी कलहसिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुतली।“ आदि।

हरिऔध जी का भाषा पर असाधारण अधिकार था, उन्होंने ‘चुभते चौपदे’ और ‘चोखे चौपदे’ कविता संग्रहों में मुहावरेदार और सरल लोकप्रचलित भाषा का प्रयोग किया है।

2. छन्द- हरिऔध जी ने परम्परागत हिन्दी छन्दों एवं संस्कृत के मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों में कविता रची है। संस्कृत के वर्णिक छन्दों में लिखना बहुत कठिन काम है। मात्रिक छंदों में तो छन्द के पूरे चरण में मात्राएँ गिनी जाती है। पर संस्कृत वर्णिक छन्दों में वर्णों अर्थात् अक्षरों की संख्या निश्चित होने के साथ ही यह भी निश्चित होता है कि कौन से अंक के शब्द दीर्घ और कौन से लघु होंगे। दुरतविलम्बित छन्द का एक उदाहरण प्रस्तुत है। इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते है। उनका क्रम लघु, लघु, लघु, दीर्घ, लघु, लघु, लघु, लघु, लघु, दीर्घ, लघु, दीर्घ होता है, जैसे-

“दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरू शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी कुलवल्लभ की प्रभा”।

हरिऔध जी द्वारा ‘प्रियप्रवास’ की भाषा और छन्दों के प्रयोग के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- “खड़ीबोली में इतना बड़ा काव्य अभी तक नहीं निकला है। बड़ी भारी विशेषता इस काव्य की यह है कि सारा संस्कृत के वर्णवृतों में है, जिसमें अधिक परिणाम में रचना करना कठिन काम है।“इस महाकाव्य में कुल मिलाकर 1569 पद्य है जो कि मन्दाक्रान्ता, दुरतविलम्बित, वंशस्थ, मालिनी, शिखरिणी, बसन्त तिलका और शार्दूल-विक्रीहित नामक सात छन्दों में लिखे गये है। प्रियप्रवास के छन्दों में न गति और पति सम्बन्धी दोष है और न भाषा का भदेसपन, उनके छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े छन्दो में लय एवं प्रवाह का प्रचुर सौष्ठव दर्शनीय है।

3. अंलकार- काव्य क्षेत्र में अलंकारों की महत्ता की उद्घोषक आचार्य केशव जी निम्नांकित उक्ति अवलोकनीय है

**“जदपि सुजाति सुलक्षणी सुवरन सदृश सुवृत।
भूषण बिना न राजई कविता वनिता मित।“**

अर्थात् उत्तम वृत्त(छन्द) वर्णों(शब्द चयन) और लक्षणों से युक्त होते हुए अलंकार विहीन कविता निराभरणा कामिनी के सदृश शोभायमान नहीं प्रतीत होती ।

हरिऔध जी ने अपनी कविता में अलंकारों का प्रयोग किया है पर उन्हें कविता में बोझ नहीं बनने दिया। अलंकारों में भी हरिऔध जी ने प्रचलित अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का ही प्रयोग किया है। कुछ अलंकारों का उदाहरण दृष्टव्य है-

अनुप्रास- **“तरणि बिम्ब तिरोहित हो चला
गगन मंडल मध्य शनैः शनैः**

ध्वनिमयी करके गिरी कंदरा
कलित कानन केलि निकुंज को।

उपमा- **"कुकुभु शोभित गोरज बीच से**
निकलते ब्रजबल्लभ यौ लसे"

श्लेष- **"विपुल धन अनेकों रत्न हो साथ लाए**
प्रियतम बतला दो मेरा लाल कहाँ है।

उत्प्रेक्षा- **"सारा नीला सलिल सरि का शोक-छाया-पगा सा**
कंजों में से मधुप कढ़के घूमते थे भ्रमे से
मानो खोटी विरह घटिका सामने देख के ही
कोई भी थी अवनतमुखी कान्ति-हीना मलीना।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि हरिऔध जी की कविता का कला पक्ष भी मोहक है। भाव पक्ष और कला पक्ष की सुन्दरता और सफलता ने हरिऔध जी को श्रेष्ठ बना दिया है।

8.5 प्रियप्रवास संक्षिप्त कथावस्तु

प्रथम सर्ग का आरम्भ सांध्य-वेला में श्रीकृष्ण के ग्वाल-बालों के साथ वन से गाय चराकर लौटने के वर्णन से किया गया है। इसमें कवि ने दिखाया है कि ब्रज के आबाल वृद्ध नर-नारी कृष्ण की मुरली की मधुर ध्वनि सुनने के लिए किस प्रकार उत्कंठित रहते थे और उसकी ध्वनि के कानों में पड़ते ही अपने-अपने कार्यों को छोड़कर कृष्ण के समीप जा पहुँचते थे। धीरे-धीरे रात्रि का अंधकार बढ़ता जाता है और चतुर्दिक् सन्नाटा छा जाता है।

द्वितीय सर्ग में रात्रि के प्रायः दो घड़ी बीत चुकने के समय की गोकुल की दशा का अंकन किया गया है। प्रायः सभी ब्रजवासी श्रीकृष्ण के उत्कृष्ट गुणों के विषय में चर्चा और उनका गुणगान करने में संलग्न थे कि तभी उन्हें ड्योडी पीटने वाले की यह घोषणा सुनाई दी कि राजा कंस ने दोनों कुमारों के साथ राजा नन्द को तथा कतिपय अन्य प्रतिष्ठित गोपों को धनुष-यज्ञ देखने के लिए कल प्रातः आमंत्रित किया है, अतः कल प्रातः मथुरा जाने के लिए उचित तैयारी कर ली जाए। ब्रजवासी यह सुनकर व्याकुल हो उठे, क्योंकि उन्हें कंस के विगत आचरण को दृष्टिगत करते हुए उसके द्वारा श्रीकृष्ण को मथुरा बुलाने के मूल में दाल में काला प्रतीत होने लगा।

तृतीय सर्ग में हरिऔध जी ने एक ओर तो ब्रजवासियों द्वारा प्रभात में मथुरा जाने के लिए मूक भाव से तैयारियाँ करने का वर्णन किया है, तो दूसरी ओर ब्रज के आबाल-वृद्ध नर-नारियों में ही नहीं, अपितु प्रकृति में भी व्याप्त शून्यता, विषाद और नीरसता का चित्रांकन किया है। व्याकुल यशोदा स्व-पुत्र की रक्षा के लिए देवी-देवताओं से नाना प्रकार की मनौतियाँ माँगती हुई रूदन कर रही थीं। ब्रज के नर-नारी भी प्रायः रोते हुए इस दुश्चिन्ता में मग्न थे कि न जाने क्या होने वाला है?

चतुर्थ सर्ग में कवि ने कृष्ण की अनन्य प्रेमिका राधा के विषय में इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए कि वह गोकुल के समीपवर्ती गाँव के वृषभानु नरेश की पुत्री थी, इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि राजा नन्द और वृषभानु के परिवारों के मध्य मैत्री सम्बन्ध था। परिवारों की इस मैत्री के कारण बचपन से राधा और कृष्ण एक-दूसरे के यहाँ जाते रहते थे और एक-दूसरे के साथ खेला-

कूदा करते थे। उनका यह संसर्ग साहचर्य आयु के साथ बढ़ते-बढ़ते प्रेम में परिणत हो उठा था और राधा ने वैधानिक रीति से विवाह न होने पर भी श्रीकृष्ण का मानसिक रूप से वरण कर लिया था।

पंचम सर्ग का आरम्भ उस दिवस के प्रभात-काल में ब्रजवासियों की दयनीय दशा के चित्रण से किया गया है, जिस दिन श्रीकृष्ण को मथुरा के लिए प्रस्थान करना था। ब्रज के आबाल वृद्ध नर-नारियों के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उनके प्रस्थान की वेला आ पहुँची और अक्रूर के रथ पर जा बैठने पर जब श्रीकृष्ण भी सवार होने लगे तो ब्रजवासियों का रूदन स्वर और भी बढ़ उठा। कुछ रथ के मार्ग में लोट गए थे, जबकि कुछ रथ के पहियों को पकड़कर बैठ गए थे। अंततया नन्द द्वारा उन्हें जैसे-तैसे यह कहकर समझाया गया कि मैं दो दिन में दोनों कुमारों के साथ सकुशल गोकुल लौट आऊँगा और तब कहीं जाकर उनका रथ मथुरा की ओर बढ़ सका।

षष्ठ सर्ग में कवि ने श्रीकृष्ण के प्रत्यागमन की प्रतीक्षा में उनके लौटने के मार्ग में पलक-पाँवड़े बिछाए रहने ब्रजवासियों और यशोदा की व्यग्र-विकल दशा का चित्रांकन किया है। उधर राधा की दशा तो और भी अधिक दुःखमयी हो रही थी, जिसने कृष्ण का मनसा वरण कर रखा था। इस सर्ग में कवि ने 'वायु दूतिका प्रसंग' की नियोजना के माध्यम से राधा द्वारा श्रीकृष्ण के समीप वायु को अपनी दूती के रूप में भेजकर उनकी कोई वस्तु-यहाँ तक कि उनकी चरण रज ही उड़ा लाने की प्रार्थना के रूप में बड़े ही मार्मिक प्रसंग की योजना की है।

सप्तम सर्ग में राजा नन्द के अकेले ही मथुरा से लौटकर आने पर ब्रजवासियों, विशेषतया यशोदा की व्याकुलता का वर्णन किया गया है। राजा नन्द भी जिस तरह लोगों से मुँह छिपाते हुए गोकुल में प्रविष्ट होते हैं(क्योंकि वे लज्जित थे कि मैं उन्हें क्या जवाब दूंगा) तथा यशोदा की शोक विह्वलता और अंततया मूर्च्छित हो उठने का कवि ने मार्मिक वर्णन किया है।

अष्टम सर्ग में ब्रज की गोपियों की करूण-दयनीय दशा का चित्रांकन किया गया है, जो यह जानकर अतीव व्यग्र-विकल हो उठती हैं कि कृष्ण और बलराम मथुरा से राजा नन्द के साथ नहीं लौटे हैं।

नवम सर्ग में हरिऔध जी ने यह दिखाया है कि ब्रज के आबाल वृद्ध नर-नारी ही श्रीकृष्ण के विछोह में नहीं तड़पते रहते थे, अपितु श्रीकृष्ण की भी उनके वियोग में वैसी ही दशा थी। एक दिवस उन्होंने अपने अंतर्मन की व्यथा को उद्धव से व्याप्त करते हुए कह ही दिया कि उद्धव! यहाँ सभी प्रकार के राजसी ऐश्वर्यो का उपभोग करते हुए भी मेरे हृदय से स्वमाता-पिता, गोप-गोपियों और विशेषतया राधा की स्मृति- उनका प्रेम-सम्बन्ध भुलाए नहीं भूलता है।

दशम सर्ग में उद्धव के भोजनोपरान्त नन्द-गृह के एक कक्ष में विश्राम करने के लिए जाने पर नन्द और यशोदा के भी वहाँ आ पहुँचने और यशोदा द्वारा उद्धव को अपने श्रीकृष्ण विषयक हृदयानुराग को सुनाने का चित्रांकन किया गया है।

एकादश सर्ग में गोपों की विगत स्मृतियों के माध्यम से श्रीकृष्ण द्वारा कालिया नामक नाग को नाथने तथा जंगल में लगी आग से ग्वाल-बाल और गो-वत्सादि को बचाने के प्रसंगों का वर्णन कराया गया है। उद्धव जब उन्हें श्रीकृष्ण का संदेश सुनाकर समझाते बुझाते हैं, तो दो प्रौढ़ गोप

श्रीकृष्ण के ब्रज-निवास से सम्बन्धित प्रसंगों को सुनाते हुए यह भाव व्यक्त करते हैं कि ऐसे जन-रक्षक श्रीकृष्ण की याद कैसे भुलाई जा सकती है।

द्वादश सर्ग में उद्धव गोपियों का समझाने-बुझाने का प्रयत्न करते हैं, जो उनकी श्रीकृष्ण द्वारा ब्रजवासियों की घनघोर वर्षा से रक्षा करने का प्रसंग सुनाती है। इसमें परम्परागत वर्णन के अनुसार कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को उंगली पर उठाने का वर्णन नहीं कराया गया, अपितु घनघोर वर्षा के कारण आई बाढ़ से बचाने के लिए कृष्ण ब्रजवासियों को गोवर्धन पर्वत की कन्दराओं में पहुँचाने की दिशा में भगीरथ-प्रयत्न करते हैं। यह विशेषतया कृष्ण और उनकी गोप-मंडली के ही प्रयत्नों का परिणाम था कि उस वर्षा से लोगों को कम-से-कम कष्ट सहन करने पड़ते हैं।

त्रयोदश सर्ग में गोपों द्वारा श्रीकृष्ण के परोपकारी स्वभाव की प्रंशसा करते हुए उनके द्वारा अघासुर, व्योमासुर, बकासुर आदि राक्षसों का वध करके जन-जीवन को सुरक्षित बनाने का वर्णन किया गया है।

चतुर्दश सर्ग में उद्धव यमुना-तट पर बैठे होते हैं कि वहाँ ब्रज गोपियों का एक झुंड पानी भरने आता है। वे उद्धव से कृष्ण के विषय में प्रश्न करती हैं और उद्धव उन्हें यह समझाने का प्रयास करते हैं कि श्रीकृष्ण का गोकुल के प्रति प्रेम-भाव पूर्ववत् ही है। वे गोपियों को समझाते हैं कि वे भी श्रीकृष्ण के प्रति अपने मोह-भाव को त्याग दें, जिससे श्रीकृष्ण लोक-कल्याण के कार्यों में दत्तचित्त हो सके।

पंचदश सर्ग में कवि ने उद्धव द्वारा राधा की विरह-कातर दशा को देखने का वर्णन किया है। उद्धव भ्रमण करते हुए वृषभानु की वाटिका में जा पहुँचते हैं, जहाँ उन्हें एक उन्मादग्रस्त किशोरी वाटिका के लता-पुष्पादि से अपनी अंतर्व्यथा निवेदित करती दृष्टिगत होती है। उद्धव वृक्षों और निकुँजों की ओट में छिपकर राधा की विरह-वेदना को सुनते रहते हैं। इस सर्ग में कवि ने विरह की दसों दशाओं में से अधिकांश का राधा के संदर्भ में चित्रण किया है। इस सर्ग में उद्धव राधा की इन दशाओं को छिपकर देखते ही रहते हैं, उससे कुछ कहते नहीं है।

षोडश सर्ग के आरम्भ में कवि ने बसन्त ऋतु की सुषमा का वर्णन करने के अनन्तर उद्धव द्वारा राधा को समझाए जाने का वर्णन किया है। वे राधा को श्रीकृष्ण का संदेश देकर तथा उनको लोकोपकार के कृत्यों में निरत बताकर राधा को यह परामर्श देते हैं कि वह उनके मोह-भाव का परित्याग कर दे। इस पर हरिऔध जी ने राधा के मुख से उद्धव को एक लम्बा प्रवचन-सा दिलाया है, जिसमें वह मोह और प्रणय का अन्तर स्पष्ट करती हुई श्रीकृष्ण सम्बन्धी अपनी प्रणय-भावना को अडिग सिद्ध करती है। वह आजीवन कुँवारी रहने का संकल्प व्यक्त करते हुए उद्धव से यह आर्शीवाद भी माँगती है कि मेरा कौमार्य-व्रत सफल हो सके, जिससे मैं लोक-कल्याण के कार्य कर सकूँ।

सप्तदश सर्ग के आरम्भ में कवि ने यह वर्णन किया है कि उद्धव मात्र दो दिन के लिए गोकुल आए थे, किन्तु ब्रजवासियों के प्रेम से अभिभूत होकर वे छह महीने पश्चात ही मथुरा लौट सके। किन्तु इसके पश्चात् भी श्रीकृष्ण गोकुल नहीं लौटे। इसके विपरीत ऐसी खबरें आने लगीं कि जरासंध मथुरा पर आक्रमण कर रहा है, जिससे ब्रजवासी श्रीकृष्ण की कुशलता के विषय में संत्रस्त हो उठे। उसके अठारहवीं बार आक्रमण करने के समय यह दुःखद समाचार मिला कि

जरासंध के बार-बार के आक्रमणों से परेशान होकर श्रीकृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारिका चले गये हैं। हाँ, ब्रजवासियों की यह आशा अब भी नहीं टूटी थी कि वे किसी-न-किसी दिन गोकुल अवश्य लौटेंगे। श्रीकृष्ण के वियोग में ब्रज की जो गोपिकाएँ अत्यन्त व्यथित होकर बावली-सी तथा मूर्च्छित होती रहती थीं, राधा उनकी देखभाल और समझाने-बुझाने में निमग्न रहने लगी। उसकी तरह ब्रज की कुछ अन्य गोप-बालाओं ने भी कौमार्य-व्रत ग्रहण कर लिया था और वे लोकोपकार के कृत्यों में निरत रहती थीं। कवि की इस उक्ति के साथ यह महाकाव्य परिसमाप्त हो जाता है।

8.6 प्रिय प्रवास पाठ एवं व्याख्या

दिवस का .... कुल बल्लभ की प्रभा।

सन्दर्भ- प्रस्तुत दुरत विलम्बित छंद महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' विरचित खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' की प्रथम चतुष्पदी है। इसमें कवि ने सांध्यकालीन प्राकृतिक सुषमा का वर्णन किया है।

प्रसंग- प्रिय प्रवास कृष्ण कथा पर आधारित महाकाव्य है। कृष्ण जी भोर होते ही ग्वाल बाल के साथ गौएँ चराने जाते थे और संध्या होते वापिस लौट आते थे। कृष्ण का आगमन दिखाने के लिए कवि ने पृष्ठभूमि के रूप में सांध्यकालीन प्रकृति का सजीव एवं मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या- दिन का अन्त सन्निकट होने के कारण सूर्य अस्त प्राय था, जिससे सूर्य बिम्ब के आरक्त हो उठने के कारण आकाश मण्डल में लालिमा छाती जा रही थी। कमल कमलिनियों के कुल अर्थात् समूह के मनभावन भगवान भुवन भास्कर अर्थात् सूर्य अस्ताचल की ओट में छिपने ही वाले थे, जिससे उनकी रश्मियाँ(किरणें) अब मात्र वृक्षों की चोटियों पर ही सुशोभित हो रही थी, अर्थात् सूर्य किरणें शनैः-शनैः ऊँची वस्तुओं पर ही पड़ रही थी।

शब्दार्थ- अवसाद- अन्त, लोहित- लाल, तरू शिखा- वृक्ष की चोटियाँ, कमलिनि कुल वल्लभ- कमलों के समूह को प्रिय अर्थात सूर्य, प्रभा- प्रकाश, छूप।

विशेष-

1. प्रस्तुत पंक्तियों को मंगलाचरण की वस्तु निर्देशात्मक श्रेणी में स्थान दिया जा सकता है, क्योंकि इस वियोग प्रधान काव्य में कमलिनी रूपी ब्रजबालाओं से सूर्य रूपी श्रीकृष्ण के विछोह का चित्रांकन किया है।
2. प्रिय प्रवास का मूल स्वर विषाद व्यथा का है। इस दृष्टि से कृति का आरम्भ संध्या के लोहित वातावरण से करना(उषा जहॉ उल्लास की प्रतीक है वहीं संध्या अवसाद और ढलान की) कृतिकार की उचित पृष्ठभूमि के निर्माण की क्षमता का परिचय देता है।
3. कमलिनि-कुल तथा कुल-बल्लभ में छेकानुप्रास अंलकार है। इन पंक्तियों में श्रुत्रि मधुर व्यंजनों के प्रयोग के कारण श्रुत्यनुप्रास अंलकार भी है।

विपिन बीच .... विनिमज्जित सी हुई।

प्रसंग- संध्या के समय पक्षी चूगा-पानी से निवृत होकर अपने-अपने घरों को जाते हैं इसी का सजीव एवं मनोहारी वर्णन इन पंक्तियों में किया है।

व्याख्या- सांध्यकालीन प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए कवि आगे कहता है कि वन में पक्षियों के समूह का कलरव बढ़ता ही जा रहा था। नाना प्रकार की ध्वनियाँ करते हुए चहचहाते पक्षियों की पंक्तियाँ गगन मण्डल में उड़ती जा रही थी।

कवि कहते है कि शनैः-शनैः आकाश की अरूणिमा बढ़ती जा रही थी, जिसमें आकाश के साथ-साथ दसों दिशाएँ भी रंग गई थी अर्थात् सभी ओर लालिमा व्याप्त हो गई थी। आकाश और दिशाओं के अनुरूप ही लता-पादप और वृक्ष अर्थात् वनस्पतियाँ भी जो इससे पूर्व हरे रंग की थी, अब ऐसी प्रतीत होती थी जैसे उन्होंने लाल रंग में स्नान कर लिया है, अर्थात् अब वे भी लाल वर्ण की आभासित होने लगी थी।

विशेष-

1. प्रस्तुत पंक्तियों की श्रुति-मधुरता स्पृहणीय है। कवि ने बड़ी ही श्रुति मधुर शब्दावली में प्रकृति का मनोरम चित्र अंकित किया है।
2. प्रकृति चित्रण में ऐसी गत्यात्मकता है कि पाठकों के मनश्चक्षुओं के समक्ष आकाश में चहचहाते पक्षियों की उड़ती हुई पंक्तियाँ, फिरती हुई लालिमा आदि के रूप में सांध्यकालीन वातावरण मूर्त हो उठता है।
3. अंतिम दो पंक्तियाँ में उपमा अंलकार।

ध्वनि मयी .... धेनु का ।

प्रसंग- प्रातः काल श्रीकृष्ण और गोप गौओं को चरने के लिए इधर-उधर छोड़ देते थे। कन्हैया ग्वाल-बालों के संग लीला करते रहते और गौएँ चरती हुई काफी दूर निकल जाती। इसका निदान कृष्ण जी ने निकाल लिया। वे मुरली में स्वर फूँकते जिसे सुनकर गौएं उसी दिशा में मोहक मंत्र की आकर्षण शक्ति के समान खिंच जाती। इस छन्द में इसी कथा की प्रतिध्वनि है।

व्याख्या- कवि कहते हैं कि उस सांध्यकालीन बेला में यमुना के तट पर शोभित एक सुन्दर कुंज में (श्रीकृष्ण) की मुरली की मधुर स्वर लहरी गूँज उठी जिससे पर्वतों की गुफाएँ, रमणीय उद्यान और केलि-कुंज आदि सभी स्थल निनादित हो उठे।

मुरली की मधुर स्वर-लहरी के साथ गायों ने अपने सींगों से बने सुन्दर विषाण नामक बाजे तथा सींगियाँ(ग्रामीण बाजे) बजाई तो उनके साथ के ग्वाल-बालों ने भी अपने विषाण और श्रृंग नामक वाद्यों को बजाया। इस संकेत का यह परिणाम निकला कि जंगल के प्रान्तर भागों में गाय के दौड़ने का स्वर व्याप्त हो गया अर्थात् वे गायें जो चरती हुई जंगल के कोनों तक जा पहुॅची थी इस संकेत को सुनकर अर्थात मुरली की ध्वनि की ओर आकृष्ट होकर उधर की ओर दौड़ पड़ी जहां पर श्रीकृष्ण बैठ कर बाँसुरी बजा रहै थे।

शब्दार्थ- कलित कानन- सुन्दर उद्यान, केलि निकुंज- क्रीड़ाएँ करने के घने लता-पादपों के झुरमुट वाले स्थान, तरणिजा तट- यमुना तट, क्वणित- बज उठे, विषाण- सींग का बना बाजा, श्रृंग- सींग, समाहित- व्याप्त, शान्त, प्रान्तर भाग- सीमा का भाग, रणित- बज उठे

विशेष-

1. विषाण कदाचित ऐसा बाजा था जिसमें सींगों को टकराकर बजाया जाता था जबकि श्रृंग या सींगी फूँक मारकर बजाई जाती थी। हरिऔध जी की निम्नांकित पंक्तियों से भी यही

ध्वनित होता है कि 'क्वणन' दो वस्तुओं के टकराने से उठी ध्वनि होती थी जबकि 'रणन' झंकार कहलाती है।

2. द्वितीय पंक्ति में वृत्यनुप्रास, प्रथम पंक्ति में छेकानुप्रास, चतुर्थ एवं आठवीं पंक्ति में छेकानुप्रास।

गगन मण्डल .... दर्शन लालसा।

प्रसंग- एक साथ ग्वाल-बालों तथा धेनु समूह के प्रस्थान करने से आकाश में धूल छा गयी है। गोधुलि की इसी छवि का कवि ने मार्मिक निरूपण किया है।

व्याख्या- जब श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों और गायों के साथ गोकुल की ओर चल पड़े तो उनके चलने के कारण उड़ी हुई धूल आकाश मण्डल में छा गयी तथा गाय-बछड़ों, गोपो और पक्षियों आदि के स्वरों से दसों दिशाएँ निनादित हो उठी। लम्बे-चौड़े अर्थात् सुदीर्घ गोकुल गॉव के प्रत्येक घर में भी विनोद(मनोरंजन) का प्रवाह सा प्रवाहित हो उठा अर्थात् उनके अन्र्तमन उल्लसित हो उठे।

गोकुल ग्राम के प्रत्येक गृह में विनोद का प्रवाह उमड़ उठने का कारण यह था कि वहाँ के समस्त नर-नारी पूरे दिन श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए व्याकुल थे, अतः उन्होंने जैसे ही यह देखा कि अब दिन का अन्त होने जा रहा है जिससे श्रीकृष्ण गोचारण से लौट आएँगे तो ग्रामवासियों को उनके दर्शनों की उत्कंठा और भी अधिक अभिवृद्ध हो उठी । अर्थात् वे अपने अन्र्तमनों में श्रीकृष्ण के आगमन की अधीरतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे ।

शब्दार्थ- रज- धूल, प्रति गेह- प्रत्येक घर, वर स्रोत- सुन्दर प्रवाह या सोता, आकुल- व्यग्र, दिनान्त- सन्ध्या, लालसा- उत्कंठा ।

विशेष-

1. प्रस्तुत पंक्तियों में जहॉ एक ओर प्रकृति का मार्मिक निरूपण हुआ है वहॉ दूसरी ओर गोकुल वासियों का कृष्ण के प्रति अटूट अनुराग परिलक्षित होता है।

2. प्रथम, द्वितीय, पंचम और आठवीं पंक्ति में छेकानुप्रास, षष्ठ पंक्ति में वृत्यनुप्रास तथा हृदय यंत्र में रूपक।

इधर .... नलिनीश है।

प्रसंग- गोधूलि के समय जँगल से धेनु मण्डली के साथ लौटते हुए भगवान कृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य का मार्मिक चित्रण इन शब्दों में किया जाता है।

व्याख्या- जंगल से गायें चराकर लौटते श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए चले आने वाले गोकुल के नर-नारियों के विषय में कवि कहते है कि ग्राम की ओर से गोकुल वृद्ध नर-नारी बड़ी ही उमंग और उल्लास के साथ गाँव के बाहर की ओर चले जा रहै थे, जबकि जँगल की ओर से श्रीकृष्ण अपनी ग्वाल मण्डली तथा गो-समूह के साथ गोकुल के समीप आ पहॅुचे थे।

गोधूलि से आपूर्ण दिशा से अथवा सुरा की तरह लाल रंग की छायी हुई धूल के मध्य से निकलते हुए श्रीकृष्ण इस प्रकार शोभायमान हो रहै थे, जैसे प्रभात काल में दिशाओं के अन्धकार का विनाश करता हुआ सूर्य शोभायमान होता है। अथवा नैश काल में अन्धकार को विदीर्ण करता हुआ चन्द्रमा शोभायमान होता है।

शब्दार्थ- कढ़ी- निकली, पगती- भरी हुई, विमंडित- शोभित, गोरज- गायों के खुरों से उड़ती धूल, ब्रज बल्लभ- श्रीकृष्ण, कदन- विनाश, नलिनीश- सूर्य, चन्द्रमा, कुकुभ शोभित- दिशाओं में शोभा देने वाली

विशेष-

1. नलिनी और कमलिनी रात में खिलती है। अतः उनका बल्लभ चन्द्रमा माना जाता है। चूंकि दिन निकलने पर कमलिनी मुरझा जाती है अतः सूर्य उनका शत्रु माना जाता है। प्रियप्रवास के प्रथम छंद में जिस सूर्य को 'कमलिनी कुल बल्लभ' कहा गया है। उसका अभिप्राय मात्र कमलिनियों से न होकर समस्त कमल कुल से है जिसमें कमलिनियाँ भी समाहित हैं। प्रस्तुत संदर्भ में नलिनीश= नलिनि $ ईश चन्द्रमा लेना ही उचित है। 'सूर्य' अर्थ ग्रहण करना अनुचित है।
2. चतुर्थ पंक्ति में छेकानुप्रास, द्वितीय में उपमा।
3. तत्सम शब्दों के अतिरिक्त कढ़ी(पंजाबी) उमगती तथा पगती जैसे प्रचलित, कर्ण मधुर एवं स्वाभाविक तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है।

अतसि .... अलकावली।

प्रसंग- इस छन्द में कवि ने नायक श्रीकृष्ण के अप्रतिम सौन्दर्य, उनकी वेश-भूषा तथा शरीर रचना का उल्लेख किया है।

व्याख्या- श्रीकृष्ण की वेशभूषा और शरीरांगादि की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कवि कहते है कि श्रीकृष्ण की नवल काया जिसका वर्ण जलपूर्ण श्याम मेघ के समान था(श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था पर किशोर-काल के कारण उनकी काया को नवल या नयी बताया गया है) और शारीरिक कांति अतीव ही मनोहारिणी थी अर्थात् श्रीकृष्ण की श्याम मेघ जैसे वर्ण की अतीव कांतिमयी काया अलसी के पुष्प की भी शोभा बढ़ाने वाली तथा शरतकालीन नील कमलों को शोभा प्रदान करने वाली थी अर्थात् अलसी पुष्प और नील कमल उसके समक्ष तुच्छ थे।

श्रीकृष्ण के शरीरांग तथा उनका गठन अतीव उत्कृष्ट था। उनके शरीरांग दर्पण के समान स्वच्छ एवं मनभावन थे। उनके शरीरांगों की अक्षुण्ण मृदुलता और सरसता सुस्पष्ट तथा झलकती रहती थी, अर्थात् उन पर आयु, बुढ़ापे आदि का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता था। उनका शरीर तो सदैव नवनीत की भाँति मृदुल बना ही रहता था। उनका हृदय भी बड़ा सुकोमल और सरस था।

उन्होंने अपने शरीर को सुन्दर वस्त्रों से मंडित कर रखा था तथा उनके कटि प्रदेश में पीट वस्त्र शोभायमान थे। उनके द्वारा ग्रीवा में पहनी हुई वन माल जहाँ उनके वक्ष प्रदेश पर सुशोभित हो रही थी। वहीं उनके कंधे पर पड़ा हुआ सुन्दर दुपट्टा भी उनकी शोभा को बढ़ा रहा था।

उनके दोनों कानों में कामदेव की मकराकृति वाली पताका के जैसे आकार वाले कुण्डल शोभायमान हो रहै थे तथा जिसके सब ओर नाना प्रकार का भाव व्यंजना करती हुई अनेक रूपों में घुँघराली लटें लहरा रही थी।

शब्दार्थ- अतीस पुष्प- अलसी का पुष्प, अंलकृतकारिणी- शोभा बढ़ाने वाली, नील सरोरूह- नीले रंग का कमल, रंजिनी- आनन्दित करने वाली, सजल नीरद- जलपूर्ण बादल, कल कान्ति- सुन्दर शोभा, मुकुर मंजुल- सुन्दर शीशा, सतत- लगातार, कटि-कमर, गात- शरीर, कल दुकूल-

सुन्दर दुपट्टा, स्कंध- कंधा, मकर केतन- कामदेव, कल केतु- सुन्दर पताका, अलकावली- घुँघराले बाल

विशेष-

1. कृष्ण की कल कान्ति की शोभा जलवान मेघ से देना काव्य में एक नया प्रयोग है। बादल की घटा से जिस प्रकार आस-पास का वातावरण शीतलता प्रदान करने वाला एवं नव मंगल का आह्वानक होता है उसी प्रकार ब्रजवासियों के लिए कृष्ण के दर्शन मंगल एवं उनके हृदय को शीतलता प्रदान करने वाले है।
2. गात शब्द संस्कृत के गात्र शब्द का विकसित रूप है।
3. छंद 16 की प्रथम दो पंक्तियाँ प्रतीप, अन्तिम दो पंक्तियों में उपमा, छंद 17 की द्वितीय पंक्ति में उपमा, छंद 18 में स्वभावोक्ति तथा छंद 19 की प्रथम दो पंक्तियों में उपमा।
4. कृष्ण जी के अंग प्रत्यंगों में सार्वकालिक सरसता का उल्लेख करके कवि ने उन्हें सामान्य प्राणि से बहुत ऊपर उठा दिया है क्योंकि सामान्य प्राणि के अंग-प्रत्यंगों की सरसता क्षण-भंगुर होती है जबकि उनकी शाश्वत है।

मधुरता .... कान्ति सी।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने भगवान कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य का अनेक उपमानों के साथ बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया है।

व्याख्या- श्रीकृष्ण की सौन्दर्य सुषमा का वर्णन करते हुए कवि आगे कहते है उनके मुखारबिन्द से अतीव मधुर शब्दावली निःसृत होती थी और उनकी मधुर मुस्कान तो सुधामयी जैसी ही थी। अर्थात् अत्यधिक रसमयी और मनभावन थी। उनके कमल-पुष्पों जैसे मदभरे नेत्रों की सुन्दरता बड़ी ही मस्तीपूर्वक नर-नारियों के हृदय को मोहित कर लेती थी।

उनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी तथा संपुष्ट थी जबकि उनका वक्षस्थल भी अतीव पुष्ट और उत्तम स्वास्थ्य का निदर्शन करते हुए उभरा हुआ था। उनके शरीरांगों में कैशोर्यावस्था जैसी चपलता, पुष्टता, स्फूर्ति आदि विशेषताएँ थी तथा उनका मुख खिले हुए कमल-पुष्प की भाँति खिला हुआ अर्थात प्रसन्न था।

उनके हाथ में मधुर स्वर लहरी रूपी मधु की वर्षा करने वाली वह मुरली थी जो समस्त प्रकार की मधुर रागनियों की सखी थी। कृष्ण उस पर समस्त राग बजाते थे, जो नर नारियों के हृदयों को मोहित कर लेने वाले मंत्र की सहचरी अर्थात अभिन्न साथिन थी, रस का आदि स्रोत थी तथा जिसमें से अतीव मधुर और सुन्दर स्वर लहरी निकलती थी। अभिप्राय यह है कि वह मुरली न होकर एक प्रकार से साक्षात रस पुंज थी।

श्रीकृष्ण के मुखारबिन्द से सुन्दरता की राशि छलकी पड़ रही थी जबकि उनके शरीरांगों से निःसृत होने वाली सुन्दरता पृथ्वी पर छिटककर चारों ओर प्रसारित हो रही थी। भाव यह है कि वे इतने सुन्दर थे कि उनके सौन्दर्य की राशि चतुर्दिक छिटकी पड़ रही थी क्योंकि उसे वह स्थान सम्भाल नहीं पा रहा था। जहाँ वे खड़े थे। उनके शरीरांगों से इतनी प्रचुर मात्रा में उत्तम कान्ति विकीर्ण हो रही थी कि उससे समस्त दिशाएँ अपने अन्त(सीमा) तक उसी प्रकार चमक रही थी जैसे चन्द्रमा की किरणें आकाश को देदीप्यमान कर देती है।

शब्दार्थ- अमृत सिंचित- सुधामयी, अतीव मीठा, समद- मस्तीपूर्णक, सबल- पुष्ट, जानु-विलम्बित घुटनों तक लम्बी, वय- किशोर कला लासितांग- किशोरावस्था की विशेषताओं से ओत प्रोत शरीर, पद्म- कमल, सहै लिका- सखी, मधुवर्षिणी- शहद की भाँति मधुर स्वरों की वर्षा करने वाली, क्षिति- पृथ्वी, क्षितिय- पृथ्वी और आकाश का मिलन स्थल, क्षणदा कर-चन्द्रमा

विशेष-

1. लम्बी गरदन, विशाल नेत्र, उन्नत एवं विशाल मस्तक, चौड़ा वक्षस्थल, घुटनों तक लम्बी भुजाएँ सर्वश्रेष्ठ मानव होने के लक्षण है। ऐसा व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट, दिग्गज पण्डित तथा सर्वसिद्धियों से पूर्ण होता है।
2. प्रस्तुत छन्द में अतिशयोक्ति के माध्यम से कवि ने अलौकिक अथवा ब्रह्म रूप दे दिया है। उनकी कान्ति का सर्व दिशाओं में फैलना इसका प्रमाण है।
3. अमृत मुस्कान, कमल लोचन में उपमा, मधुरता .... बोलना में वृत्यनुप्रास, ‘कमल .... कमनीयता’ में छेकानुप्रास, ‘छिटकती छटा .... में वृत्यानुप्रास, बगरती .... दिगन्तम’ छेकानुप्रास अलंकार है।

विहग नीरवता .... वह मिली।

प्रसंग- सायंकाल की अन्तिम बेला में भगवान कृष्ण की वंशी की मधुर ध्वनि का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है।

व्याख्या- पक्षियों का कलख समाप्त होने के पश्चात सींग के बने श्रृंग और विषाणों का बजना भी रूक गया। इस प्रकार सभी प्रकार की मधुर स्वर-लहरियाँ समाप्त हो गई किन्तु कृष्ण की वंशी फिर भी बजती रही। कृष्ण की वंशी अनेक प्रकार की मार्मिक और दर्दभरी ऐसी ताने जिनसे वैराग्य की भावनाओं का उद्रेग होता था, कुछ क्षणों तक दिशाओं में गूँजती रही। अंततः वे वायु में विलीन हो गई अर्थात् उनकी स्वर लहरी का सुनाई देना बन्द हो गया।

शब्दार्थ- कल अलाप- मधुर संगीत, वर वंशिका- श्रेष्ठ वंशी, मर्मभरी- मार्मिक, विराग- वैराग्य, विवोधिनी- व्यक्त करने वाली।

विशेष-

1.श्रीकृष्ण का अपने मथुरा गमन का कदाचित पूर्वाभास था(वैसे तो उन्हें अन्तर्यमी माना जाता है)। अतः वे उस सांध्यकाल में गोकुलवासियों को ऐसी मार्मिक तानें सुना रहै थे जिससे वियोग और वैराग्य की भावनाएँ जाग्रत होती थी।

2. छेकानुप्रास है तु त्प्रेक्षा, ‘वियोग-विराग- विवेधिनी‘ में श्रुत्यनुप्रास,

इसलिए रसना .... ग्राम में।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में गोकुल वासियों द्वारा श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन होने के साथ-साथ कृष्ण का ग्वाल बालों के साथ गोचारण के बाद गोकुल गाँव में प्रविष्ट होने का चित्रण किया गया है।

व्याख्या- ब्रजवासी अन्धकार के कारण न तो श्रीकृष्ण की शोभा और वेणु वादन बन्द हो जाने के कारण उनकी वंशी की मधुर ध्वनि को ही सुन पा रहै थे। अतः उनके नेत्रों और श्रवणों के स्थान पर उनकी जिह्वाएँ सक्रिय हो उठी और वे उनके गुणों की प्रशंसा रूपी मालाएँ गूँथने लगे अर्थात्

उनके सद्गुणों की प्रशंसा करते हुए गर्वानुभव करने लगे।कवि कहते हैं कि जब लोगों की ऊपर वर्णित दशा थी, तब कमल जैसे नेत्रों वाले कृष्ण गो-समूह और ग्वाल-बालों के साथ उस गोकुल ग्राम में प्रविष्ट होने लगे जिस पर धरा गर्व करती है- जिसके कारण धरामण्डल के गौरव की वृद्धि हुई है।

शब्दार्थ- रसना- जीभ, समुत्सुकता पगी- अत्यधिक अधीर, ग्रथन- गूँथने, वर्णन करने, ब्रज विभूषण- श्रीकृष्ण, गोगण- गो समूह, अवनि गौरव- धरा द्वारा गर्व करने योग्य

विशेष-

1.गोगण शब्द में लगा हुआ गण अशुद्ध हैं क्योंकि इसका प्रयोग प्रायः पुल्लिंग वाची शब्दों के लिए होता है। गौ स्त्रीलिंग किन्तु उचित शब्द के अभाव में कवि ने इसका प्रयोग किया है।

2.गुण मलिका में रूपक, जलज लोचन में उपमा, दूसरी, तीसरी, चतुर्थ, सप्तम व अष्ट पंक्ति में छेकानुप्रास।

प्रथम थी .... काल को।

प्रसंग- प्रिय प्रवास के प्रथम सर्ग के अन्त में श्रीकृष्ण के प्रवास का संकेत देते हुए कवि ने विवेचन किया है।

व्याख्या- पहले जहाँ के वातावरण में संगीत की मधुर स्वर लहरियाँ लहरा रही थी अब वही स्थान पूर्णतया निस्तब्ध हो गया था। ब्रज भूमि रूपी विशाल रंग स्थल से आज श्रीकृष्ण रूपी चित्र सदा के लिए वियुक्त हो गया। यहाँ पर (विधाता ने) जिस सुन्दर हृदय को चित्रित किया था वह सदैव के लिए विलुप्त हो गया।

शब्दार्थ- आलाप- संगीत, सुप्लावित- लहराता, नीरवता- शान्ति, विशद- विशाल, विशद चित्रपटी- विशाल रंग स्थल, सब काल- सदा के लिए

विशेष-

1. काव्य शास्त्र की परम्परा के अनुसार सर्ग के अन्त में आगे आने वाली कथा का संकेत दे दिया जाता है। हरिऔध ने इस नियम का पूर्ण रूप से पालन किया है और आगामी कारूणिक प्रसंग का संकेत इस छन्द में स्पष्ट रूप से दिया है।
2. ‘‘विशद चित्रपटी ब्रजभूमि की‘‘ में रूपक, तृतीय पंक्ति में वृत्यनुप्रास।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्रियप्रवास में कितने सर्ग हैं?
2. हरिऔध जी की प्रमुख कृतियों का परिचय दीजिए?
3. हरिऔध जी का जन्म कब और कहाँ हुआ था?
4. गोकुल ग्राम निवासी मलीन मुख किये कहाँ से निकले?

   (क) अपने घर से (ख) अपनी गली से

   (ग) अपने गाँव से (घ) अपने खेत से
5. नन्द के द्वार पर एकत्र जनता किसके भय से कातर थी?

(क) कंस राजा के (ख) अक्रूर के

(ग) नन्द के (घ) वृष्भान के

6. मुरारी अर्थात् कृष्ण किसको साथ लेकर घर से निकले?

(क) बलराम को (ख) नन्दजी को
(ग) यशोदा जी को (घ) अक्रूर को

8.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी के जीवन और उनकी कृतियों से परिचित हो चुके होंगे।
2. प्रियप्रवास की संक्षिप्त कथावस्तु से परिचित हो चुके होंगे।
3. हरिऔध जी की काव्यगत विशेषताओं से परिचित हो चुके होंगे।
4. प्रियप्रवास के महत्वपूर्ण सर्गों का आनन्द प्राप्त कर चुके होंगे।

8.8 शब्दावली

आसक्ति- लगाव, अनुदिन- प्रत्येक दिन(दिन-रात), दुर्विपाक- कठिन, पारितोषिक- इनाम, अनन्य- जिसका दूसरा विकल्प न हो, इहलीला- दैहिक लीला, इतिवृतात्मक- कथात्मक

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 17 सर्ग हैं।
2. प्रियप्रवास, वैदेही वनवास, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, रस कलश, प्रद्युम्न विजय, रूक्मिणी परिणय, ठेठ हिन्दी का ठाठ, अधखिला फूल आदि।
3. क
4. क
5. घ

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हरिऔध और उनका साहित्य, मुकुन्द देव शर्मा
2. महाकवि हरिऔध और उनका प्रिय प्रवास, धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
3. प्रिय प्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ0 द्वारका प्रसाद सक्सेना
4. खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ, विश्वम्भर मानव
5. महाकवि हरिऔध और उनकी कलाकृतियाँ, प्रो0 द्वारिका प्रसाद
6. आधुनिक साहित्य, नन्द दुलारे बाजपेयी
7. रीति काव्य की भूमिका, डॉ0 नगेन्द्र
8. हरिऔध अभिनन्दन ग्रंथ
9. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना

8.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रियप्रवास एक विवेचन, माया अग्रवाल
2. प्रियप्रवासः पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हरिऔध जी के जीवन और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिये?
2. 'प्रबन्धात्मकता और महाकाव्य की दृष्टि से 'प्रिय प्रवास' एक सफल महाकाव्य है'' इस कथन की सप्रमाण समीक्षा कीजिए?
3. प्रियप्रवास के आधार पर 'हरिऔध' के काव्य की प्रमुख विशेषताओं को सोदाहरण विवेचन कीजिए?
4. हरिऔध जी ने राधा और श्रीकृष्ण के प्रेम भाव का उन्नयन लोक सेवा के रूप में दिखाकर देश के युवक युवतियों को लोकमंगल का संदेश प्रदान किया है, प्रमाण पुष्ट उत्तर दीजिए?

इकाई 9 .साकेत - पाठ एवं विवेचन (नवम सर्ग)

इकाई की रुपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 गुप्तः जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व
    9.3.1 जीवन परिचय
    9.3.2 व्यक्तित्व
    9.3.3 कृतित्व
9.4 गुप्तः काव्यकला
    9.4.1 भावपक्ष
    9.4.2 कलापक्ष
9.5 साकेतः कथावस्तु
9.6 साकेतः पाठ एंव व्याख्या
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

"राम तुम्हारा नाम स्वयं काव्य है
कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी साहित्यकाश के ज्वाजल्यमान नक्षत्र है। आधुनिक युग में उन्होंने 'साकेत' जैसा महाकाव्य लिखकर उन्होंने राम काव्य परम्परा में अद्वितीय योगदान दिया है। यह महाकाव्य गुप्त जी के काव्य जीवन का गौरव स्तूप है। गुप्तजी मूलतः राष्ट्रकवि थे। राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना उनके काव्य का मूल स्वर है। भारतीय संस्कृति एवं सामाजिकता उनके काव्य में कूट-कूट कर भरी हुई है। उन्होंने सन् 1912 से लेकर मृत्यु पर्यन्त राष्ट्रीय भावों की पुनीत गंगा को अपने काव्य के माध्यम से जन-जन तक प्रसारित करने का भागीरथ प्रयास किया है।

गुप्तजी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को अपना काव्य गुरू मानते थे। द्विवेदी जी द्वारा प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका में उनकी आरम्भिक रचनायें प्रकाशित हुई।

गुप्तजी मूलतः राम भक्त हैं और राम के प्रति इनकी अपार श्रद्धा थी। पर यह भक्ति भावना साकेत की सृजन प्रेरणा नहीं है। इसकी सृजन प्रेरणा है उर्मिला का अपार मार्मिक विषाद जो इसके नवम् सर्ग में वर्णित है। प्राचीन साहित्य का अध्ययन करते हुए गुप्तजी को यह अनुभव हुआ कि साहित्य में अनेक ऐसी नारियाँ उपेक्षित हैं जिनके महान चरित्र की उज्जवलता से साहित्य का भवन दिव्य-दीप्ति से जगमगा सकता है। फलतः उन्होंने 'काव्य की उपेक्षिता' नामक एक हृदयस्पर्शी निबन्ध की रचना की, जिसमें उर्मिला का विशेष रूप से उल्लेख किया।

इसके पश्चात हिन्दी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का लेख 'कवियों की उर्मिला- विषयक उदासीनता' प्रकाशित हुआ। इस लेख में द्विवेदी जी ने हिन्दी कवियों की इस बात के लिए पूर्ण भर्त्सना की, कि वे उर्मिला के विषय में पूर्ण उदासीन बने रहे। इन लेखों से विशेष रूप से द्विवेदी जी के लेख से प्रेरणा पाकर गुप्तजी ने उर्मिला का पूर्ण अंकन करने के लिए 'साकेत' महाकाव्य की रचना प्रारम्भ की। साकेत खड़ी बोली में लिखा गया आधुनिक युग का सर्वोत्कृष्ट काव्य है। इस महाकाव्य में उर्मिला के चरित्र पर बड़ी व्यापकता से प्रकाश डाला गया है। इस महाकाव्य में महाकाव्यात्मक के सम्पूर्ण लक्षण परिलक्षित होते हैं। साकेत प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्ध काव्य के अनुरूप उसमें प्रकृति के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं। उनका 'साकेत' प्रकृति के अनेक सुन्दर दृश्यों से अनुप्राणित हो उठा है। साकेत अनेक भावों एवं रसों से परिपूर्ण सरस महाकाव्य है। इस महाकाव्य में संयोग श्रृंगार का मर्यादित चित्रण होने के साथ-साथ वियोग श्रृंगार का व्यापक निरूपण हुआ है। साकेत एक भावपूर्ण रचना होने के साथ-साथ एक उत्कृष्ट कलात्मक कृति भी है। गीतात्मक महाकाव्य होने के कारण इसकी लोकप्रियता और अधिक बढ़ गयी है। लय ध्वनि, संगीत के साथ भावपूर्ण शब्दों का प्रयोग इस महाकाव्य को उत्कृष्टता प्रदान करते है। प्राचीन आदर्शों और वर्तमान युग की नवीन विचारधाराओं के बीच सुन्दर सामंजस्य इसकी लोकप्रियता को और अधिक बढ़ा देता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने आधुनिक अपेक्षाओं के अनुकूल काव्य सृजन का दायित्व कुशलतापूर्वक निभाया है। गुप्त जी के काव्य ग्रंथों में जहाँ भारतीय प्राचीन परम्पराओं का यथार्थ निरूपण हुआ है वहीं दूसरी ओर अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न भी

भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं से अटूट सम्बन्ध रखने वाले महाकवि गुप्त ने दासत्व, दीनता, अहंकार, पराधीनता, वैमनस्य एवं रूढ़िवादिता जैसे झाड़-झंकार को पूरे समाज से दूर करने की प्रेरणा अपने काव्य ग्रन्थों के माध्यम से प्रदान की है। नारी को उसके यथार्थ स्वरूप में प्रतिष्ठित करने की प्रखर वाणी उनके काव्य का प्राण तत्व है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्त्रे तत्र देवता' की पूर्ण सार्थकता उनके काव्य ग्रन्थों में परिलक्षित होती है। उनका काव्य कौशल उनकी काव्य प्रेरणा सनातन एवं युगानुरूप है। इस ग्रन्थ में भारतीय आस्थाओं एवं मान्यताओं को भावनात्मक स्वर प्राप्त हुआ है। इस इकाई के माध्यम से हम राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य की प्रमुख विशेषताओं से परिचित होंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
2. मैथिलीशरण गुप्त कृत महाकाव्य साकेत के कथानक की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. साकेत के महत्वपूर्ण सर्गों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।
4. गुप्त जी के काव्य की संवेदनागत और शिल्पगत चेतना का अध्ययन कर सकेंगे।
5. गुप्त जी के स्थान और उनके योगदान को समझ सकेंगे।

9.3 गुप्त- जीवन परिचय, व्यक्तित्व एंव कृतित्व

9.3.1 जीवन परिचय

झाँसी के चिरगाँव नामक ग्राम में श्री रामचरण सेठ के यहाँ सन् 1886 में एक बालक का जन्म हुआ, जो अपनी प्रतिभा के बल पर आगे चलकर हिन्दी का महान साहित्य सेवी और भारत का राष्ट्र कवि बना। नाम रखा गया मैथिलीशरण गुप्त। उनके पिता राम के उपासक थे, इसीलिए उनके नाम में राम की महत्ता और उपासना का समावेश रहा। बचपन में जो राम के प्रति आस्था के संस्कार जमे, वे आद्यन्त चिरस्थायी बने रहै । अपने पिता की इस प्रवृति के सम्बन्ध में गुप्तजी ने लिखा है- "पिताजी रात रहते ही उठकर प्रातः राम नाम का स्मरण करते थे, फिर हम लोगों को जगाकर राम महिमा याद कराया करते थे .... मुझे बड़ा कुतूहल और आनन्द आता। पर राम से बड़ा कुछ भी है, भले ही वह उनका नाम ही क्यों न हो, मैं नहीं मानना चाहता था।"

पिताजी की रामोपासना का ही यह प्रभाव था कि गुप्त जी का चिन्तन और अनुभूति भी राममय हो गयी थी और बुद्धिवाद के आग्रह से राम को पुरूषोत्तम भले माना हो, हृदय ने उन्हें ईश्वर ही स्वीकार किया। उन्होंने माँ से भी यही राम नाम की शिक्षा प्राप्त की। माँ काशीबाई का वात्सल्यमय साया उन पर 19 वर्ष की अवस्था तक बना रहा।

गुप्त जी शिक्षा किसी कॉलेज आदि में विधिवत् नहीं हो सकी किन्तु उनमें ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा प्रचुर थी। परिणामतः उनका कवि पक्ष उत्तरोत्तर निखार पर रहा एवं उसमें मौलिकता बनी रही। उनकी आरम्भिक शिक्षा अपने गाँव चिरगाँव में ही हुई। वहाँ से प्राइमरी करने के पश्चात् वह झाँसी गये, परन्तु मैकडानल हाईस्कूल में उनका मन पढ़ने में नहीं लगा, इस पर उनके अध्ययन

की व्यवस्था घर पर की गई पर यहाँ भी वह पढ़ न सके। उनकी धारणा थी कि- ''मैं पढ़ने के लिए नहीं जन्मा हूँ, मैंने इसीलिए जन्म लिया है लोग मुझे पढ़ें।'' अन्त में उनकी यही धारणा यथार्थ रूप में सामने आई।

गुप्तजी को कविता करने का शौक बचपन से ही था। घर पर संस्कृत का पठन-पाठन होता था, इससे पद्य रचना की ओर झुकाव हुआ तथा 15-16 वर्ष की अवस्था में ही लिखने लगे। कलकत्ता से प्रकाशित 'वैश्योपकारक' पत्र में उनकी साहित्य साधना प्रकाशित होने लगी। उसी समय उनका आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से परिचय हुआ, जिन्होंने उनकी सुप्त प्रतिभा को चमका दिया। 'सरस्वती' में जब उनकी रचनाएँ संशोधित होकर आचार्य जी द्वारा प्रकाशित की गयीं तो गुप्त जी हिन्दी साहित्य के साहित्यकारों की श्रेणी में जा बैठे। उनके व्यक्तित्व का निर्माण सरस्वती से हुआ। इसके अतिरिक्त भारत मित्र, वैश्योपकारक, राघवेन्द्र, पाटलीपुत्र आदि में भी उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रही।

गुप्तजी यद्यपि शिक्षित नहीं थे, पर वे शिक्षितों से भी ऊपर थे। राष्ट्र ने 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' जैसे पुरस्कार और 'पद्मविभूषण' जैसी राष्ट्रीय उपाधि प्रदान कर उनका सम्मान किया। सन् 1948 में आगरा विश्वविद्यालय से उन्हें डी0लिट0 की मानक उपाधि भी प्रदान की। वह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर भी रहै । 12 दिसम्बर, 1964 को उनका देहावसान हो गया।

9.3.2 व्यक्तित्व

एकमत से राष्ट्रकवि माने जाने वाले गुप्तजी का व्यक्तित्व अत्यन्त सरल, हँसमुख व सादा रहा। उनके चेहरे पर सदैव स्मित हास्य अपनी चपल छटा बिखेरता दिखायी देता रहा। उनके विषय में रायकृष्ण दास ने लिखा है- ''मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएँ पढ़कर लोग उनके कवि रूप की जो कल्पना करते होंगे, प्रत्यक्ष दर्शन में वह उन्हें इससे बिल्कुल भिन्न पाते है। प्रायः ऐसा हुआ है कि जब लोगों ने उनका परिचय पाया है, तो आश्चर्य चकित रह गये हैं कि 'ऐं' यही गुप्त जी हैं ....। अपरिचित के लिए उन्हें देखकर सहसा यह कल्पना कर लेना असम्भव है कि यह व्यक्ति वही मैथिलीशरण गुप्त हैं जिन्हें द्विवेदी युग की सबसे बड़ी देन कहा जाता है।''

उनके व्यक्तित्व की साधारणता ही असाधरण है। वह समय से कभी पीछे नहीं रहै , उनका सिद्धान्त रहा कि-

''पर देने में विनय न होकर जहाँ गर्व होता है,
तपस्त्याग का पर्व हमारा, वहीं खर्व होता है।''

9.3.3 कृतित्व

कुछ कवि होते हैं जो थोड़ा लिखते हैं और अपना नाम अमर कर जाते है; और कुछ कवि काफी लिखकर माँ सरस्वती का भण्डार समृद्ध करते है । गुप्तजी ने सतत् 57 वर्ष तक माँ सरस्वती की अनवरत साधना की है और इस दीर्घ समय में लगभग43 प्रकाशित तथा 6 अप्रकाशित काव्य-कृतियों की रचना की । इसके अतिरिक्त 9 प्रकाशित तथा 8 अप्रकाशित काव्यानुवाद एवं नाट्यानुवाद भी प्रस्तुत किये ।वस्तुचयन की दृष्टि से गुप्तजी का काव्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक तथा वैविध्य लिए हुए है। 'भारत भारती' जिसका गुप्तजी के नाम से अटूट सम्बन्ध है इस बात को

स्पष्टतः व्यक्त करतीचलती है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने यद्यपि मूलतः पूर्व गौरव का चित्रण और वर्तमान दैन्य को दिखाया है फिर भी इसमें उनके विविध विचारों की पुष्टि हुई है। उनकी राष्ट्रीय चेतना यहाँ विकास पा सकी है और इतिहास ज्ञान को अभिव्यक्ति मिल गई है। 'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी' को चित्रित करने में वे रामायण का सहारा ग्रहण कर चुके हैं, महाभारत के आदर्शाें को मान चुके हैं और पुराणों में गोता लगाते हुए अमूल्य रत्ननिधियों का पा चुके हैं। साथ ही वर्तमान अवनतिजन्य दीनता को भी चित्रित करके उद्बोधन का काम कर सके हैं। 'भारत भारती' की यही पंक्ति उनकी कविता का मूल स्वर है। उनकी इसी वैविध्यजन्य वस्तुचयन की विशेष प्रतिभा को लक्ष्य करते हुए डा0 सत्येन्द्र ने लिखा है- ''दूर एक कोने में बैठा हुआ पुराने विशाल खण्डहरों की कुछ सामग्री लेकर अपनी कलाशाला में कलाकार जीर्णोद्धार ही नहीं कर रहा है; वरन् मूर्तियों को जोड़ तोड़कर नया रंग भर रहा है। उन्हें नवजीवन से जीवित कर रहा है .... यह उसने 'भारत भारती' की मूर्ति बनायी है। भारत माता के मन्दिर के अनन्य पुजारी ने कैसा ओज भरा है, कैसा दर्प अंकित किया है और कैसे क्षोभ की रेखाएँ डाली हैं। इसमें जहाँ एक ओर जयद्रथ वध, अभिमन्यु, अर्जुन और कृष्ण द्वारा किया हुआ संग्राम रचा गया है, वहाँ दूसरी ओर बौद्धों के अनघ और यशोधरा सजाये गये है। राम और उनके चरित्र का तो यहाँ प्रधान स्थान है, जिसमें स्त्री जाति का तेज तपे हुए सोने की भाँति उद्दीप्त करती हुई उर्मिला भवन को प्रकाशित कर रही है। कृष्ण जीवन का सहचारी वर्ग भी संधियुग में खड़ा है। हर एक अपनी-अपनी मनोव्यथा और निजी कथा कहने में व्यस्त। सारी सामग्री पर उदार वैष्णवता का रंग चढ़ाया गया है और सभी मूर्तियाँ भारतमाता के मन्दिर की शोभा और श्री को प्रोत्साहित और प्रकाशित करने के लिए है।'' सत्येन्द्र जी ने इसमें गुप्तजी की कृतियों की संक्षिप्त रूपरेखा ही सजाई है। विषयवस्तु की दृष्टि से उनकी कृतियों की समीक्षा करते हुए उन्होंने छः मुख्य दिशाओं का उल्लेख किया है-

1. राष्ट्रीय
2. महाभारत संबंधिनी
3. रामचरित संबंधिनी
4. बौद्धकालीन
5. सिक्ख तथा अन्य ऐतिहासिक घटना संबंधी
6. पौराणिक

डा0 सत्येन्द्र का यह वर्गीकरण गुप्तजी के वस्तुचयन का सामान्य ज्ञान प्रदान करने में अत्यन्त सफल दिखाई देता है। लेकिन विषय चयन के वैविध्य का दर्शन इसमें पूर्णतः नहीं हुआ है। डॉ0 पाण्डेय ने प्रो0 धमेन्द्र की तालिका अपनी पुस्तक में प्रस्तुत की है। जिसमें गुप्तजी के विभिन्न स्रोतों का श्रेणीगत विभाजन प्रस्तुत किया गया है। इसमें वे गुप्तकाव्य की दस स्रोत श्रेणियाँ मानते हैं जिनमें उनकी सूक्ष्म आलोचनात्मक दृष्टि का सम्यक् परिचय मिलता है। लेकिन मोटे तौर पर इन कृतियों की चार मुख्य दिशाएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

1. पौराणिक
2. ऐतिहासिक
3. समसामयिक

4. विविध

पहले विभाग के अन्तर्गत रामायण, महाभारत तथा पुराणों का आधार बनाकर पहले लिखी गई गुप्तजी की संस्कृतोपजीवी काव्यकृतियाँ आयेंगी। यहाँ अन्य तीन विभागों में आने वाली कृतियों की तालिका दी जा रही है-

पौराणिक-	(1) रामायण पर आधारित-	साकेत(सं0 1988)
		पंचवटी(सं0 1982)
		प्रदक्षिणा(सं0 2007)
		लीला(सं0 2017)
	(2) महाभारत पर आधारित-	जयभारत
		जयद्रथवध(सं01967)
		सैरन्ध्री(सं0 1984)
		बकसंहार(सं0 1984)
		वनवैभव(सं0 1984)
		नहुष(सं0 1997)
		हिडिम्बा(सं0 2007)
		युद्ध (सं0 2007)
	(3) पुराणों पर आधारित-	द्वापर(सं0 1993)
		शक्ति(सं0 1984)
		दिवोदास(सं0 2007)
	(4) स्फुट-	अनघ(सं0 1982)
		यशोधरा(सं0 1909)
		शकुन्तला(सं0 1971)
ऐतिहासिक-	(1) राजपूत इतिहास से सम्बन्धित-	रंग में भंग(सं0 1966)
		पत्रावली(सं0 1973)
		विकट भट(सं0 1985)
		सिद्धराज(सं0 1993)
	(2) सिक्ख इतिहास से संबंधित-	गुरूकुल(सं0 1935)
	(3) मुस्लिमधर्म के इतिहास से संबंधित-	काबा और कर्बला(सं0 1999)
	(4) ईसाई धर्म के इतिहास से संबंधित-	अर्जन और विसर्जन(सं0 1999)
	(5) मध्यकालीन भारतीय इतिहास से संबंधित-	विष्णुप्रिया(सं0 2014)
		रत्नावली(सं0 2017)
	(6) बौद्धकालीन इतिहास से संबंधित-	कुणालगीत(सं0 1998)
समसामयिक	(1) उद्बोधनात्मक-	भारत भारती(सं0 1961)
		हिन्दू(सं0 1984)
		वैतालिक(सं0 1973)

	(2) राजनैतिक-	किसान(सं0 1973)
		स्वदेश संगीत(सं0 1982)
		अजित(सं0 2003)
		राजाप्रजा(सं0 2013)
	(3) सांस्कृतिक-	विश्ववेदना(सं0 1999)
		पृथिवीपुत्र(सं0 2007)
		भूमिभाग(सं0 2010)
विविध	(1) कविता संग्रह-	झंकार(सं0 1986)
		मंगलघट(सं0 1984)
		आस्वाद(सं0 1995)
		उच्छवास(सं0 2017)
	(2) नाटक-	तिलोत्तमा(सं0 1972)
		चन्द्रहास(सं0 1973)
	(3) अनुवादग्रंथ-	विरहिणी व्रजांगना(सं0 1971)
		गीतामृत(सं0 1982)
		मेघनाथ वध(सं0 1984)
		वृत्रसंहार(सं0 2019)
		पलासी का युद्ध (सं0 1971)
		स्वप्नवासवदत्तम्(सं0 1971)
		दूतघटोत्कचम्(सं0 2012)

इस प्रकार हम देखते है कि गुप्तजी का काव्य सम्बन्धी वस्तुचयन अत्यन्त वैविध्यपूर्ण रहा है। कहीं वे पुराणों तक झाँकते चलते है तो कहीं इतिहास मात्र से तृप्त होते हैं। कहीं 'हिन्दू' के प्रणयन द्वारा हिन्दुत्व को जगाने का प्रयत्न करते हैं तो कहीं 'भारत भारती' लिखकर राष्ट्रीय उद्बोधन का काम करते हैं। "वैतालिक" और "स्वदेश संगीत" तो राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध करने वाली है। 'गुरूकुल' में उन्होंने सिक्ख इतिहास का परिचय दिया तो 'काबा और कर्बला' द्वारा मुस्लिम संस्कृति को भी काव्य में उतारा। विषयवस्तु की इस समन्वयात्मकता ने उन्हें हिन्दी साहित्य में राष्ट्रकवि के पद पर निर्विरोध लोकमत से प्रतिष्ठित किया। विविध क्षेत्रों से काव्य विषय ग्रहण करते हुए भी वे पौराणिकता के उपासक रहै। पौराणिक विषय उनके लिए सर्वप्रिय थे। उनके सभी ग्रंथों के मूल में केवल एक ही विचारधारा सशक्त रूप में काम कर रही थी। गौरवपूर्ण अतीत के चित्रण द्वारा अवनति में पड़े हुए निराश भारतीयों को ऊपर उठाना। वह प्रवृत्ति प्रारम्भ से अन्त तक उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान रही।

9.4 गुप्त- काव्यकला

9.4.1 भावपक्ष

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की काव्य साधना का प्रारम्भ और विकास द्विवेदी युग के उद्भव और विकास के साथ-साथ होता है। हिन्दी साहित्य को प्रतिष्ठित एवं समृद्ध करने में गुप्त जी का

योगदान अद्वितीय है। उनके काव्य में स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। अतीत का गौरव गान करने के साथ-साथ उन्होंने अंधविश्वासों एवं रूढ़िगत धारणाओं को समाज से पूर्ण रूप से अलग करने का आह्वान अपने साहित्य के माध्यम से किया है। भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय, सामाजिक भावनाओं का सजीव निरूपण उनके काव्य की निजी विशेषता है।

1.भक्ति भावना- गुप्त जी का जीवन एवं काव्य साधना, हिन्दु सनातन धर्म एवम् वैष्णव भक्ति संस्कारों से ओत-प्रोत है। गुप्त जी ने भगवान राम के आदर्श को लेकर साकेत जैसे महाकाव्य की रचना की। वे राम और कृष्ण दोनों के स्वरूप की आराधना करते हैं। उनकी दृष्टि में निर्गुण सगुण दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है-

"हो गया निर्गुण सगुण साकार है
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।"

उनके राम घट-घट के वासी राम है। उनके नाम पर ही कोई महाकवि बन सकता है-

"राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है।"

गुप्त जी के राम ईश्वर हैं वे तुलसी के राम की तरह मर्यादा पुरूषोत्तम है। वे कण-कण में बसने के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व का उद्धार करने वाले अवतारी महापुरूष है।

2.राष्ट्रीय भावना- आधुनिक युग के कवियों में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत काव्य लिखने में मैथिलीशरण गुप्त का स्थान सर्वोपरि है। उनका सम्पूर्ण काव्य राष्ट्रीय भावना प्रधान काव्य है। स्वदेश प्रेम, अतीत का गौरव गान, स्वतंत्रता के लिये उद्बोधन, जन-जन के कल्याण एवं समानता का भाव उनके काव्य में कूट-कूट कर भरा हुआ है। मातृभूमि का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-

"नीलाम्बर परिधान, हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।"

कवि देश की वर्तमान दशा से दुःखी होकर अतीत का गुणगान करता है। देश के युवकों और नागरिकों का देश के उत्थान के लिए आह्वान करता है-

"हम कौन थे क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।"

गुप्त जी की रचनाओं में गाँधीवादी विचारधारा परिलक्षित होती है। उन्होंने गाँधीवाद से प्रभावित होकर लोक कल्याण के लिए जन सेवा का आह्वान किया है।

"न तन सेवा, न मन सेवा
न जीवन और धन सेवा
मुझे है इष्ट जन सेवा
सदा सच्ची भुवन सेवा।"

गुप्त जी नारी समाज, किसान, मजदूर, दलित, दीन एवं निम्न स्तर के लोगों के प्रति विशेष सहानुभूति रखते हैं। वे राष्ट्रीय उत्थान के लिए सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए मानव-मानव को एक मानने की भावना अभिव्यक्त करते हैं।

हिन्दू-मुसलमान दोनों को राष्ट्रीय एकता के लिए समान महत्व देते है। उनके शब्दों में-

"हिन्दू मुसलमान दोनों छोड़े
अब यह विग्रह की नीति।"

3.मानवतावादी धारणा- मैथिलीशरण गुप्त 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को मानने वाले महाकवि हैं। उनका काव्य मानवतावादी भावनाओं से ओत-प्रोत है। वे सम्पूर्ण मानवता के कल्याण की कामना करते हैं-

"किसी एक सीमा में बँधकर रह सकते हैं प्राण?
एक देश का, अखिल विश्व का तात चाहता हूॅ कल्याण।"

4.भारतीय संस्कृति का निरूपण- भारतीय संस्कृति को अपने काव्य में निरूपित करने में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को अद्वितीय सफलता मिली है। उनकी 'भारत भारती से लेकर अन्त तक की रचनाओं में भारतीय संस्कृति के अनेक चित्र प्रतिम्बिबित हुए है।

5. प्रकृति चित्रण- गुप्त जी ने मानव प्रकृति के चित्रण के साथ-साथ वाह्य प्रकृति के चित्रण में विशेष सफलता प्राप्त की है। उन्होंने प्रकृति के जो सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं वे अतीव आकर्षण एवं भावपूर्ण हैं। अलम्बन, उद्दीपन मानवीकरण आदि अनेक रूपों में उनके काव्य में प्रकृति चित्रण परिलक्षित होता है। पंचवटी का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है-

"चारू चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही है जल-थल में
श्वेत वसन-सा बिछा हुआ है, अवनि और अम्बर तल में
पुलक प्रकट करती है धरती, हरित तृणों की नोकों से
मानो झूम रहै हैं तरू भी, मन्द्र पवन के झोंको से।"

उनके प्रकृति चित्रण के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि उनके काव्य में प्रकृति चित्रण स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत हुआ है। उन्होंने प्रकृति चित्रण के लिए प्रकृति चित्रण नहीं किया है। वे मूलतः मानवतावादी कवि हैं। प्रकृति चित्रण उनके काव्य में गौण रूप में प्रस्तुत हुआ है।

6.समन्वयवादी कवि- महाकवि मैथिलीशरण गुप्त एक महान समन्वयवादी कवि है। उनके काव्य में प्राचीन एवं नवीन भावनाओं का समन्वय हुआ है। गुप्त जी ने अपने काव्य में त्याग, भोग, मुक्ति और बंधन, संग्रह और अपरिग्रह कर्म ज्ञान एवं भक्ति, नवीन एवं प्राचीन का स्वाभाविक समन्वय किया है। वे हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, इसाई, सभी धर्मों की भावनाओं को समान रूप से अभिव्यक्त करने वाले श्रेष्ठ कवि है। भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन भारतीय आदर्शों के पुजारी होते हुए भी कविवर गुप्त नवीन भावनाओं को नवीन आदर्शों को स्वीकार करने के लिए उद्बोधन करते हैं, जो पुरानी जीर्ण-शीर्ण भावनाएँ है उनके स्थान पर नवीनता को ग्रहण करने का संदेश देते है।

"एक समय जो ग्राह्य दूसरे समय त्याज्य होता है"

7.नारी भावना- नारी के प्रति गुप्त जी का बड़ा ही उदान्त दृष्टिकोण है। वे नारी को समाज कल्याण की आधारशिला मानते है। समाज में नारी की करूण अवस्था पर उन्होंने अनेक चित्र उपस्थित किये हैं। उनका काव्य 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की भावनाओं से ओत-प्रोत है। द्वापर में उन्होंने नर से भी अधिक नारी को महत्व दिया है-

"एक नहीं दो-दो मात्रायें नर से भारी नारी।"

8.रस निरूपण- गुप्त जी ने सभी रसो का अपने काव्य में निरूपण किया है। वे रससिद्ध कवि है। नौ रसों का सुन्दर समायोजन उनके काव्य की विशेषता है। 'रंग में भंग, सिद्धराज, जयद्रथ वध, आदि कृतियों में वीर रस मूर्तिमान हो उठा है। करूण रस भी उनके काव्य में व्यापकता से प्रस्तुत हुआ है। रसराज श्रृंगार के दोनों पक्षों का चित्रण उन्होंने किया है। संयोग रस की अपेक्षा वियोग श्रृंगार के चित्रण में उन्हें विशेष सफलता मिली है। उन्होंने षटऋतुओं के माध्यम से उर्मिला के वियोग का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। उदाहरण दृष्टव्य है-

"मानस मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाप
जलती सी उस विरह में, बनी आरती आप।"

गुप्तजी ने अपने काव्य में श्रृंगार रस की व्यापक चित्रपटी प्रस्तुत की है। इसके दोनों ही रूप संयोग तथा विप्रलम्भ उभरे हैं। लक्ष्मण-उर्मिला संवाद में तथा उनके क्रियाकलापों में संयोग श्रृंगार बड़ा सजीव बन पड़ा है-

"सिमट सी सहसा गयी प्रिय की प्रिया,
एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया
किन्तु धाते में उसे प्रिय ने किया,
आप ही फिर प्राप्य अपना ले लिया,"

9.4.2 कला पक्ष

गुप्तजी भावों की अभिव्यक्ति कला के कुशल कलाकार है। उनके काव्य का कला पक्ष भी भाव की भाँति समृद्धशाली है। उनके काव्य में कला-पक्ष के प्रमुख तत्व अलंकार, भाषा और छन्द का सुन्दर रूप से निर्वाह पाया जाता है।

अलंकार योजना- गुप्तजी ने काव्य में अलंकारों के महत्व को स्वीकृत करते हुए अपनी कविता कामिनी को अलंकारों से सजाया है, उनका रूप श्रृंगार किया है। स्वाभाविक अलंकारों के वह विरोधी नहीं, और नवम् सर्ग तो अलंकार प्रधान ही है। भाषा में जो अलंकार स्वतः आ गये है, उन्हीं को उन्होंने सहज रूप से ग्राह्य कर लिया है। श्लेष का उदाहरण दृष्टव्य है-

"करूणे क्यों रोती है उतर में और अधिक तू रोई
मेरी विभूति है जो भवभूति कहें क्यों कोई।"

शब्दालंकारों में गुप्तजी को अनुप्रास अत्याधिक प्रिय है। अनुप्रासात्मक शैली में उनका भाषा का आलंकारिक सौन्दर्य देखते ही बनता है।

"चारू चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल थल में,"

जहाँ अर्थ के कारण काव्य में चमत्कार की सृष्टि होती है। वहाँ अर्थालंकार होता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक आदि प्रमुख अर्थालंकार है। जिनका गुप्तजी ने प्रयोग किया है।

उपमा- "कन्धे ढककर कच छहर रहै थे उनके
रक्षक तक्षक से लहर रहै थे उनके।"

रूपक- "सखी नील नभसरसे उतरा यह हंस अहा, तरता-तरता
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता-चरता।"

उत्प्रेक्षा-"रतनाभरण भरे अंगों में, ऐसे सुन्दर लगते थे ज्यों प्रफुल्ल बल्ली पर सो-सो, जुगनू

जगते थे“

भ्रान्तिमान- “नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का भ्रान्ति से,
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है?
सोचता है अन्य शुक यह कौन है?“

इन प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त गुप्तजी ने अपने काव्य में आधुनिक युग में प्रचलित नवीन अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

मानवीकरण- “अरूण संध्या को आगे ढेल,
देखने को कुछ नूतन खेल
सजे विधु की बेदी से भाल,
यामिनी आ पहुँची तत्काल।“

विशेषण विर्पयय- “शशि खिसक गया
निश्चिन्त हँसी हँस बाकी“

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तजी ने नवीन और प्राचीन सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। परन्तु उनका झुकाव प्राचीन अलंकारों की ओर ही रहा है और इनमें भी उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलंकारों को अपेक्षाकृत अधिक अपनाया है।

भाषा- गुप्तजी खड़ीबोली भाषा के संस्कारक और उद्धारक माने जाते हैं। उनकी काव्य भाषा का विकास ही खड़ीबोली भाषा के विकास का इतिहास है। उनकी भाषा खड़ीबोली है जिसका उत्कृष्टतम रूप ‘साकेत’ में दिखायी देता है। भारतीय संस्कृति के पुजारी होने के कारण गुप्त जी की भाषा में संस्कृत पदावली की प्रधानता है। परन्तु हरिऔध जी की तरह संस्कृत शब्दों के प्रति विशेष आग्रह नहीं है। संस्कृत शब्दों में भी उसके तद्भव रूपों की प्रधानता है। प्रायः उन्होंने संस्कृत शब्दों को भी खड़ीबोली की प्रकृति के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है। यथा- लाक्ष्यमण्य, मनोज्ञता, सारल्य, आरूण्य आदि।

गुप्तजी की भाषा में सरलता, सहजता, मधुरता, ओजमयता, चित्रोपमता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता आदि गुण सर्वत्र विद्यमान हैं। गुप्तजी ने लोकाक्तियों और मुहावरों का भी सफल प्रयोग किया है। गुप्तजी की भाषा खड़ीबोली का सहज प्रकृत रूप परिलक्षित होता है। वह सरल स्वच्छ व प्रसाद गुण से युक्त है। गुप्तजी की भाषा में कलात्मकता भी यथेष्ट रूप से पाई जाती है। शब्दों के माध्यम से गुप्त जी पात्र, दृश्य, आदि का चित्रण करने में, उनका चित्र सा खड़ा कर देने में अत्यन्त सिद्धहस्त हैं-

**“उलटा लेट कुहनियों के बल, धरे वेणु पर ठोड़ी।
कनू कुँज में आज अकेला, चिन्ता में है थोड़ी।“**

भाषा में निखार लाने, अर्थक्ता बढ़ाने के लिए मुहावरों लोकोक्तियों का भी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। पैर पलोटना, मान-मनाना, आँसू पीना, आहें भरना आदि सुन्दर मुहावरों के प्रयोग बन पड़े है।

शब्द शक्तियाँ (अ) “रूखा-सूखा खान पान भी इष्ट है
भाता किसको सदा मिष्ट ही मिष्ट है।“- अभिधा

(ब) ''जहाँ हाथ में लोह वहाँ पैरों में सोना''- लक्षणा

(स) ''क्या क्षण-क्षण में चौंक रही मैं''- व्यंजना

शैली- शैली ही काव्यात्मक आकर्षण की कारयित्री तथा कवि के व्यक्तित्व की सहज परिचारिका होती है। गुप्तजी का काव्य विषय की दृष्टि से विविधतामय है। इसलिए उन्होंने अनेक काव्य शैलियों का प्रयोग किया है। साकेत की शैली गीतात्मक या नाट्यात्मक न होकर प्रबन्धात्मक है। इसमें वर्णन को महत्व दिया जाता है, फिर भी कवि कहीं-कहीं गीतों का सहारा लेकर उसे नाटकीय रूप देता है। वैसे इसमें शैलीगत सभी गुण दिखायी देते है। प्रेम रस-वर्णन में वह सरस व सुकुमार हैं तो युद्धादि के वर्णन में वेदना-प्रचण्डता तथा प्रखरता से परिपूर्ण हो जाती है और उर्मिला वियोग-वर्णन में वेदनामय करूण धारा से सित्त हो उठती है तो दशरथ मरण के पश्चात नगर वर्णन के अवसर पर अपार विषादमयता की भूमिका बनकर प्रस्तुत होती है। गहन विषाद युक्त शैली दृष्टव्य है।

''ये गगन चुम्बित महा प्रासाद
मौन साधे हैं खड़े सविषाद
शिल्प कौशल के सजीव प्रमाण
शाप से किसके हुए पाषाण।''

1. **प्रबन्धात्मक शैली**- कवि की यह प्रिय शैली है। इसका प्रयोग 'साकेत', 'जयद्रथ वध', 'सिद्धराज', 'नहुष' और 'विष्णुप्रिया' में किया है।
2. अलंकृत उपदेशात्मक शैली- प्रबन्धकाव्यों में संवादों का विशेष महत्व होता है। इससे काव्य में स्वाभाविकता, गतिशीलता, रसात्मकता आदि का विकास होता है इस शैली का प्रयोग 'साकेत', 'गुरूकुल' व 'हिन्दू' में किया है।
3. विवरणात्मक शैली- इस शैली का प्रयोग 'भारत भारती' एवं 'पंचवटी' में किया गया है।
4. गीति शैली- इस शैली का प्रयोग 'झंकार', 'साकेत', 'यशोधरा' एवं 'विष्णुप्रिया' काव्यों में हुआ हो।
5. आत्मप्रधान शैली- इस शैली का प्रयोग 'द्वापर' में किया गया है।
6. छन्द विधान- छन्द विधान कविता के लिए आवश्यक है। कवि ने वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। वार्णिक छन्दों में वर्णों का तथा मात्रिक छन्दों में मात्राओं की गणना की जाती है। वार्णिक छन्द तो पूर्णतया शास्त्रीय पद्धति पर लिखे गये है। जबकि मात्रिक छन्दों में से कई छन्द ऐसे हैं, जिनको शास्त्रीय न कहकर कवि निर्मित कहा जा सकता है। 'साकेत' में कवि ने प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द अपनाया है तथा अन्त में छन्द परिवर्तित कर दिया है। नवम् सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। सभी छन्द लय गति में शुद्ध है, परन्तु कहीं-कहीं वार्णिक छन्दों में अवश्य दोष आ गया है।

9.5 साकेत- कथावस्तु

प्रथम सर्ग के आरम्भ में कवि सरस्वती वन्दना करता है और फिर संकेत रूप में राम के जन्म लेने

की बात कहता है। फिर अवतार लेने के कारण पर प्रकाश डालता है कि भक्तवत्सल भगवान ने संसार को मार्ग दिखाने, भू-भार को दूर करने, जनदृष्टियों को सफल बनाने तथा शिशिरमय हेमन्त के समान असुर शासन का अन्त करने के लिए तथा बसन्त के समान सुखमय राम-राज्य स्थापित करने के लिए ही मानवी(कौशल्या) का पयपान किया है।

तदुपरान्त कवि साकेत नगरी की शोभा-समृद्धि का वर्णन करता है। राजा दशरथ के चार पुत्र- राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न हैं और अब उन्हें कुछ और पाने की अभिलाषा नहीं है। मात्र एक अभिलाषा है कि शीघ्र ही राम का अभिषेक हो जाये। इसके लिए तैयारियाँ की जा रही हैं।

इसी समय लक्ष्मण आ जाते हैं और परस्पर हास-परिहास आरम्भ हो जाता है। उर्मिला को लक्ष्मण द्वारा सूचना मिलती है कि कल अपार आनन्द का पर्व जुड़ने वाला है, राम का भव्य राज्याभिषेक होगा। काफी समय प्रेमालाप होता है और फिर लक्ष्मण कर्त्तव्य-पालन हे तु विदा लेते हैं।

द्वितीय सर्ग में राम-राज्याभिषेक की चर्चा ही चारों ओर है। रानियों सहित सभी परिजन-पुरजन हर्षविभोर हैं। किन्तु मन्थरा को यह कुछ नहीं सुहाता, उसे इसके पीछे किसी षड्यन्त्र की छाप दिखायी देती है। वह कैकेयी के पास गयी और उदास मुख से उसे नमन किया। सभी हर्षोल्लास में डूबे हुए थे। उसे उदास देखकर कैकेयी ने कारण पूछा तो ईर्ष्यालु मन्थरा ने सन्देह जाग्रत करने वाले षड्यंत्र का संकेत किया। मन्थरा तो अपनी बात कहकर चली गयी, पर रानी के मन में उथल-पुथल मच गयी। बार-बार उनका मन कचोटने लगा कि आखिर भरत को क्यों नहीं बुलाया!

उधर राजमहलों में अभिषेक के साज सजाये जाते थे और इधर कैकेयी सौतिया डाह में जल रही थीं। फिर दशरथ आते हैं और अपनी स्त्रैणता के शिकार होते हैं। कैकेयी कभी के माँगे अपने दोनों वरदान प्राप्त करती है-

> नाथ मुझको दो यह वर एक-
> भरत का करो राज्य-अभिषेक।
> दूसरा सुन लो हो न उदास,
> चतुर्दश वर्ष राम वनवास।

दशरथ मर्माहित होते हैं। उनकी ऊहापोह तथा मरणान्तक वेदना में रात व्यतीत होती है तथा मृत्यु की भयानक छाया लिये नया प्रभात होता है।

तृतीय सर्ग में लक्ष्मण अपनी प्राणों की प्राण उर्मिला से विदा लेकर राम के पास पहुँचे और फिर पिता की वन्दना के लिये राम के साथ चल दिये। राम ने स्थिति जाननी चाही, दशरथ तो कुछ बोल ही नहीं पाये, कैकेयी ने हीं उन्हें बताया। राम स्थिति समझ गये, पिता की मनोव्यथा स्पष्ट हो गयी। उन्होंने तत्क्षण कहा- "इतनी-सी बात के लिए इतनी चिन्ता! भरत में और मुझमें भेद ही क्या है। भरत यहाँ धर्म-पालन करें और मैं वन में धर्म-पालन करूँगा।" यह सुनकर दशरथ पुनः मूर्छित हो गये। परन्तु लक्ष्मण के तन-बदन में आग लग गई, परन्तु राम ने उन्हें शान्त होने को कहा तो लक्ष्मण और भी उबल पड़े। किसी प्रकार लक्ष्मण शान्त होते हैं, पर वन जाने को उद्धत राम का साथ नहीं छोड़ते, स्वयं भी राम के साथ वन जाने को तैयार हो जाते हैं। उन्होंने उनसे पिता को धैर्य बँधाने को कहा और फिर माँ से आज्ञा लेने कौशल्या के भवन की ओर बढ़े।

चतुर्थ सर्ग में पवित्रता की मूर्ति कौशल्या देवार्चन में लगी हुई थीं और सीता पास ही खड़ी सब आवश्यक सामग्री उन्हें प्रदान करती जाती थीं, तभी राम ने चरण वन्दन कर माँ का आशीर्वाद प्राप्त किया। राम सुमित्रा को शान्त करते हैं तो सीता वन जाने का संकल्प करती हैं। लक्ष्मण उर्मिला को घर रहने का आदेश देते हैं और उर्मिला प्रिय पथ में बाधक न बनने के लिए अपने उर पर अवधि शिला का भार रख लेती है। उर्मिला तो प्रिय-वियोग की कल्पना करके वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ी। उन्हें गिरते देख लक्ष्मण ने कस कर अपने नेत्र मूँद लिये। इस पर राम ने पुनः लक्ष्मण को समझाया, पर वह अपने निश्चय पर अटल रहै , तीनों वन के लिये चल दिये।

पंचम सर्ग में राम ने गुरूवर वशिष्ठ को प्रमाण किया और आशीर्वाद लेकर वन की ओर-लक्ष्मण, सीता के साथ चल दिये। सभी कैकेयी की निन्दा कर रहै थे। राम प्रजा को समझाने लगे, पर प्रजा राम के साथ जाने को अटल। निषादराज ने तीनों वन-पथिकों का स्वागत किया। प्रभात में सब गंगा पार हुए। तीर्थराज प्रयाग पहुँचकर भारद्वाज मुनि के दर्शन किये। तत्पश्चात् महर्षि बाल्मीकि के दर्शनार्थ चित्रकूट के गहन अरण्य में पहुँचे। लक्ष्मण ने कुटी छायी और वहाँ के वासियों के उल्लास में राम सहायक बने। वनचारियों का स्वागत राम ने सहर्ष स्वीकार किया।

षष्ठ सर्ग में कथा पुनः अयोध्या की ओर लौटती है। मूर्छिता उर्मिला को उसकी सखी सुलक्षणा धैर्य बँधाती है, पर उसका उद्वेलित मानस नहीं मानता, वह बारम्बार मूर्छित होती जाती है और तीनों माताओं की दयनीय दशा तो अवर्णनीय है, अपने पति की शोचनीय दशा के कारण रो भी नहीं पातीं। दशरथ को सुमन्त्र की प्रतीक्षा है- उन्हें अभी तक विश्वास नहीं है कि राम 14 वर्ष के लये निश्चित रूप से चले गये है। उन्हें आशा है कि पितृ भक्त राम उनकी शोचनीय अवस्था की सूचना सुमन्त्र द्वारा पाकर तुरन्त लौट आयेंगे। किन्तु जब सुमन्त्र आते हैं तो अकेले ही और जब राम का अन्तिम समाचार देते हैं तो जैसे दशरथ की समस्त व्यग्रता बाँध तोड़कर निकल पड़ती हैं वह ‘हा राम, राम लक्ष्मण सीते’ कहते हुए अपने प्राण त्याग देते है।

सप्तम सर्ग में भरत शत्रुध्न के साथ आ रहै हैं किन्तु उनके मन में उल्लास नहीं है। उन्हें सर्वत्र एक अवसाद की छाया दिखायी देती है। वह दूतों से पूछते हैं, पर वे कोई उत्तर नहीं देते। जब उन्हें राम के वन-गमन और पिता के निधन का समाचार मिलता है तो वे चीत्कार कर उठते हैं। शत्रुघ्न ने क्रोधावेग में होठ काट लिये। कैकेयी द्वारा मातृत्व जनित वात्सल्य प्रकट करने पर वह उसे अनेक कठोर वचन कहकर कैकेयी की भर्त्सना करने लगे। माँ कौशल्या का निष्कपट हृदय भरत की आर्त वाणी सहन नहीं कर पाता, वह उन्हें अपने वक्ष से लगा लेती हैं और ‘निष्पाप’ कहकर सम्बोधित करती है। उन्हें लगता है कि भरत के आते ही उनकी सूनी गोद भर गयी है। फिर वह भरत को राज्य-भार सम्भाल कर पिता को जलाँजलि देने तथा अन्त्येष्टि करने को कहती हैं। इसी प्रकार रात व्यतीत होती है।

अष्टम सर्ग में राम चित्रकूट में एक वृक्ष की छाया में पड़ी शिला पर बैठे हैं, पर्णकुटी में सीता गुनगुनाती हुई काम कर रही हैं और राम प्रणयप्राणा सीता को एकटक मुग्ध दृष्टि से देखे जा रहै है। उन्हें भरत के आगमन की सूचना मिलती है। लक्ष्मण कहते है कि भरत दल-बल के साथ आक्रमण करने आ रहै हैं, पर राम का कथन है कि वह अपनी माँ का परित्याग करके समस्त अयोध्यावासियों के साथ आ रहै है। तभी भरत आते हैं। राम और भरत गले मिलते है। भरत-शत्रुध्न उनके चरणों में लोट जाते है। इसके पश्चात् सभा जुड़ती है। भरत राम से घर लौट चलने

का आग्रह करते है। वह अपनी ग्लानि में मरे जा रहे है। कैकेयी भी राम से घर लौटने का अनुरोध करती है। अन्त में, कैकेयी राम से घर चलने की प्रार्थना करती है। राम उससे प्रभावित अवश्य होते हैं, पर अपना निर्णय नहीं बदलते। तब भरत यह प्रस्ताव रखते हैं कि भरत वनवास भोग लें और राम प्रजाहित में शासन करें, पर धर्मव्रती राम किसी भी प्रकार विचलित नहीं होते। अन्त में उनकी चरण-पादुका पर ही तर्क उतरता है।

नवम सर्ग में उर्मिला के विरह की मार्मिक उक्तियाँ हैं। उर्मिला का विरह अवधि-शिला के भार से दबा हुआ था। वियोग के नाना पक्ष उभरे हैं।

दसवें सर्ग में उर्मिला सरयू नदी के तट पर बने प्रासाद की खिड़की पर खड़ी होकर नीचे छिटकी चन्द्रिका को देख रही है और अतीत के चित्र दोहरा रही है।

एकादश सर्ग में भरत राम की चरण पादुकाएँ सोने के मन्दिर में रखकर पुजारी के रूप में स्वयं बैठे हैं। उनका रूप भी वनवासी राम की तरह है। अन्तर यही है कि उनके चेहरे पर उल्लास के स्थान पर अवसाद व्याप्त हैं। वह ध्यान में इतने लीन हैं कि उन्हें अपनी पत्नी मांडवी के आने की भी आहट सुनायी नहीं देती।

इसी समय शत्रुघ्न आकर अयोध्या के समाचार देकर बताते हैं कि एक व्यवसायी द्वारा उन्हें राम के बारे में ज्ञात हुआ है। इसी समय उनकी दृष्टि आकाश की ओर जाती है, वहाँ हनुमान जाते दिखायी देते है। नाक-कान काटे जाने तथा खरदूषण वध के उपरान्त शूर्पणखा का रावण के समक्ष रूदन, रावण द्वारा सीता का हरण, जटायु संस्कार, कबन्धासुर वध, शबरी का आतिथ्य ग्रहण, सुग्रीव का मिलन, बालि वध, हनुमान का समुद्र-लंघन, सीता से भेंट, विभीषण शरणागति, राम-रावण युद्ध, कुंभकर्ण वध और लक्ष्मण शक्ति- यह सम्पूर्ण कथा हनुमान संक्षेप में सुना देते है। तदुपरान्त संजीवनी लेकर व्योममार्ग से उड़ जाते हैं।

द्वादश सर्ग में हनुमान तो लक्ष्मण के प्राण बचाने के लिए संजीवनी लेकर चले गये, पर अयोध्यावासी व्यग्र हो उठते हैं। शत्रुध्न भी जाने की तैयारी करते हैं, पर कौशल्या उन्हें रोकना चाहती है तो वीर क्षत्राणी सुमित्रा उन्हें आदर्श पथ पर अग्रसर होने का आदेश देती है। कैकेयी भी युद्धस्थल पर जाने को तैयार हो जाती है, पर भरत रोकते हैं और सेना सजाकर चलने को सन्नद्ध होते हैं।

तदुपरान्त सैन्य संगठन कर लंका पर आक्रमण होता है, रावण भी पूर्ण शक्ति से आक्रमण करता है, वह राम पर आक्रमण करना चाहता है, पर लक्ष्मण उसे लौटने का अवसर ही नहीं देते। यज्ञ निमग्न मेघनाद पर हनुमान के साथ लक्ष्मण भयंकर आक्रमण कर युद्ध में उसे मार डालते हैं। अंत में रावण भी मारा जाता है।

रावण वध देखकर समस्त अयोध्यावासी हर्षित हो जाते हैं। वे राम के स्वागत की तैयारियाँ करते हैं। इसी समय हनुमान रामागमन की सूचना देते हैं, भाव-विह्वल भरत राम से मिलने जाते है, दोनों का मार्मिक मिलन होता है और फिर उन दोनों के मधुर मिलन के साथ कवि 'साकेत- की कथा समाप्त कर देता है।

9.6 साकेत- पाठ एंव व्याख्या

दो वंशों में .... विदेही।

सन्दर्भ- प्रस्तुत पंक्तियाँ मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित महाकाव्य ‘साकेत’ से ली गयी है।

प्रसंग- महाकाव्य ‘साकेत’ के अष्टम सर्ग की अन्तिम पंक्तियों में वनवासी लक्ष्मण के चित्रकूट में उर्मिला के क्षणिक मिलन का दृष्टान्त दिया है। चित्रकूट में जब सभी मातायें और साकेत निवासी अन्य लोग भरत के साथ राम-लक्ष्मण, सीता से मिलने आते है उसके अनन्तर जनकपुरी से महाराज जनक भी उनसे मिलने आते हैं। महाराज जनक की महानता और उनकी पुत्रियों के गुणों का नवम् सर्ग के प्रारम्भ में इस प्रकार वर्णन किया गया है।

व्याख्या- राजा जनक के विलक्षण गुणों का वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं कि राजा जनक की जय हो जिन्होंने अपनी पवित्र लीला को रघु और निमि दोनों वंशों में प्रकट करके अपने विलक्षण गुणों से इन्हें गौरवान्वित किया, अर्थात निमिवंश में स्वयं जन्म लेकर और रघुवंश में अपनी पुत्रियों का विवाह करके दोनों वंशों का गौरव बढ़ाया, जिनकी पवित्र शीलवाली अथवा पुत्रों के समान शीलवाली पुत्रियां सौ पुत्रों से भी अधिक अपने वंश के गौरव को बढ़ाने वाली हैं, त्यागी पुरूष भी आकर जिनकी शरण में आकर आश्रय लेते हैं, जो आसक्तिहीन होकर भी गृहस्थी हैं, गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले हैं, राजा होकर भी योगी हैं, अत्यन्त धर्मात्मा है और सांसारिक विषयों से विमुख रहने वाले हैं।

शब्दार्थ- दो वंशों में- दो कुलों में, रघुकुल और निमिकुल में, पावनी-पवित्र, पूतशीला- 1.पवित्रशील वाली 2.पुत्रों के समान शीलवाली, अनासत्त-आसत्तिहीन, विदेही-सांसारिक विषयों से विमुख।

विशेष-

1. प्रस्तुत सर्ग का प्रतिपाद्य है उर्मिला का विरह वर्णन, उर्मिला राजा जनक की पुत्री है। राजा जनक के गुणों का वर्णन करके कवि ने प्रकारान्तर से उर्मिला के गौरव का वर्णन किया है।
2. यह पद मंगलाचरण है। मंगलाचरण ं में भव-बाधा आदि के हरण के लिए प्रार्थना की जाती है।
3. “सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियां शतशीला“ में उपमेय(पुत्रियों) का उपमान(पुत्र) से अधिक उत्कर्ष का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार।
4. ‘पूतशीला’ में पूत शब्द के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

विफल जीवन ....सुखसा रहा ।

प्रसंग- साकेत के नवम् सर्ग में राजा जनक के गुणों का वर्णन करने के बाद कवि भगवान राम के गुणों का वर्णन करने के कारण अपने कवि जीवन की सुखद अनुभूति का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

व्याख्या- प्रथम अर्थ- कवि समय रहते राम की वंदना न कर सका। अपनी इस दैन्य दशा पर प्रायश्चित करता हुआ वह कहता है, कि मेरा जीवन असफल होकर व्यर्थ ही व्यतीत हो गया। मुझे खेद है कि राम के चरण युगल की पूजा करके, उन्हें जल से पखारकर अपनी कविता के पदों को भी रसयुक्त नहीं बना पाया। है कविते! तुम्हारा क्षेत्र कठिन है, सत्काव्य की रचना सरल काम नहीं है, फिर भी कवि प्रतिभा के अभाव में केवल श्रम से ही काव्य की रचना करके मुझे उसी प्रकार सुख मिल रहा है, जिस प्रकार का सुख कवि प्रतिभा के द्वारा रची हुई कविता से मिलता।

भाव यह है कि यद्यपि सुखदायिनी कविता की रचना करने के लिए कवि प्रतिभा अपेक्षित है, तथापि राम विषयक कविता यदि श्रम से भी रची गई है तो वह भी उसी प्रकार का सुख देती है जिस प्रकार का सुख प्रतिभाजन्य कविता से मिलता है क्योंकि राम का चरित्र स्वयमेव सत्काव्य है।

द्वितीय अर्थ- गुप्त जी से पूर्व महर्षि बाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामायण लिखी, पर ये दोनों उर्मिला के आदर्श चरित्र को अंकित करना भूल गये। उर्मिला के प्रति इनका उपेक्षा भाव ही बना रहा। गुप्त जी इसी ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि यद्यपि उर्मिला का जीवन अत्यन्त उज्जवल था, परन्तु वह व्यर्थ ही गया, क्योंकि बाल्मीकि तुलसीदास की कविता के दो पद भी उससे सरस नहीं बने अर्थात इन दोनों महाकवियों ने इसके चरित्र को उजागर करने को दो पद भी नहीं लिखे। यद्यपि मुझमें इन दोनों कवियों की सी कवि प्रतिभा नहीं, तथापि उर्मिला के चरित्र का श्रमसाध्य कविता में वर्णन करके भी में सहज कविता का सा आनन्द प्राप्त कर रहा हूँ।

शब्दार्थ-विफल-असफल, ... 1. रस से युक्त 2. जल से युक्त

दो पद-कविता के दो पद, राम के दो चरण, तव भूमि- तुम्हारा क्षेत्र, तुम्हारी रचना।

विशेष-

1. "कठिन है कवितेः तव भूमि ही, पर यहॉ श्रम ही सुख रहा" से कवि का यह काव्य शास्त्रीय सिद्धान्त स्पष्ट है कि प्रतिभाजन्य कविता ही आनन्ददायिनी होती है, तथापि महदुद्देश्य के लिए लिखी गई श्रमसाध्य कविता भी उतना ही आनन्द देती है।
2. 'विफल' सरस, पद के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।
3. पर यहॉ श्रम भी सुख-सा रहा में साधारण धर्म लोप होने से धर्मलुप्तोपमा अलंकार।

वरूणे .... कहै कोई।

प्रंसग- 'साकेत' के नवम् सर्ग में सर्ग के प्रारम्भ में कवि उर्मिला की विरह वेदना का वर्णन करने से पूर्व विरह वेदना एवं करूणा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहते है।

व्याख्या- है करूणे! तू क्यों रोती है? भवभूति के 'उत्तररामचरित' में तो तू पहले ही बहुत रो चुकी है। यह सुनकर करूणा उत्तर देती है कि मैं इस कारण रो रही हूँ कि जो विरह भाव मेरी विभूति है, उसे संसार का ऐश्वर्य या शिव की भस्म या भवभूति कवि को ही इसका अंतिम कवि क्यों माना जाये?

कवि इन पक्तियों में अपने द्वारा वर्णित विरह, वेदना का औचित्य बता रहा है। वह मानता है कि यद्यपि भवभूति कवि ने विरह वेदना का इतना सांगोपांग वर्णन किया है कि पूर्ववर्ती कवियों के लिए कुछ कहने को प्रायः बचा ही कुछ नहीं है, तथापि यह भाव तो अनन्त है, व्यक्ति विशेष की अपनी-अपनी विरह वेदना और अपना-अपना रूप होता है, यह भाव संसार व्यापी है। शिव की भस्म की भॉति कल्याणकारी भी है। अतः इसे तुच्छ या शांत मानना उचित नहीं है इसलिए विरह वेदना का जितना वर्णन किया जाये उतना ही कम है।

शब्दार्थ- विभूति-ऐश्वर्य, भवभूति- 1. संसार का ऐश्वर्य 2. शिव की भस्म 3. भवभूति नामक कवि जो करूण भाव के मूर्धन्य कवि माने जाते हैं और जिनका काव्य 'उत्तररामचरित' करूणा भाव का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

विशेष-

1. इन पक्तियों में कवि ने विरह वेदना से सम्बद्ध अपने विचार व्यक्त किये हैं। कवि के अनुसार विरह वेदना अनंत, संसार व्यापी और कल्याणकारी भाव है।

2. ‘करूणा’ का चेतन रूप में वर्णन होने से मानवीकरण अलंकार।

3. ‘उत्तर’ और ‘भवभूति’ पदों द्वारा उत्तररामचरित और भवभूति कवि के नाम का बोध होने से मुद्रा अलंकार।

अवध को अपनाकर ....व्रत ले लिया।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में राम और भरत के महान त्याग का प्रतिपादन करते हुए कवि कहते हैं-

व्याख्या- अयोध्या को त्याग से अपनाकर राम ने वन को भी तपोवन के समान सुख देने वाला बना दिया। भाव यह है- राम ने सहर्ष राजसिंहासन का त्याग कर दिया। उनके इस अपूर्व त्याग ने अयोध्यावासियों को बहुत अधिक प्रभावित किया। इस प्रकार अपने त्याग के द्वारा राम ने अयोध्यावासियों का हृदय जीत लिया और भरत ने राम के प्रेम के कारण राजभवन में रहकर भी वन-निवासी योगियों का सा जीवन बिताने लगे।

शब्दार्थ- तपोवन- तपोवन के समान सुख देने वाला, अनुराग- प्रेम

विशेष-

1. “अवध को अपनाकर त्याग से“ में लक्षण शब्द शक्ति है, क्योंकि ‘अवध’ से तात्पर्य ‘अवध निवासियों’ से है।
2. राजभवन को पाकर भी भरत ने अपना जीवन वीतरागियों का-सा बिताया। इसका वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने भी किया है।
3. ‘अवध को अपनाकर त्याग से’ में अर्थ के विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।
4. ‘वन तपोवन सा प्रभु ने किया’ में ‘वन’ शब्द की सार्थक और निरर्थक आवृति होने से यमक अलंकार।

वेदने तू भी .... प्राणधनी।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में उर्मिला के द्वारा विरह वेदना के महत्व को प्रतिपादित किया है। क्योंकि वेदना के कारण ही प्रेम का वास्तविक रूप निखरता है।

व्याख्या- उर्मिला वेदना के महत्व का प्रतिपादन करती हुई अपनी वेदना को सम्बोधित करती हुई कह रही है, कि “है वेदने! यद्यपि सारा संसार तेरी निन्दा करता है और तुझसे घृणा करता है, क्योंकि तू मेरी हितकारिणी बनी हुई है आज मैं तुझमें ही अपनी विशाल इच्छा को जान पाई हूॅं। अर्थात्, मुझे अपने प्रियतम से कितना अधिक प्रेम था, वह मैं वेदना के कारण ही जान सकी हूॅं। जिस प्रकार हीरे के टुकड़े से प्रकाश की किरणें निकलती है, उसी प्रकार तू मुझे नवीन आशा प्रदान करने वाली है। प्रेम में दृढ़ता लाकर प्रियतम के मिलन के लिए आशा बंधाने वाली है। अतः तू मेरे लिये हीरे के टुकड़े के समान प्रकाश देने वाली है। तू बाण की नोक के समान, मर्मांतक होकर भी मुझे प्रिय लगने वाली है। अतः तू मेरे हृदय को निरन्तर पीड़ित करती रह, ताकि मैं प्रिय के प्रति अपने प्रेम में शिथिल न हो जाऊँ, बल्कि सदैव उनका ध्यान करती रहूॅं। यद्यपि मेरा शरीर आँसुओं से भीगा हुआ रहता है, फिर भी यह ठंडा नहीं होगा, क्योंकि तू सूर्यकांतमणि के समान सदैव उसे गर्म बनाये रखेगी। भाव यह है कि वियोग-व्यथा का गहन भार

होते हुए भी ताज्जन्य वेदना के कारण मैं वियोग की इस लम्बी अवधि में जीवित रहँूगी और अन्त में प्रियतम का संयोग-सुख प्राप्त करूंगी। है वेदने! तू अभाव की इकलौती पुत्री है और अदर्शन तुम्हारी माता हैं अर्थात् प्रिय के अभाव में, उसे न देख सकने के कारण वेदना का जन्म होता हैं वास्तव में तेरी छाती ही स्तन के लिए उचित उपमा वाली है। भाव यह है कि जिस प्रकार माँ अपने वात्सल्य भाव के कारण अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है। उसी प्रकार तुम भी उसे अपनी छाती से लगा लेती हो, उसका हित करती हो। तुम वियोग रूपी समाधि हो, क्योंकि जिस प्रकार योगी समाधि में लीन होकर सारे संसार की आसक्तियों से मुक्त होकर, परब्रह्म में ही लीन हो जाता है, उसी प्रकार व्यथित व्यक्ति का हृदय केवल अपने प्रियतम में ही डूबा रहता है। संसार की और सब बातों को वह भूल जाता है। तू विलक्षण गुणों से युक्त है और ठीक बनी हुई है, अर्थात् लोग तेरी महत्ता को समझकर तेरी निंदा करते हैं। वरना अपने स्थान पर तेरा भी महत्व है। तेरे ही कारण मैं स्वयं को, प्रिय को और संसार को कभी आसक्ति से और कभी विरक्ति के भाव से देखूं। कहने का तात्पर्य यह है कि विरहिणी को कभी तो स्वयं से और अपने प्रियतम से और संसार से अत्यन्त लगाव का भाव हो जाता है और कभी-कभी इन सभी से अलगाव की भावना उत्पन्न हो जाती है। इन विरोधी भावनाओं का जन्म विरह वेदना के कारण ही होता है। है पत्थर (हीरे) की खान! तुझमें ही मुझे मन-सा माणिक्य मिला है। है सजनी! मैं तुझे तभी छोड़ूंगी जब मेरा प्रियतम मुझे मिल जायेगा। भाव यह है कि प्रियतम के दर्शन होने पर ही विरह वेदना का अन्त होगा।

शब्दार्थ- विशिख अनी- बाण की नोक, दृगम्बु सनी- आँसुओं से भीगी, तपन मनी-सूर्यकान्त मणि/संताप रुपी मणी, उपल खनी- मोतियों की खान।

विशेष-

1. इन पंक्तियों में कवि ने वेदना के महत्व को प्रतिपादित किया है। वेदना का जन्म प्रिय के विरह में होता है। अतः अभाव को वेदना का पिता और प्रिय के अदर्शन को जननी मानना बहुत उपयुक्त है।
2. वेदना का अनेक रूपों में वर्णन होने से उल्लेख अलंकार।
3. 'नई किरण छोड़ी है' मैं केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिश्योक्ति अलंकार।
4. 'हरि कनी', 'विशिख अनी', 'उपल खनी' में रूपक अलंकार।
5. 'मन सा मानिक' में उपमा अलंकार।

कहती मैं ....समझी थी गान।

प्रसंग- साकेत के नवम् सर्ग में उर्मिला की विरह वेदना बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। उर्मिला चातकी की विरह वेदना की मधुर आवाज सुनकर अपनी वेदना के सुख को अनुभूत करती हुई चातकी से कहती है।

व्याख्या- चातकी को सम्बोधित करते हुए विरहिणी उर्मिला कहती है, कि "है चातकी! यदि व्यथा से भरे हुए मेरी इन खारी आँसुओं की बूंदे तुम्हारे स्वर का मोल चुका सकती तो मैं तुमसे विनय करती कि तुम फिर से बोलो, अर्थात् अपने मधुर स्वरों में अपने प्रियतम का नाम लेकर मेरी विरह-वेदना को कम करो। मेरे ये खारे(व्यथापूर्ण) आँसू तो क्या, बहुमूल्य मोती भी तुम्हारे स्वरों की समता नहीं कर सकते, अर्थात् वे भी तुम्हारे प्रिय स्वरों का मूल्य नहीं चुका सकते। फिर

भी, मैं तुमसे विनय करती हूँ कि मेरे उपवन की इस झाड़ी में बैठकर अपने मधुर स्वरों से रस घोलो, आनन्द की वर्षा करो। जिस प्रकार कोई लज्जाशील नारी अपने प्रियतम की बातें सुनने के लिए आतुर होकर अपने कानों को खोलकर खड़ी हो जाती है और अपने प्रियतम की बातें सुनकर उसके पीले कपोलों पर लज्जा के कारण लाली दौड़ जाती है, उसी प्रकार मेरी संयोगावस्था की मधुर स्मृतियां अपने कानों को खोलकर उन्हें समेटने के लिए हृदय रूपी द्वार खोले हुए खड़ी हैं। देख तो सही, प्रियतम की बातों की सम्भावना से ही इनके विरह दुख के कारण पीले पड़े हुए कपोल लज्जा से लाल हो गये हैं। तुम्हारे मधुर स्वरों को सुनने की सम्भावना से ही मेरे अनेक स्वप्न स्वयं ही आन्दोलित होकर जाग उठे हैं, अर्थात् हृदय में अनेक पूर्व-स्मृतियां सजग हो उठी हैं। यद्यपि मेरा हृदय आन्दोलित हो उठा है, तथापि वाह्य जगत अभी भी मेरे लिये सूना बना हुआ है ये पृथ्वी और आकाश अभी भी मेरे लिए सूने बने हुए हैं। ऐसा लगता है, मानो वे अभी सोए हुए हैं। तुम चुप रहकर मुझे वेदना के सुख से वंचित न करो, अर्थात् विरह-वेदना में प्रियतम की बातें सुनकर जो सुख विरहिणी को मिला करता है उससे मुझे दूर न रखो। तुम अपने मधुर स्वरों को सुनाकर मेरे हृदय रूपी हिंडोले को हिलाओ, मेरे हृदय को आह्लाद से भरो, तुम्हे मेरे साथ सहानुभूति करनी भी चाहिए क्योंकि हम दोनों एक ही समान है- जो तुम्हारे स्वरों में प्रियतम की स्मृति से उत्पन्न आनन्द की क्रीड़ा है, वही मेरे हृदय में छिपी हुई है। कहने का भाव यह है कि जिस भाव को तुम अपने स्वरों में व्यक्त कर देती हो। उसी भाव को मैं अपने हृदय में चुपचाप छिपाये रखती हूँ। चातकी को सम्बोधित करती हुई विरहिणी उर्मिला कहती है चातकी! मुझको आज ही इस बात का ज्ञान हुआ कि जिसको आज तक मैं तेरा गीत समझती आई थी, वह वस्तुतः तेरा गीत न था, वरन रोना था जो गीत के रूप में तेरे हृदय से फूटा करता था।

शब्दार्थ- तोल- समता, श्रुति पुट- कान, पट-द्वार, पांडुकपोल- पीले गाल, भूगोल-खगोल- पृथ्वी और आकाश, कल कल्लोल- मधुर क्रीड़ा, भाव- ज्ञान, रूदन- रोना।

विशेष-

1. भाव और कला की दृष्टि से यह गीत गुप्त जी के उत्कृष्ट गीतों में से है। इसका भाव पक्ष जितना मार्मिक है कला पक्ष उतना ही सबल एवं समृद्ध है।
2. पूर्व स्मृतियों को विरहिणी नारी का रूप देना अत्यन्त भावात्मक तथा कल्पना की समृद्धि से पूर्ण है।
3. आँसूओं का पानी खारा होता है पर ‘खारी आँसू’ में ‘खारी’ शब्द का प्रयोग आँसुओं के अतिशय खारीपन का, उर्मिला के अपार विरह-व्यथा का सूचक है।
4. ‘कर सकते है मोती भी उन बोलों की तोल’ में प्रसिद्ध उपमान(मोती) की हीनता का वर्णन होने से व्यतिरेक अंलकार।
5. पूर्व स्मृतियों पर चेतना का आरोप होने से मानवीकरण अलंकार।
6. ‘वह तेरा रूदन था मैं समझी थी गान’ में सत्य बात को छिपाकर उसके स्थान पर असत्य बात का कथन होने से अपह्नुति अलंकार।

दरसो परसो .... जन के जन बरसो।

प्रसंग- साकेत के नवम् सर्ग में उर्मिला की वेदना का बड़ा करूण एवं मार्मिक प्रकाशन हुआ

है। बादलों के उमड़ने घुमड़ने से वेदना की तीव्रता और अधिक बढ़ जाती है। किन्तु उर्मिला का उदास हृदय सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण के लिए बादलों को सम्बोधित करते हुए कहता है।

व्याख्या- बादल को सम्बोधित करती हुई विरहिणी उर्मिला कह रही है कि "है बादल! तुम दर्शन दो, ताकि तुम्हें आकाश में उड़ते देखकर संतप्त पृथ्वी को वर्षा की आशा से सान्त्वना मिले। तुम स्पर्श करो, अर्थात् अपनी शीतल बूंदों को बरसाकर और उनसे प्रकृति के तपते पदार्थों एवं प्राणियों का स्पर्श करके उन्हें शीतलता प्रदान करो और बरसकर सारी प्रकृति को ग्रीष्म के भीषण जाल से मुक्त करो।" है बादल! तुम भीषण गर्मी से दुखी हुई प्रकृति(जगत) के नवीन यौवन हो, अर्थात जिस प्रकार शरीर में नवीन यौवन आने से नवीन स्फूर्ति और चेतना आ जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे आने से संतप्त प्रकृति ग्रीष्म की भीषणता से मुक्त होकर नवीन चेतना से भर जाती है। अतः बरस कर इसमें नवीन जीवन और चेतना का संचार करो। है बादल! तुम आषाढ़ के महीने में घुमड़कर आकाश में छा जाओ और पवित्र सावन के मास में बरस पड़ो। है बादल! तुम्हीं भादो मास के चित्रा और हस्ति नक्षत्र हो और तुम्हीं स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले बादल हो। अतः अपने इन उपयुक्त समयों पर बरसकर संसार को सुख दो, उसका कल्याण करो। जिस प्रकार आँखों में काजल लगाने से उसकी शोभा बढ़ जाती है, उसी प्रकार तुम आकाश में छाकर सृष्टि को शोभा सम्पन्न बना देते हो। तुम अपनी शोभा, शीतलता के कारण दृष्टि को प्रसन्न करने वाले हो, तुम गर्मी की भीषण तपन को नष्ट करने वाले हो। अतः तुम बरस कर सृष्टि की शोभा बढ़ाओं, दृष्टि को आनन्द दो और गर्मी की भीषणता को नष्ट करो। जिस प्रकार स्तन के अग्रभाग से दूध झरकर शिशु का पालन-पोषण करता है, उसी प्रकार तुम पानी बरसाकर सबका पालन-पोषण करने वाले हो, इसीलिए तुम आकुल और उदार जगज्जनी के स्तन के अग्रभाग के समान हो। अतः बरसकर अपनी सार्थकता सिद्ध करो। विरहिणी उर्मिला कहती है है बादल! तुम बीते हुए समृद्धि तथा सुख के दिनों को वापिस लौटाने वाले हो; अर्थात् ग्रीष्म ऋतु प्रकृति की जिस समृद्धि को झुलसा देती है तुम उसे पुनः लौटा देते हो, तुम मोरो में नाचने का आह्लाद उत्पन्न करो। है जागृति रूप बादल! तुम बरसकर जड़ चेतन पदार्थों और प्राणियों में नवीन चेतना भर दो। तुम पुलक के अंकुर बन कर बरसो, जिससे सृष्टि के चेतना विहीन पदार्थ और प्राणी नवीन चेतना से भर जायें। जिस प्रकार कोई पुरोहित मंत्र पढ़कर और पानी के छींटे लगाकर किसी सोये व्यक्ति को सचेत करता है। उसी प्रकार तुम गर्जन करके और बरसकर ग्रीष्म ऋतु के ताप से निर्जीव हुए संसार को स्फूर्ति दो। तीनो लोको के हृदय रूपी घट को आनन्द रूपी जल से भरो और कन-कन-छन-छन करके बरसो। है बादल! तुम इस तरह बरसो कि आज सभी के प्रिय भीगते हुए ही अपने-अपने घर पहुँचे; अर्थात् बरस कर बिछुड़े हुए जनों का मिलन करा दो।

शब्दार्थ- दरसो- दर्शन दो, परसो- स्पर्श करो, सरसो- हरा-भरा बनाओ, भाद्र- भादों का महीना, आश्विन- क्वार का महीना, चित्रित- चित्रा नक्षत्र, हस्ति- हस्ति नक्षत्र, विभंजन- नष्ट करने वाले, व्यग्र- आकुल, उदग्र- उदार, प्रत्यावर्तन- लौटाना, शिखि नर्तन- मोरों में नाचने का आह्लाद उत्पन्न करने वाला, चिन्मय- चेतना से पूर्ण, मृण्मय- मिट्टी के चेतना विहीन, रस- 1. जल, 2. आनन्द।

विशेष-

1. भावपक्ष की अपेक्षा इन पंक्तियों में कला पक्ष की प्रधानता है।

2. समास शैली का प्रयोग भाव-गाम्भीर्य का कारण है।
3. इन पंक्तियों में छे कानुप्रास अलंकार का चमत्कार सर्वत्र विद्यमान है।
4. सृष्टि दृष्टि के अंजन-रंजन में सृष्टि के साथ अंजन दृष्टि के साथ रंजन का क्रमशः अन्वय होने से यथासंख्य अलंकार।
5. 'मानस' पर 'घट' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।
6. 'कन-कन छन-छन' में ध्वन्यात्मकता के कारण ध्वनयर्थ व्यंजना अलंकार।

निरख सखी .... अर्घ्य भर लाये।

प्रसंग- शरद ऋतु में प्रकृति के विभिन्न उपमानों को देखकर उर्मिला विरह वेदना की तीव्रता में प्रियतम के मिलन सुख की अनुभूति करती हुई कहती है।

व्याख्या- वर्षा ऋतु के बीत जाने पर और शरद ऋतु के आने पर खंजन पक्षी दिखाई देने लगे हैं। उन्हें देखकर उर्मिला अपनी सखी से कहती है, कि है सखी! देखो खंजन पक्षी आ गये हैं। ये खंजन पक्षी नहीं हैं, वरन् ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरे प्रवासी प्रियतम ने मेरी सुधि करके अपने नेत्रों को इस ओर फेरा हो। धरती पर यह फैली धूप धूप नहीं है, बल्कि मेरे प्रियतम के शरीर का सौन्दर्यजन्य आलोक है सरोवरों में जो सुषमा भरी सरसता दिखाई देती है ये उन्हीं के प्रेम भाव सरस होकर खिल उठे है। मेरी सुधि करके वे वन से इस ओर घूमे हैं इसी कारण से हंस उड़कर यहां छा गये हैं। भाव यह है कि ये जो उड़ते हुए हंस तुम्हें दिखाई दे रहे हैं, ये हंस नहीं हैं, वरन् उनकी इस ओर आती हुई गति है। सरोवरों में जो कमल फूले दिखाई देते है, जो खिले हुए बंधूक पुष्प दिखाई देते हैं, ये न तो कमल है और न ये बंधूक पुष्प हैं, वरन् मुझ विरहिणी का ध्यान करके मेरे प्रियतम निश्चय ही प्रसन्नता से मुस्करा उठे हैं और यह उनके नेत्रों की तथा अधरों की बिखरी हुई शोभा है। है शरद ऋतु! मैं तुम्हारा हार्दिक और उत्साहपूर्वक स्वागत करती हूँ। बड़े ही भाग्य से मुझे तुम्हारे दर्शन मिले है। तुम्हारे स्वागत में आकाश ओस-बिन्दुओं के रूप में तुम पर मोतियों को न्यौछावर करता है और मैं आँसुओं के रूप में तुम्हारे चरणों पर पूजा का जल चढ़ाती हॅू।

शब्दार्थ- निरख- देखो, खंजन- खंजन नामक पक्षी, मेरे रंजन- मेरे प्रियतम, आतप- 1. धूप, 2. आलोक, बंधूक- एक प्रकार का लाल फूल जिसकी तुलना होठों से की जाती है, वारे- न्यौछावर किए, अर्घ्य- पूजा जल।

विशेष-

1. प्रकृति में अपने प्रियतम की छाया देखना साहित्य की प्राचीन परम्परा है। इस परम्परा का पालन अनेक कवियों ने किया है। महादेवी भी मुस्काते आकाश में अपने प्रियतम की प्रसन्नता का रूप देखकर उनके आगमन की आशा से भर जाती है।
   ''मुस्काता संकेत-भरा नभ
   अलि! क्या प्रिय आने वाले है?''
2. सम्पूर्ण गीत में अपह्नुति अलंकार का भावमय प्रयोग है।
3. 'अधर से ये बंधूक सुहाये', में अधरों की बंधूक पुष्पों से समानता वर्णित है । अतः उपमा अलंकार ।

4.'नभ ने मोती वारे' में केवल उपमान(मोती) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

मुझे फूल मत .... सिर पर धारो।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में वसन्त ऋतु में कामदेव के उद्दीप्त की प्रताड़ना करती हुई उर्मिला अपने अखंड पतिव्रता रूप का परिचय देती हुई कहती है-

व्याख्या- विरहिणी उर्मिला कामदेव को सम्बोधित करती हुई कहती है, कि है कामदेव! तुम मुझे अपने फूलों के बाण मत मारो, अर्थात् मेरे मन में काम-भावनाएं जगाकर मुझे पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न न करो। मैं शक्तिहीन नहीं हूँ, युवती होते हुए भी विरहिणी हॅू। अतः मेरी असहाय दशा देखकर मुझ पर कुछ तो कृपा करो। तुम उस बसंत ऋतु के मित्र हो जो सबको सुख देती है, तुम स्वयं बुद्धिमान हो, इसलिए तुम्हें उचित-अनुचित का ज्ञान है। इसलिए मुझ पर भीषण विष न धोलों; अर्थात् मुझे तुम जो यह भयंकर यातना दे रहै हो, तुम्हारे लिए यह कार्य सभी दृष्टियों से अनुचित है। यदि फिर भी तुम मुझे दुख देते ही हो तो यह जान लो कि तुम मुझे व्यथित करने का जो प्रयत्न करोगे, तुम्हारा वह प्रयत्न असफल ही होगा। अतः अच्छा यही है कि ऐसे प्रयत्न के लिए जो श्रम तुम करो, उसे न करो। मैं कोई सांसारिक सुखों को भोगने की इच्छा रखने वाली नारी नहीं हॅू, जो तुम्हें अपना यह जाल फैलाने की आवश्यकता हो। कहने का भाव यह है कि तुम तो उन्हीं नारियों को दुःख देते हो, जो वासना के वशीभूत होती हैं। मैं तो वासना से बहुत दूर हं। अतः तुम्हें न तो मुझे पीड़ित करने का अधिकार ही है और न तुम मुझे पीड़ित ही कर सकते हो। इस पर भी यदि तुम स्वयं को शक्तिशाली समझते हो तो मेरे माथे पर लगे हुए इस सिंदुर के बिन्दु को शिव का तीसरा नेत्र समझो और समझ लो जिस प्रकार शिव के तीसरे नेत्र ने तुम्हंें भस्म कर दिया था, उसी प्रकार मेरा सिंदूर का बिन्दु भी तुम्हें भस्म कर देगा। है कामदेव! यदि तुम्हें अपने रूप का घमण्ड तो उसे मेरे पति के रूप पर न्यौछावर कर दो; अर्थात् मेरे पति तुमसे बहुत ही अधिक सुन्दर हैं। अतः मेरे चरणों की यह धूल लेकर उस रति के सिर पर डाल दो जो तुम्हारे भस्म होने पर भी जीवित रही और अपने रूप का गर्व करती रही। भाव यह है कि तुम्हारी पत्नी रति भी मेरे सामने बहुत ही तुच्छ है, क्योंकि तुम्हारे भस्म होने की उसने तनिक चिन्ता नहीं की, बल्कि वह अपने रूप यौवन पर इठलाती रही। उसने स्त्री धर्म को कलंकित किया, जबकि मैं स्त्री धर्मकी रक्षा के लिए पल-पल जल रही हॅू।

शब्दार्थ- अबला- शक्तिहीन नारी, मधु- वसंत ऋतु, मदन- कामदेव, गरल- विष, परिहारो- दूर करो, हरनेत्र- शिव का नेत्र, कंदर्प- कामदेव, रति- कामदेव की स्त्री।

विशेष-

1. यह माना जाता है कि कामदेव अपने पांच बाणों से, जो फूलों के होते हैं युवक-युवतियों को पीड़ित करते हैं। इसलिए कामदेव के पुष्पशर, पुष्पधन्वा, पंचशर आदि नाम भी हैं।
2. अपने तथा अपने पति के प्रति उर्मिला का आत्मगौरव एवं आत्मविश्वास इस छंद में स्पष्ट रूप से मुखरित है।
3. ‘पटु-कटु’ में समान स्वरों एवं व्यंजनों की आवृति होने से छेकानुप्रास अलंकार।
4. ‘रूप-दर्प कंदर्प’ में दर्प शब्द की सार्थक-निरर्थक आवृति होने से यमक अलंकार।

अभ्यास प्रश्न

1. साकेत का क्या तात्पर्य है?
2. साकेत में कुल कितने सर्ग हैं?

3. साकेत में मुख्य रूप से किसके विरह का वर्णन किया है?
4. साकेत खण्ड काव्य है या महाकाव्य?
5. साकेत की भाषा अवधि है या खड़ी बोली?

9.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के जीवन और उनकी कृतियों से परिचित हो चुके होंगे।
2. साकेत की संक्षिप्त कथावस्तु से परिचित हो चुके होंगे।
3. गुप्त की काव्यगत विशेषताओं से परिचित हो चुके होंगे।
4. साकेत के महत्वपूर्ण सर्गो का आनन्द प्राप्त कर चुके होंगे।
5. साकेत की उर्मिला के विशिष्ट गुणों; चारित्रिक विशेषताओं एवं उसके वियोग की तीव्रता से आप परिचित हो चुके होंगे।

9.8 शब्दावली

जवाजल्यमान- चमकता, विषाद- दुःख, अनुप्राणित- जीवन्त करना, प्राण सिंचित करना, वैमनस्य- बैर-भाव, आधन्त- प्रारम्भ से अंत तक, उत्तरोतर- निरंतर, उद्बोधन- संबोधन, कुतुहल- आश्चर्य

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अयोध्या
2. 12 सर्ग
3. उर्मिला
4. महाकाव्य
5. खड़ी बोली

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, डॉ0 कमला कान्त पाठक
2. गुप्त जी की काव्यकला, डॉ0 त्रिलोचन पाण्डेय, आगरा
3. गुप्त जी की काव्यधारा, श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, प्रयाग
4. साकेत : एक अध्ययन, डॉ0 नगेन्द्र
5. साकेत सौरभ, श्री नगीन चन्द्र सहगत, दिल्ली
6. साकेत के नवम् सर्ग का काव्य वैभव, डॉ0 कन्हैयालाल, साहित्य सदन, झाँसी
7. गुप्त जी कृतियाँ, श्यामनन्दन प्रसाद सिंह, इलाहाबाद
8. मैथिलीशरण गुप्त, प्रो0 विनय कुमार, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
9. हिन्दी साहित्य- युग और प्रवृत्तियाँ, प्रो0 शिव कुमार शर्मा, दिल्ली
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
11. रामकाव्य की भूमिका, डॉ0 जगदीश प्रसाद शर्मा, ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर
12. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना

13. मैथिलीशरण गुप्त का काव्य, डॉ0 एल0 सुनीता
14. गुप्त जी की काव्य कला, डॉ0 सत्येन्द्र
15. मैथिलीशरण गुप्तः व्यक्ति और काव्य, डॉ0 पाठक
16. साकेतः मैथिलीशरण गुप्त

9.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. साकेतः मैथिलीशरण गुप्त

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त के जीवन और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए ?
2. महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों का निर्देश करते हुए साकेत के महाकाव्यत्व पर विचार कीजिए ? क्या आप उसे सफल महाकाव्य मानते हैं ?
3. साकेत के नवम् सर्ग के कला सौष्ठव पर विचार कीजिए ?
4. 'साकेत की उर्मिला के विरह वर्णन में पुरातनता तथा नवीनता का सामंजस्य' सिद्ध कीजिए ?

इकाई 10 ‘कुरुक्षेत्र’ एवं ‘परिवर्तन’ : पाठ एवं विवेचना

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 रामधारी सिंह ‘दिनकर’: जीवन एवं कृतित्त्व
10.3.1 जीवन परिचय एवं कृतित्त्व
10.3.2 ‘कुरुक्षेत्र’ : पाठ एवं विवेचना
10.4 सुमित्रानंदन पन्त : जीवन एवं कृतित्त्व
10.4.1 जीवन परिचय एवं कृतित्त्व
10.4.2 ‘परिवर्तन’ : पाठ एवं विवेचना
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.9 सहायक पाठ्य सामग्री
10.10 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातक द्वितीय वर्ष के प्रथम प्रश्न पत्र .... इकाई है . इस इकाई से पूर्व आप ने आधुनिक हिन्दी पद्य साहित्य के दो महान कवियों के जीवन एवं कृतित्त्व का अध्ययन किया.

इस इकाई में आप हिन्दी साहित्य के दो विशिष्ट कवियों एक उनकी दो प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कविताओं के पाठ-विवेचन का अध्ययन करेंगे.

इकाई के प्रथम भाग में आप राष्ट्रकवि 'दिनकर' का संक्षिप्त जीवन से परिचित होंगे तथा साथ ही साथ 'दिनकर' द्वारा लिखित खंडकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के चुनिन्दा पाठ का अध्ययन करेंगे.इकाई के दूसरे भाग में आप हिन्दी के एक अन्य विशिष्ट कवि एवं छायावादी कविता के स्तम्भ श्री सुमित्रानंदन पन्त के जीवन एवं काव्य का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे.

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि आधुनिक हिन्दी कविता का क्या महत्व है।
- राष्ट्रकवि 'दिनकर' के जीवन एवं काव्य का परिचय प्राप्त करेंगे ।
- महाकवि सुमित्रानंदन पन्त के जीवन एवं काव्य का परिचय प्राप्त करेंगे।
- हिन्दी कविता के विकास में 'दिनकर' एवं पन्त जी के अवदान को समझ सकेंगे।

10.3 रामधारी सिंह 'दिनकर' : जीवन एवं कृतित्त्व

रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता धारा के महत्वपूर्ण कवि के रूप में समाहत रहै हैं। छायावादी काव्यान्दोलन सांस्कृतिक जागरण का आन्दोलन था। इस आन्दोलन में राष्ट्रीयता के तत्व सूक्ष्म रूप में विन्यस्त हुए हैं, लेकिन युगीन परिस्थिति ठीक इसके विपरीत थी। सन् 1930 ईसवी के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में तीव्रता आती है। भगतसिंह की फांसी के बाद युवा आक्रोश चरम सीमा पर पहुँचती हैं। संपूर्ण विश्व मंदी के दौर से गुजर रहा था, ऐसे समय में पराधीनता की पीड़ा और तीव्र हुई। छायावादी कल्पना लोक से हटकर स्वयं छायावादी कवि भी यर्थाथवादी कवि भी यर्थाथवादी रचना की ओर प्रवृन्त हुए। ऐसे समय में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताधारा की उत्पत्ति का ही वस्तुगत कारण था। इसी काव्यधारा में 'दिनकर' का आगमन किसी क्रान्ति से कम नहीं था। दिनकर की कविताओं ने हिंदी कविता को नया तेवर प्रदान किया। हिंदी कविता की भाषा में शैली में, वस्तुतत्व एवं चेतना में दिनकर ने व्यापक परितर्वन उपस्थित किया। आगे के बिन्दुओं में हम दिनकर काव्य का विशेष अध्ययन करेंगे। आइए उसके पूर्व हम उनके जीवन संघर्ष का परिचय प्राप्त करें।

10.3.1 जीवन परिचय एवं कृतित्त्व

जीवन परिचय - राष्ट्र कवि 'दिनकर' का जन्म 23 सितम्बर 1908 ईसवी को बिहार के मुंगेर जिला के सिमरिया गॉव में हुआ था। दिनकर की पारिवारिक स्थिति बहुत सुदृढ़ न थी। उसमें

वाल्काल में ही पिता का देहान्त हो गया। तीनों भाईयों को उनकी माँ ने बहुत ही संघर्ष के साथ पालन-पोषण किया। उनकी प्रारंभिक पढ़ाई गाँव के पाठशाला में हुई। पॉचवी श्रेणी पास करने के बाद सन् 1922 ई0 में बारो गॉव के नेशनल मिडिल स्कूल में नाम लिखाया गया। दो वर्ष बाद स्कूल बंद होने के उपरान्त आप सरकारी मिडिल स्कूल बारों में नामांकित हुए, जहॉ पुरस्कार स्वरूप 'रामचरितमानस' एवं 'सूरसागर' जैसे ग्रंथ प्राप्त होने के कारण आपके अंदर साहित्यिक संस्कारों की नींव पड़ी। जनवरी 1924 ई0 में मोकामा घाट के जेम्स वाकर हाईस्कूल में नामांकन हुआ। 1928 ई0 में 19-20 वर्ष की उम्र में आपने मैट्रिक परीक्षा पास की। सन् 1928 ई0 में आपने पटना कॉलेज में नाम लिखवाया तथा सन् 1932 में इतिहास विषय से बी0ए0 की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बी0ए0 पास करने के बाद दिनकर कुछ काल तक स्कूल में प्राध्यापक रहै । तदुपरान्त सितम्बर 1934 ई0 में बिहार सरकार के राजस्व विभाग में आपकी नियुक्ति सब-रजिस्ट्रार के पद पर हुई। इसी समय 1934 ई0 में बिहार प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के छपरा अधिवेशन में कवि-सम्मेलन की आपने अध्यक्षता की। औपनिवेशिक सरकार की नौकरी करने का कटु अनुभव यहीं से उन्हें मिलने लगा। सन् 1942 ई0 में जब राष्ट्र के जीवन में उबाल आया, तब वे अंग्रेजी सरकार के युद्ध-प्रचार विभाग में थे। सितम्बर 1943 से 1945 ई0 तक सरकार द्वारा दिनकर जी को ऐसी जगह स्थापित कर दिया गया था जो राष्ट्रविरोधी कार्यों की जगह थी। लम्बे मानसिक संघर्ष के पश्चात् उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। सन् 1950 ई0 में बिहार सरकार ने उन्हें पटना विश्वविद्यालय के लंगट सिंह महाविद्यालय में हिंदी-विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1952 ई0 के अप्रैल में आप राज्यसभा का सदस्य चुन लिए गए। जनवरी 1964 ई0 में दिनकर जी भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए। मई 1965 के आपने कुलपति के पद से इस्तीफा दे दिया और भारत सरकार के हिंदी सलाहाकर का पद ग्रहण किया। सन् 71 में आप इस पद से मुक्त होकर, पटना आकर रहने लगे। 24 अप्रैल 1974 ईसवी को मद्रास यात्रा के दौरान दिल का दौरा पड़ने से आपकी मृत्यु हुई। इस प्रकार एक महायात्रा का समापन हुआ।

दिनकर का कृतित्त्व परिचय - रामधारी सिंह दिनकर का कृतित्त्व पद्य एवं गद्य दोनों दृष्टियों से, कथ्य एवं परिमाण की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध रहा है। उनके कृतित्त्व की व्याख्या एवं आलोचना हम आगे देखेंगे। यहाँ हम केवल उनके कृत्तित्व की सूची प्रस्तुत कर रहै हैं –

काव्य –

- विजय संदेश – 1928 ई0
- प्रणभंग – 1929 ई0
- रेणुका – 1935 ई0
- हुंकार – 1939 ई0
- रसवंती – 1940 ई0
- द्वंद गीत – 1940 ई0
- कुरक्षेत्र – 1946 ई0

- धूप-छाँह – 1946 ई0
- सामधेनी – 1947 ई0
- बापू – 1947 ई0
- इतिहास के ऑसू – 1951 ई0
- धूप और धुऑं – 1951 ई0
- मिर्च का मजा – 1951 ई0
- रश्मिरथी – 1952 ई0
- दिल्ली – 1954 ई0
- नीम के पत्ते – 1954 ई0
- नीलकुसुम – 1954 ई0
- पूरज का व्याह – 1955 ई0
- चक्रवाल – 1956 ई0
- कवि श्री – 1957 ई0
- सीपी और शंख – 1957 ई0
- नए सुभाषित – 1957 ई0
- उर्वशी – 1961 ई0
- परशुराम की प्रतीक्षा – 1963 ई0
- कोयला और कवित्व – 1964 ई0
- मृत्ति तिलक – 1964 ई0
- आत्मा की ऑखे – 1964 ई0
- दिनकर की सूक्तियॉं – 1965 ई0
- हारे को हरिनाम – 1970 ई0
- दिनकर के गीत – 1973 ई0
- रश्मिलोक – 1974 ई0

आलोचना

- मिट्टी की ओर – 1946 ई0
- अर्धनारीश्वर – 1952 ई0
- काव्य की भूमिका – 1958 ई0
- पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण – 1958 ई0

- वेणुवन – 1958 ई0
- शुद्ध कविता की खोज – 1966 ई0

अन्य गद्य रचनाएँ -

- चित्तौड़ का साका – 1949 ई0
- रेती के फूल – 1954 ई0
- हमारी सांस्कृतिक एकता – 1954 ई0
- भारत की सांस्कृतिक कहानी – 1955 ई0
- भारत की सांस्कृतिक कहानी – 1955 ई0
- संस्कृति के चार अध्याय – 1956 ई0
- उजली आग – 1956 ई0
- देश-विदेश – 1957 ई0
- राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता – 1958 ई0
- धर्म, नैतिकता और विज्ञान – 1959 ई0
- वट – पीपल – 1961 ई0
- साहित्यमुखी – 1968 ई0
- राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गाँधीजी – 1968 ई0
- है राम – 1969 ई0
- संस्करण और श्रद्धांजलियां – 1969 ई0
- मेरी यात्राएॅं – 1970 ई0
- भारतीय एकता – 1970 ई0
- दिनकर की डायरी – 1973 ई0
- चेतना की शिखा – 1973 ई0
- आधुनिक बोध – 1973 ई0
- विवाह की मुसीबतें – 1974 ई0
- दिनकर के पत्र (सं0 कन्हैयालाल फूलफगर) – 1981 ई0
- शेष – नि:शेष (सं0 कन्हैयालाल फूलफगर) - 1985 ई0

10.3.2‘कुरुक्षेत्र’ : पाठ एवं विवेचन

‘कुरुक्षेत्र’ : वाचन

समर निंद्य है धर्मराज, पर,

कहो, शान्ति वह क्या है,
जो अनीति पर स्थित होकर भी
बनी हुई सरला है?
सुख-समृद्धि का विपुल कोष
संचित कर कल, बल, छल से,
किसी क्षुधित का ग्रास छीन,
धन लूट किसी निर्बल से।
सब समेट, प्रहरी बिठला कर
कहती कुछ मत बोलो,
शान्ति-सुधा बह रही न इसमें
गरल क्रान्ति का घोलो।
हिलो-डुलो मत, हृदय-रक्त
अपना मुझको पीने दो,
अचल रहै साम्राज्य शान्ति का,
जियो और जीने दो।
सच है सत्ता सिमट-सिमट
जिनके हाथों में आयी,
शान्तिभक्त वे साधु पुरुष
क्यों चाहें कभी लड़ाई ?
सुख का सम्यक-रूप विभाजन
जहाँ नीति से, नय से
संभव नहीं; अशान्ति दबी हो
जहाँ खड्ग के भय से,
जहाँ पालते हों अनीति-पद्धति
को सत्ताधारी,
जहाँ सूत्रधर हों समाज के
अन्यायी, अविचारी;
नीतियुक्त प्रस्ताव सन्धि के
जहाँ न आदर पायें;
जहाँ सत्य कहने वालों के
सीस उतारे जायें;
जहाँ खड्ग-बल एकमात्र
आधार बने शासन का;
दबे क्रोध से भभक रहा हो
हृदय जहाँ जन-जन का;
सहते-सहते अनय जहाँ

मर रहा मनुज का मन हो;
समझ कापुरुष अपने को
धिक्कार रहा जन-जन हो;
अहंकार के साथ घृणा का
जहाँ द्वंद हो जारी;
ऊपर, शान्ति, तलातल में
हो छिटक रही चिंगारी;
आगामी विस्फोट काल के
मुख पर दमक रहा हो;
इंगित में अंगार विवश
भावों के चमक रहा हो;
पढ़कर भी संकेत सजग हों
किन्तु, न सत्ताधारी;
दुर्मति और अनल में दें
आहुतियाँ बारी-बारी;
कभी नये शोषण से, कभी
उपेक्षा, कभी दमन से,
अपमानों से कभी, कभी
शर-वेधक व्यंत्य-वचन से।
दबे हुए आवेग वहाँ यदि
उबल किसी दिन फूटें,
संयम छोड़, काल बन मानव
अन्यायी पर टूटें,
कहो कौन दायी होगा
उस दारुण जगद्दहन का
अहंकार या घृणा? कौन
दोषी होगा उस रण का ?
तुम विषण्ण हो समझ
हुआ जगदाह तुम्हारे कर से।
सोचो तो, क्या अग्नि समर की
बरसी थी अंबर से?
अथवा अकस्मात मिट्टि से
फूटी थी यह ज्वाला ?
या मंत्रों के बल से जनमी
थी यह शिखा कराला ?
कुरुक्षेत्र से पूर्व नहीं क्या

समर लगा था चलने ?
प्रतिहिंसा का दीप भयानक
हृदय-हृदय में बलने ?
शान्ति खोलकर खड्ग क्रान्ति का
जब वर्जन करती है,
तभी जान लो, किसी समर का
वह सर्जन करती है।
शान्ति नहीं तब तक; जब तक
सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।
ऐसी शान्ति राज्य करती है
तन पर नहीं हृदय पर,
नर के ऊँचे विश्वासों पर,
श्रद्धा, भक्ति, प्रणय पर।
न्याय शान्ति का प्रथम न्यास है
जब तक न्याय न आता,
जैसा भी हो महल शान्ति का
सुदृढ़ नहीं रह पाता।
कृत्रिम शान्ति सशंक आप
अपने से ही डरती है,
खड्ग छोड़ विश्वास किसी का
कभी नहीं करती है|
और जिन्हें इस शान्ति-व्यवस्था
में सुख-भोग सुलभ है,
उनके लिये शान्ति ही जीवन -
सार, सिद्धि दुर्लभ है।
पर, जिनकी अस्थियाँ चबाकर,
शोणित पी कर तन का,
जीती है यह शान्ति, दाह
समझो कुछ उनके मन का ।
स्वत्व माँगने से न मिले,
संघात पाप हो जायें,
बोलो धर्मराज, शोषित वे
जियें या कि मिट जायें?
न्यायोचित अधिकार माँगने

से न मिले, तो लड़ के,
तेजस्वी छीनते समर को
जीत, या कि खुद मर के।
किसने कहा पाप है समुचित
स्वत्व-प्राप्ति-हित लड़ना?
उठा न्याय का खड्ग समर में
अभय मारना-मरना?
क्षमा, दया, तप, तेज, मनोबल
की दे वृथा दुहाई,
धर्मराज व्यंजित करते तुम
मानव की कदराई।
हिंसा का आघात तपस्या ने
कब, कहाँ सहा है?
देवों का दल सदा दानवों
से हारता रहा है।
मन:शक्ति प्यारी थी तुमको
यदि पौरुष ज्वलन से,
लोभ किया क्यों भरत-राज्य का?
फिर आये क्यों वन से?
पिया भीष्म ने विष, लाक्षागृह
जला, हुए वनवासी,
केशकर्षिता प्रिया सभा-सम्मुख
कहलायी दासी।
क्षमा, दया, तप, त्याग, मनोबल,
सबका लिया सहारा;
पर नर-व्याघ्र सुयोधन तुमसे
कहो, कहाँ कब हारा?
क्षमाशील हो रिपु-समक्ष
तुम हुए विनत जितना ही,
दुष्ट कौरवों ने तुमको
कायर समझा उतना ही।
अत्याचार सहन करने का
कुफल यही होता है,
पौरुष का आतक मनुज
कोमल हो कर खोता है।
क्षमा शोभती उस भुजंग को,

जिसके पास गरल हो।
उसको क्या, जो दंतहीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो?
तीन दिवस तक पथ माँगते
रघुपति सिन्धु-किनारे,
बैठे पढ़ते रहै छंद
अनुनय के प्यारे-प्यारे।
उत्तर में जब एक नाद भी
उठा नहीं सागर से,
उठी अधीर धधक पौरुष की
आग राम के शर से।
सिन्धु देह धर "त्राहि-त्राहि"
करता आ गिरा शरण में,
चरण पूज, दासता ग्रहण की,
बँधा मूढ़ बंधन में।
सच पूछो तो शर में ही
बसती है दीप्ति विनय की
सन्धि-वचन संपूज्य उसी का
जिसमें शक्ति विजय की।
सहनशील क्षमा, दया को
तभी पूजता जग है,
बल का दर्प चमकता उसके
पीछे जब जगमग है।
जहाँ नहीं सामर्थ्य शोढ की,
क्षमा वहाँ निष्फल है।
गरल-घूँट पी जाने का
मिस है, वाणी का छल है।
फलक क्षमा का ओढ़ छिपाते
जो अपनी कायरता,
वे क्या जानें प्रज्वलित-प्राण
नर की पौरुष-निर्भरता?
वे क्या जाने नर में वह क्या
असहनशील अनल है,
जो लगते ही स्पर्श हृदय से
सिर तक उठता बल है?
जिनकी भुजाओं की शिराएँ फड़की ही नहीं,

जिनके लहू में नहीं वेग है अनल का;
शिव का पदोदक ही पेय जिनका है रहा,
चक्खा ही जिन्होनें नहीं स्वाद हलाहल का;
जिनके हृदय में कभी आग सुलगी ही नहीं,
ठेस लगते ही अहंकार नहीं छलका;
जिनको सहारा नहीं भुज के प्रताप का है,
बैठते भरोसा किए वे ही आत्मबल का
युद्ध को बुलाता है अनीति-ध्वाजधारी या कि
वह जो अनीति-भाल पै गे पाँव चलता?
वह जो दबा है शोशणो के भीम शैल से या
वह जो खड़ा है मग्न हँसता मचलता?
वह जो बना के शान्ति-व्यूह सुख लूटता या
वह जो अशान्त हो क्षुधानल से जलता?
कौन है बुलाता युद्ध? जाल जो बनाता !
या जो जाल तोड़ने को क्रुद्ध काल-सा निकलता?
पातकी न होता है प्रबुद्ध दलितों का खड्ग,
पातकी बताना उसे दर्शन की भ्रान्ति है।
शोषण की श्रृंखला के है तु बनती जो शान्ति,
युद्ध है, यथार्थ में वो भीषण अशान्ति है;
सहना उसे हो मौन हार मनुजत्व की है,
ईश की अवज्ञा घोर, पौरुष की श्रान्ति है;
पातक मनुष्य का है, मरण मनुष्यता का,
ऐसी श्रृंखला में धर्म विप्लव, क्रान्ति है।
भूल रहै हो धर्मराज, तुम
अभी हिंस्र भूतल है,
खड़ा चतुर्दिक अहंकार है,
खड़ा चतुर्दिक छल है।
मैं भी हूँ सोचता जगत से
कैसे उठे जिघाँसा,
किस प्रकार फैले पृथ्वी पर
करुणा, प्रेम, अहिंसा।
जियें मनुज किस भाँति परस्पर
हो कर भाई-भाई
कैसे रुके प्रदाह क्रोध का,
कैसे रुके लड़ाई।
पृथ्वी हो साम्राज्य स्नेह का,

जीवन स्निग्ध, सरल हो,
मनुज-प्रकृति से विदा सदा को
दाहक द्वेष-गरल हो।
बहै प्रेम की धार, मनुज को
वह अनवरत भिगोये,
एक दूसरे के उर में नर
बीज प्रेम के बोये।
किन्तु, हाय, आधे पथ तक ही
पहुँच सका यह जग है,
अभी शान्ति का स्वप्न दूर
नभ में करता जगमग है।
भूले-भटके ही पृथ्वी पर
वह आदर्श उतरता,
किसी युधिष्ठिर के प्राणों में
ही स्वरूप है धरता।
किन्तु, द्वेष के शिला-दुर्ग से
बार-बार टकरा के,
रुद्ध मनुज के मनोदेश के
लौह-द्वार को पा के;
घृणा, कलह, विद्वेष, विविध
तापों से आकुल हो कर,
हो जाता उड्डीन एक-दो
का ही हृदय भिगो कर।
क्योंकि युधिष्ठिर एक, सुयोधन
अगणित अभी यहाँ हैं,
बढ़े शान्ति की लता हाय,
वे पोषक द्रव्य कहाँ हैं?
शान्ति-बीन तब तक बजती है
नहीं सुनिश्चित सुर में,
स्वर की शुद्ध प्रतिध्वनि जब तक
उठे नहीं उर-उर में।
यह न बाह्य उपकरण, भार बन
जो आवे ऊपर से।
आभा की यह ज्योति, फूटती
सदा विमल अंतर से।
शान्ति नाम उस रुचिर सरणि का

जिसे प्रेम पहचाने,
खड्ग-भीत तन ही न,
मनुज का मन भी जिसको माने।
शिवा-शान्ति की मूर्ति नहीं
बनती कुलाल के गृह में;
सदा जन्म लेती वह नर के
मन:प्रान्त निस्पृह में।
गरल-द्रोह-विस्फोट-है तु का
करके सफल निवारण,
मनुज-प्रकृति ही करती शीतल
रूप शान्ति का धारण।
जब होती अवतीर्ण शान्ति यह,
भय न शेष रह जाता,
शंका-तिमिर-ग्रस्त फिर कोई
नहीं देश रह जाता।
शान्ति ! सुशीतल शान्ति ! कहाँ
वह समता देने वाली?
देखो, आज विषमता की ही
वह करती रखवाली।
आनन सरल, वचन मधुमय है,
तन पर शुभ्र वसन है,
बचो युधिष्ठिर ! इस नागिन का
विष से भरा दशन है।
यह रखनी परिपूर्ण नृपों से
जरासन्ध की कारा,
शोणित कभी, कभी पीती है
तप्त अश्रु की धारा।
कुरुक्षेत्र में जली चिता जिसकी,
वह शान्ति नहीं थी;
अर्जुन की धन्वा चढ़ बोली,
वह दुष्क्रान्ति नहीं थी।
थी परस्व-ग्रासिनी भुजंगिनी,
वह जो जली समर में,
असहनशील शौर्य था, जो
बल उठा पार्थ के शर में।
नहीं हुआ स्वीकार शान्ति को

जीना जब कुछ देकर,
टूटा पुरुष काल-सा उस पर
प्राण हाथ में लेकर।
पापी कौन ? मनुज से उसका
न्याय चुराने वाला ?
याकि न्याय खोजते विघ्न का
सीस उड़ाने वाला?

संदर्भ सहित व्याख्या

हाय, पिताहम, हार किसकी हुई है यह ?
ध्वंस-अवशेष पर सिर धुनता है कौन ?
कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूँढ़ता है ?
और बैठे मानव की रक्त-सरिता के तीर
नियति के व्यंग्य-भरे अर्थ गुनता है कौन ?
कौन देखता है शवदाह बंधु-बांधनों का ?
उत्तरा का करूण विलाप सुनता है कौन ?

संदर्भ एवं प्रसंग – आलोच्य पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर' की प्रसिद्ध कृति 'कुरूक्षेत्र' से उद्धत हैं। 'कुरूक्षेत्र' में युद्धकालीन समस्याओं को आलोच्य पंक्तियों में युधिष्ठिर द्वारा भीष्म पितामह से यह प्रश्न पूछना कि युद्ध में किसकी विजय हुई है ? यह अपने आप में यह संकेत करता है कि युद्ध अपनी अंतिम परिणति में अहितकर ही होता है।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों में धर्मराज युधिष्ठिर महाज्ञानी भीष्म पितामाह से प्रश्न करते हैं कि है पितामाह ! महाभारत के इस युद्ध में किसकी हार हुई है ? अर्थात् इस युद्ध में पाण्डव हारे हैं या कौरव। युद्ध के परिणाम के तौर पर तो हम जीत गये हैं किन्तु क्या इसे विजय मानी जा सकती है। युद्ध के बाद जो ध्वंस के अवशेष दिखाई दे रहे है, वह पश्चाताप के सिवाय और क्या पैदा कर रहे है। विनाश और ध्वंस सुखकारी कैसे हो सकते हैं। अत: ऐसे ध्वंस के बाद मिली युद्ध में विजय गहरे पश्चाताप को जन्म दे रही है। सामने युद्ध जिस राजमुकुट को प्राप्त करने के लिए इतने नरसंहार हुए हों, वह भला कैसे सुखद हो सकता है। युद्ध में जो विजय युधिष्ठिर को मिली, वह भयानक रक्त-पात के बीच। ऐसा लगता है मानो रक्त की नदी वह रही हो और कोई व्यक्ति (मानवता) उसके किनारे बैठा हो। इसे व्यंग्य के सिवाय और क्या कहा जा सकता है ? भाग्य/नियति जैसे मनुष्यता की इस पराजय पर व्यंग्य कर रही हो। युद्ध-विजय के बाद अपने निकट संबंधियों के शवदाह को देखते हुए तथा अभिमन्यु पत्नी उत्तरा के विलाप को सुनते हुए युधिष्ठिर की विजय ? युधिष्ठिर प्रश्न कर रहा है कि युद्ध में विजय उसकी जीत है या पराजय ? वस्तुत: इसे युधिष्ठिर अपनी पराजय के रूप में ही देख रहा है।

विशेष

1. प्रस्तुत पंक्तियों में संवाद शैली के माध्यम से कवि ने सत्य को खोजन की कोशिश की है।

2. युद्ध में विजय-पराजय से महत्वपूर्ण है, मानवता की रक्षा। जहॉं विजय के पश्चात् भी मानवता पराजित हो जाती है वहाँ युद्ध का परिणाम हमेशा ही नकारात्मक रहता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पंक्तियाँ हमें नये ढंग से सोचने के लिए बाध्य करती हैं।
3. युधिष्ठिर के अंतर्द्वन्द्व को आलोच्य पंक्तियों में कलात्मकता के साथ व्यंजित किया गया है।
4. भाषा की दृष्टि से आलोच्च पंक्तियॉं सहज हैं किन्तु उनमें निम्बात्मकता एवं चित्रात्मकता का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

छीनता हो स्वप्न कोई, और तू त्याग तप से काम ले, यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो ।
बद्ध विदलित और साधनहीन को है उचित अवलम्ब अपनी आह का
गिड़गिड़ा कर किन्तु मांगे भीख क्यों वह पुरूष जिसकी भुजा में शक्ति हो

संदर्भ एवं प्रसंग :

आलोच्य पंक्तियॉं ओज एवं राष्ट्रीयता के कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के 'कुरूक्षेत्र' काव्य की पंक्तियॉं हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में पितामह भीष्म द्वारा युधिष्ठिर के यह पूछे जाने पर कि ऐसी विजय से क्या लाभ ? जिसने असंख्य व्यक्ति काल-कवलित हुए, का उत्तर देते हुए कहा गया है कि जब युद्ध किया जाए।

व्याख्या : युधिष्ठिर के पश्चाताप और ग्लानिपूर्ण कथन को सुनकर भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाते हुए कह रहै हैं कि है युधिष्ठिर – कभी ऐसा होता है कि कोई तुम्हारी स्वतंत्रता का हरण करता हो या तुम्हारे स्वाभिमान को नष्ट करता हो या तुम्हारे अस्तित्व को नष्ट करने की कोशिश कर हरा हो तब त्याग एवं तप की बात करना या प्रतिरोध न करना ही पाप होता है। पाप और पुण्य की कोई बंधी-बंधाई परिपाटी नहीं होती बल्कि परिस्थितियों के अनुसार ही वे तय होते हैं। (अनाचारी को) नष्ट कर दो, उसके हाथ काट दो अर्थात् अत्याचार के समय यदि तुम प्रतिरोध न करके सत्य-त्याग-तप की सैद्धान्तिक बातें ही करते हो तब वही पाप है।

पुन: भीष्म युधिष्ठिर को समझाते हुए कह रहै हैं कि – यदि दूसरों के अधीन रहनेवाला, दलित या साधनहीन या कमजोर व्यक्ति अपने ऊपर हो रहै अत्याचार को आह भर कर के अर्थात् विवशतापूर्वक सह लेता है तो कोई गलत बात नहीं है क्योंकि वह प्रतिरोध कर पाने में अक्षम है। लेकिन यदि सामर्थ्यवान व्यक्ति दमा की भीख मॉंगे या शत्रु के सामने गिड़गिड़ाये तो इसे किसी भी प्रकार से शोभनीय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ऐसे व्यक्ति द्वारा अन्याय का प्रतिकार करना ही उचित है, धर्म है, पुण्य है।

विशेष

1. प्रस्तुत पंक्तियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कि इनमें प्रतिरोध की संस्कृति को श्रेष्ठ माना गया है।
2. आलोच्य पंक्तियों में कवि ने बताया है कि पाप और पुण्य की कोई सुनिश्चित अवधारणा नहीं है। परिस्थितियाँ तय करती हैं कि क्या पाप हैं और क्या पुण्य है।
3. शांतिकाल में जो पुण्य है, वही युद्ध के समय पाप हो सकता है। अत: हर परिस्थितियों में अत्याचार के खिलाफ प्रतिरोध करना ही उचित है।

4. प्रस्तुत पक्तियां कवि की विचारधारा को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती हैं।

5. भाषा सहजता और प्रवाह के गुण से युक्त है।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. कुरूक्षेत्र..................ग्रन्थ पर आधारित है।
2. रश्मिरथी ग्रंथ का नायक..............है।
3. उर्वशी रचना का मूल समस्या.............है।
4. उर्वशी का प्रकाशन वर्ष.........................है।
5. दिनकर...................धारा के कवि हैं।
6. परशुराम की प्रतीक्षा के रचनाकार................हैं।

10.4 सुमित्रानंदन पन्त : जीवन एवं कृतित्व

10.4.1 जीवन परिचय एवं कृतित्त्व

कविवर सुमित्रानन्दन पंत का जन्म हिमालय की गोद में अल्मोड़ा नगर के पास कौसानी नामक एक छोटे से ग्राम में एक जमींदार परिवार में दिनांक 20 मई, सन् 1900 के दिन हुआ। इनके पिता का नाम श्री गंगादत्त पंत और माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। इनका पालन-पोषण हिन्दू परम्परा के वातावरण में हुआ। इनके जन्म के समय ही इनकी माता का देहान्त हो गया था। दादी ने मातृत्व सु,ख देने में कोई कमी नहीं रखी। सुमित्रानन्दन पंत ने 'साठ वर्ष: एक रेखांकन' पुस्तक में लिखा है: ''आँखें मूँदकर जब अपने किशोर जीवन की छायावीथी में प्रवेश करता हूँ, तो पहाड़ी का घर ....छोटा-सा आँगन पलकों में नाचने लगता है ....चबूतरे पर बैठा मैं पढ़ता हूँ और ....गौरी बूढ़ी दादी की गोद में सिर रखकर, साँझ के समय, दन्तकताएँ और देवी-देवताओं की आरती के गीत सुनता हूँ। बड़ी परिहासप्रिय है मेरी दादी। उनकी क्षीण, दंतहीन कंठ-ध्वनि ....पहाड़ी झुटपुटे में अब भी......गूँज रही है।'' पुश्किन की दाई या गोर्की की दादी के समान सबसे पहले पंतजी की दादी ने ही इस संवेदनशील बालक के सम्मुख लोक कथाओं, दन्तकथाओं एवं पौराणिक कथाओं का वह ऐन्द्रियजालिक संसार उद्घाटित कर दिया, जिसकी सृष्टि अतिसमृद्ध लोक-कल्पना ने की थी। राम-लक्ष्मण, कृष्णार्जुन तथा अन्य अनेक देवी-देवताओं एवं बीर-नायकों के आदर्शों, उनके पराक्रमों तथा जन-कल्याण के है तु उनके द्वारा किए गए महान् संग्रामों और अद्भुत रमणीय काव्यपूर्ण आख्यानोपाख्यानों ने बालक पंत की कल्पना-शक्ति पर प्रभाव डाला, उसकी चेतना में भारतीय जनता की अतिसमृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति जीवंत रूचि को जाग्रत कर दिया। भावी कवि के लिए यह ग्रन्थ बचपन से ही चिरसहचर और संगी-साथी बन गए।प्रकृति ने बालक पंत को सौन्दर्य की अनुराग मयी गोदी में खिलाकर बड़ा किया। पंत लिखते है ''कोसानी की गोद मुझे माँ की गोद से ज्यादा प्यारी रही है।'' कवि 'अंतिमा' संकलन में लिखते है

''माँ से बढ़कर रही धत्रि तू, बचपन में मेरे हित,
धत्रि कथा रूपक भर; तू ने किया जनक बन पोषण।
मातृहीन बालक के सिर पर वरद हरस्त धर गोपन।''

पहाड़ी झरनो-स्रोतों की तेज दौड़, जल-प्रपातों की ध्वनि, पर्वतीय चरागाहों की रंगबिरंगी मनोहारिणी क्रीड़ा और आँखों को चौंधियाने वाले दूरस्थ रजत हिम-शिखरों के श्रवण-दर्शन से प्रभावित भावी कवि बचपन से ही प्रकृति-सौन्दर्य के रहस्यों को समझने-बूझने और उनका उद्घाटन करने में प्रयत्नशील रहा!

पिता के घर का वातावरण भी साहित्य एवं कला के प्रति पंत जी की प्रारम्भिक रूचि को जाग्रत कराने में सहायक रहा। भावी कवि अपने बड़े भाई के ग्रंथ-संग्रह में उपलब्ध ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ते न अघाता। पंतजी के यह भाई बड़े ही प्रतिभाशाली थे।

पिता के घर में बराबर लोगों का ताँता बँधा रहता। अनेकानेक सगे-संबंधी और इष्ट-मित्र, साहित्यक और संगीतज्ञ, विद्वान और धर्म-सेवक महीनों-महीने गंगादत्त पंत के यहाँ डेरा डाले रहते। घर में समय-समय पर विविध तीज-त्यौहार मनाए जाते। इन अवसरों पर पारिवारिक साहित्य-संगीत सभाओं, लोकनृत्यों, गीतपाठों आदि का आयोजन किया जाता। पंत जी के बड़े भाई कालिदास रचित ‘मेघदूत‘ एवं ‘शाकुन्तलम‘ का पाठ करते और स्वरचित कविताएँ भी सुनाते। पंत जी के पिता बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे। उनके घर में ‘भगवद्गीता‘ तथा ‘रामायण‘ का पाठ नित्यप्रति हुआ करता था। घरेलू उत्सव-त्यौंहारों के दिन कौसानी-निवासी और आसपास के पहाड़ी युवक-युवनियाँ आकर समूहगीत, नाच-गान, खेलकूद आदि प्रस्तुत करते। पंतजी ने लिखा है:‘‘ कौसानी में पिताजी के घर के वातावरण में भी मुझे एक संगीत तथा लय मिलती रही है जिसने, समभवतः, मेरे भीतर उन संस्कारों का पोषण किया जो आगे चलकर मेरे कवि-जीवन में सहायक हुए।”

सन् 1950 में पंत जी कोसानी गाँव की पाठशाला में दाखिल हुए और अंग्रेजी का अध्ययन घर पर ही शुरू किया। वहाँ से चौथी कक्षा पास करके 1910 में अल्मोड़ा आ गए। हाई स्कूल पास कर वे प्रयाग गए और प्रयाग ही उनकी काव्य-साधना का मुख्य केन्द्र बना। ‘‘साठ वर्ष : एक रेखांकन” पुस्तक में कवि स्वयं लिखते हैं - ‘‘प्रयाग आने के पश्चात् मेरे संस्कृत साहित्य के ज्ञान में अधिक अभिवृद्धि हुई। कालिदास की कविताओं का मुझ पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। कालिदास की उपमाओं में तो एक विशिष्टता तथा पूर्णता मिली ही, उसकी सौन्दर्य-दृष्टि ने मुझे विशेष रूप से आकृष्ट किया। कालिदास के सौंदर्यबोध की चिर-नवीनता को मैं अपनी कल्पना का अंग बनाने में लिए लालायित हो उठा। उन्नीसवीं शती के कवियों में कीट्स, शैली, वर्ड्सवर्थ तथा टैनिसन में मुझे गंभीर रूप से आकृष्ट किया। कीट्स के शिल्प-वैचित्र्य, शैली की सशक्त कल्पना, वर्डसवर्थ के प्रांजल प्रकृति-प्रेम, कालरिज की असाधरणता तथा टैनिसन के ध्वनिबोध ने मेरे कविता संबंधी रूप-विधान के ज्ञान को अधिक पुष्ट, व्यापक तथा सूक्ष्म बनाया। इन कवियों की विशेषताओं को हिन्दी काव्य में उतारने के लिए मेरा कलाकार भीतर-ही-भीतर प्रयत्न करता रहा”।

पंत जी ने साठ वर्षो तक निरन्तर लेखन कार्य किया और 29 दिसम्बर, 1977 को इस संसार से विदा हो गए।

पंत का कवि-कर्म उनके रचनाकार व्यक्तित्व का प्रतिफलन है। पंत के व्यक्तित्व निर्माण में बीसवीं सदी के सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण, अरविन्द दर्शन, रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गाँधी का दर्शन, हिन्दी का मध्ययुगीन काव्य, अंग्रेजी का स्वच्छन्दतावादी साहित्य,

भारतीय रचनाकारों में वाल्मिकी, कालीदास, सूरदास, घनान्द, रवीन्द्र नाथ टैगोर तो पश्चिमी कवियों में गेटे और वर्डसवर्थ, कॉलरिज व टैनीसन के सृजन की गहरी छाप पड़ी है। रीतिवादी रूढ़ियों व सली गढ़ी परम्पराओं के वे जन्मजात विद्रोही रहै और परिवर्तन के आकांक्षी। इसी कारण अपने सृजन व चिन्तन में पंत का समस्त रचनाकर्म इन्हीं विशेषताओं को व्यंजित करता है।

काव्य रचनाएँ

कविवर पंत का रचनाकाल सन् 1916 से लेकर 1977 ई. तक लगभग साठ वर्षो तक फैला हुआ है। 'वीणा' (1918 में प्रकाशित) उनका आरम्भिक काव्य-संग्रह तथा 'ग्रंथि' (1920 में) प्रकाशित हुआ। पंत की काव्य रचनाएँ प्रकाशन क्रम में इस प्रकार उल्लेखित हैं -

'वीणा' (1918), ग्रन्थि (1920), पल्लव (1922-1926 तक की रचनाएँ), 'गुंजन' (1926 से 1932 तक की रचनाएँ), ज्योत्सना (1934), युगान्त (1935), युगवाणी (1937), ग्राम्या (1939-40), स्वर्ण-किरण (1947), स्वर्ण धूलि (1947), मधुज्वाल, उमर खैय्याम का भावानुवाद और युग पथ (1948 ई.), खादी के फूल (1948), रजत शिखर (1951), शिल्पी, अतिमा, सौवर्ण, वाणी, 'कला और बूढ़ा चांद' है। 'लोकायतन' प्रथम महाकाव्य (1964)। इसके बाद किरण वीणा, पुरूषोत्तम राम, पौ फटने से पहले, गीता हंस, पतझर, शंख ध्वनि, रश्मिबन्ध (1971), शशि की तरी, समाधिता, आस्था, सत्यकाम, चिदम्बरा, गीत-अगीत, गीता हंस (1977) जैसे कई काव्य-संग्रह छपते रहै।

प्रबन्ध-काव्य - 'लोकायतन'

प्रतीक नाटक - ज्योत्सना

आत्म कथा - साठ वर्ष: एक रेखांकन

उपन्यास - हार (अप्रकाशित)

आलोचना: महादेवी संस्मरण ग्रन्थ, छायावाद का पुनर्मूल्यांकन

कविवर सुमित्रानंदन पन्त के काव्य का क्रमिक विकास -

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने अपने ग्रन्थ हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि में सुमित्रानन्दन पंत के काव्य का क्रमिक विकास विस्तार से विश्लेषित किया है। कवि की रचनाओं की सम्यक जानकारी के लिए उन्हें निम्नलिखित चार युगों में विभिक्त किया गया:

1. प्राकृतिक सौन्दर्यवादी युग: (1918 से 1934 तक की कविताएं) जिनका पूर्व में उल्लेख कर दिया गया है, इसमें संकलित हैं। सभी कविताएं तत्कालीन छायावीद प्रकृतियों के अन्तर्गत आती है। इस युग में कवि ने खड़ी बोली को बंगला और अंग्रेजी के नूतन स्वच्छन्दतावादी प्रयोगों से समृद्ध किया, उसमें कलात्मकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, प्रकृति का सचेतन सौन्दर्य, कोमल कल्पना के रंग भरे हैं।

2. यथार्थवादी युग: इस युग में 1935 से 1945 ई. तक की कविताओं का समावेश है। कवि नवीन आदर्शों, नवीन विचारों एवं नवीन भावना के सौन्दर्य-बोध की ओर अग्रसर होकर यर्थावाद की विचारधारा से प्रभावित होने लगता है। इसका आभास 'परिवर्तन' कविता में ही मिलने लगता है।

इस समय कवि जहाँ मार्क्सवाद तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित हुआ था, वहाँ वह

गांधीवाद से भी प्रभावित था।

कविवर पन्त की ‘युगान्त‘ से ‘ग्राम्या‘ तक की सम्पूर्ण यथार्थवादी युग की कविताओं का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने स्पष्ट रूप से प्राचीन विचारों एवं पुरातन मान्यताओं के प्रति तीव्र विद्रोह प्रकट किया है और नूतन विचारों एवं नवजागरण के लिए, नवीन क्रान्ति का समर्थन किया है। यहाँ आते-आते कवि की कोमल एवं सुकुमार प्रकृति कुछ-कुछ पौरूषपूर्ण हो गई है और वह शोषण एवं अन्याय को समूल नष्ट करने के लिए साहित्य में नूतन प्रवृतियों को जन्म देने लगा है। इन कविताओं में कवि ने प्राचीन रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, आचार-विचारों के प्रति, प्राचीन संस्कृतियों के जड़ बन्धनों के प्रति तथा पुरातन रूढ़िवादिता के प्रति गहरा असन्तोष व्यक्त किया है।

3. अन्तरश्चेतनावादी युग: इस युग में आकर कवि का बहिर्मुखी दृष्टिकोण सहसा अन्तर्मुखी हो जाता है। अभी तक वह मार्क्सवाद से अधिक प्रभावित रहने के कारण समाज की आर्थिक समता को ही सर्वाधिक महत्व देता था और इस आर्थिक समता को लाने के लिए वह हिंसात्मक क्रांन्ति के लिए ही प्रेरणा, दे रहा था, किन्तु अरविन्द-दर्शन का प्रभाव पड़ते ही कवि के दृष्टिकोण में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। अब वह यह विश्वास करने लगा कि आर्थिक अथवा बाह्य समता ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इसके लिए मानसिक अथवा आन्तरिक समता की अधिक आवश्यकता है और इस मानसिक समता के लिए प्रत्येक मानव के अन्तःकरण में तप, संयम, श्रद्धा, आस्तिकता या एक ईश्वर में विश्वास आदि परमावश्यक है। इस तरह कवि बाह्य साम्य के साथ-साथ आन्तरिक साम्य पर अधिक बल देने लगा।

4. नवमानवतावादी युग: ‘उत्तरा में कवि का ‘गीत-विहंग‘ स्पष्ट ही ‘‘मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता’’ कहकर इस युग की घोषणा कर रहा है। इसी कारण उत्तरा के उपरान्त कवि का नूतन काव्य संग्रह ‘कला‘ और ‘बूढ़ा चाँद‘ प्रकाशित हुआ था, जिसमें कवि की 1969 ई. तक की कविताएँ संकलित हैं। ये सभी कविताएँ प्रयोगवादी शैली पर लिखी गई हैं और इनमें बौद्धिकता का प्राधान्य है। इसके साथ ही 1955 ई. में ‘अतिमा’ नामक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ और 1961 में कविवर पन्त का सुप्रसिद्ध वृहत् काव्य ‘लोकायतन‘ प्रकाशित हुआ, जो 650 पृष्ठों का लोकजीवन का एक महान् काव्य है, इसमें कवि ने लोक चेतना का प्रतिनिधित्व किया है। इस नवमानवतावादी युग की रचनाओं में कवि ने मानवतावाद को समुन्त बनाने एवं मानव-चेतना के अन्तर्गत सृजन-शक्ति को कूट-कूट भरने के लिए प्रेरणा प्रदान की है। वर्तमान युग के जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर अपने मन की प्रक्रियायें व्यक्त की हैं!

104.2 परिवर्तन : पाठ एवं विवेचन

परिवर्तन : वाचन

(१)

अहै निष्ठुर परिवर्तन!
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन!
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,

निखिल उत्थान, पतन!
अहै वासुकि सहस्र फन!
लक्ष्य अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर
छोड़ रहै हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर !
शत-शत फेनोच्छवासित,स्फीत फुतकार भयंकर
घुमा रहै हैं घनाकार जगती का अंबर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर ,
अखिल विश्व की विवर वक्र कुंडल दिग्मंडल !

(२)

आज कहां वह पूर्ण-पुरातन, वह सुवर्ण का काल?
भूतियों का दिगंत-छबि-जाल,
ज्योति-चुम्बित जगती का भाल?
राशि राशि विकसित वसुधा का वह यौवन-विस्तार?
स्वर्ग की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार!
प्रसूनों के शाश्वत-शृंगार,
(स्वर्ण-भृंगों के गंध-विहार)
गूंज उठते थे बारंबार,
सृष्टि के प्रथमोद्गार!
नग्न-सुंदरता थी सुकुमार,
ऋध्दि औ' सिध्दि अपार!
अये, विश्व का स्वर्ण-स्वप्न, संसृति का प्रथम-प्रभात,
कहाँ वह सत्य, वेद-विख्यात?
दुरित, दु:ख, दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा-मरण-भ्रू-पात!

(३)

अह दुर्जेय विश्वजित !
नवाते शत सुरवर नरनाथ
तुम्हारे इन्द्रासन-तल माथ;
घूमते शत-शत भाग्य अनाथ,
सतत रथ के चक्रों के साथ !
तुम नृशंस से जगती पर चढ़ अनियंत्रित ,
करते हो संसृति को उत्पीड़न, पद-मर्दित ,
नग्न नगर कर,भग्न भवन,प्रतिमाएँ खंडित
हर लेते हों विभव,कला,कौशल चिर संचित !
आधि,व्याधि,बहुवृष्टि,वात,उत्पात,अमंगल

वह्नि,बाढ़,भूकम्प --तुम्हारे विपुल सैन्य दल;
अहै निरंकुश ! पदाघात से जिनके विह्वल
हिल-इल उठता है टलमल
पद दलित धरातल !

(४)

जगत का अविरत हृतकंपन
तुम्हारा ही भय -सूचन ;
निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण !
विपुल वासना विकच विश्व का मानस-शतदल
छान रहै तुम,कुटिल काल-कृमि-से घुस पल-पल;
तुम्हीं स्वेद-सिंचित संसृति के स्वर्ण-शस्य-दल
दलमल देते,वर्षोपल बन, वांछित कृषिफल !
अये ,सतत ध्वनि स्पंदित जगती का दिग्मंडल
नैश गगन - सा सकल
तुम्हारा हीं समाधि स्थल !
रचनाकाल: १९२४

परिवर्तन : चुनिन्दा अंशों की ससंदर्भ व्याख्या

बिना दुख के सब .... गति-क्रम का हास् ।

बिना दुख के सब सुख निस्सार
बिना आँसू के जीवन भार;
दीन दुर्बल है रे संसार
इसी से दया, क्षमा औ-प्यार,
आज का दुख कल का आह्लाद
और कल का सुख, आज विषाद,
समस्या स्वप्न गूढ़ संसार,
पूर्ति जिसकी उस पार।
जगत जीवन का अर्थ विकास
मृत्यु गति-क्रम का ह्रास ।

शब्दार्थ: निस्सार: व्यर्थ, आह्लाद: हर्ष, विषाद: दुख, ह्रास : पतन।

प्रसंग: यह काव्य पंक्तियाँ सुमित्रानन्दन पंत की लम्बी कविता ‘परिवर्तन‘ से ली गई है। दुखवाद और मध्ययुगीन निराशा बोध से यह कविता संचालित है। कवि इस कविता के माध्यम से संदेश देते है कि परिवर्तन अवश्यम्भावी है ओर जीवन की एकरसता को ताड़ने के लिए आवश्यक है। प्रकृति और जीवन के अनेक उदाहरणों से कवि जीवन और जगत में परिवर्तन को रेखांकित करते हैं।

सर्वप्रथम कविता में क्षोभ और वेदना का भाव है। सुख का दुख में आह्लाद का विषाद में, आर्द्रता का शुष्कता में परिवर्तन होने से यह वेदना पैदा होती है। अतः कवि पुनः दुख से सुख की ओर बढ़ता है और अंत में इस निर्णय पर पहुँचता है कि परिवर्तन ही जीवन का सत्य है। इसी भाव की विवेचना व्याख्या खण्ड में की गई है।

व्याख्या: कवि का संकेत है कि संसार में सुख-दुख का क्रम चलायमान रहता है। सुख और दुख परस्पर सम्बद्ध है। बिना दुख के सुख का महत्व आँका नहीं जा सकता। दुखों की आधारभूमि में ही सुखों की सारता नजर आती है। आँसू के बिना जीवन भी भार युक्त हो जाता है अर्थात् जड़ हो जाता है। सुख जीवन को जड़ बना देता है और जड़ता जीवन की गतिहीन अवस्था है। दुख एक प्रकार से सृजनात्मक होता है। सुख की अपेक्षा दुख के भाव की व्यापकता है। इसीलिए संसार दीन दुर्बल है। संसार में क्षमा, दया और प्यार जैसे उदार मानवीय भाव का जन्म दुख से ही होता है । इन्हीं मानवीय भावों की महिमा संसार में हैं

कवि लिखता है कि काल की विविधता में सुख और दुख का द्वन्द्व सदैव विद्यमान रहता है। आज जो दुख के क्षण है, वही कल आनन्द में बदल जाएगा और अतीत का जो हर्ष था, वही वर्तमान में विषाद में बदल जाएगा। सुख-दुख की अनुभूति से संसार पीड़ित है। इस संसार की समस्या का समाधान स्वप्न के समान गूढ़ रहस्यमयी है। इसका निदान इस लोक जीवन से परे आध्यात्मिक लोक में सम्भव है। वहाँ राग और विषाद की अनुभूति नहीं होती। वास्तविक जीवन का अर्थ विकास है। विकास की प्रक्रिया में सुख-दुख से ही जीवन क्रम गतिमान रहता है सुख-दुख के क्रम का ह्रास होने पर मृत्यु गति निश्चित है। संसारी जीवन का अर्थ है निरन्तर गतिशीलता और परिवर्तन। मृत्यु जीवन के इस गतिक्रम के रूकने या ठहरने का नाम है।

विशेष:

1. सुख-दुख की द्वन्द्वात्मक अनुभूतियों का वर्णन है। दुख सृजनात्मक भावों का मूल आधार है।
2. इस पद्यांश में आधुनिक चिन्तपरक भाव विद्यमान है। सुख-दुख की द्वन्द्वात्मक चेतना आधुनिकता की पहचान है। 'जगत जीवन' का अर्थ विकास कहकर कवि ने आधुनिक चेतना को व्यक्त किया है।
3. छन्द में आंतरिक लय और संयोजन है, प्रसादगुण युक्त शब्दावली है।
4. जय शंकर ने भी कामायनी में सुख-दुख यही विकास का क्रम, यही 'भूमा का मधुमय दान कहकर सुख-दुखात्मक द्वन्द्व को व्यक्त किया है।

10.5सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि –

- रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के महत्वपूर्ण कवि हैं। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक बोध को लेकर चलने वाली कविता है।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' की वैचारिक निष्पत्ति प्रेम, विद्रोह एवं सामाजिकता से होती हुई कामाध्यात्म तक पहुँचती है।

- दिनकर काव्य की भाषा ओजपूर्ण एवं प्रावहपूर्ण है। भावों को वहन करने में समर्थ भाषा ही प्राणवान होती है। दिनकर की भाषा उपरोक्त गुणों से युक्त है।
- सुमित्रानंदन पंत छायावादी काव्यधारा के प्रमुख प्रतिनिधि कवि हैं। अमूर्त भावनाओं को मूर्त करने के लिए पंत जी के कथ्य और उसके प्रस्तुतिकरण में किसी प्रकार की दूरी नहीं है।

10.6शब्दावली

- संत्रास - भय एवं पीड़ा जनक स्थिति
- उत्तर-आधुनिकता - आधुनिकता के बाद का काल
- विकेन्द्रीकरण - किसी वस्तु ,विचार का एक केन्द्र में न पाया जाना
- प्रतिबद्धता - किसी विचार के प्रति दृढ़ निश्चय की स्थिति
- समकालीनता - अपने काल का, वर्तमान काल में, एक साथ

10.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 के उत्तर

1. महाभारत 2. कर्ण 3. कामाध्यात्म 4. 1961 ई0
5. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक 6. दिनकर

10.8संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, विजेन्द्र नारायण सिंह – रामधारी सिंह ‘दिनकर’, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
2. सिंह, बच्चन सिंह – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
4. पंत, सुमित्रा नन्दन, आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा और नवीनता, ई. चैलिशेव, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. नीरज, गोपाल दास, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
6. भटनागर, डॉ. राम रतन, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, युनिवर्सल प्रेस, इलाहाबाद।

10.9सहायक पाठ्य सामग्री

1. वाजपेयी, नंददुलारे, कवि सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1997
2. सिंह, नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी।
4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता की अवधारणा किस प्रकार अभिव्यक्त हुई है ? स्पष्ट कीजिए।
2. राष्ट्र कवि दिनकर का संक्षिप्त जीवन एवं साहितियक परिचय लिखिए तथा 'उर्वशी' की मूल समस्या पर प्रकाश डालिए।
3. 'सुमित्रानन्दन पन्त की कविता अनुभुति एवं अभिव्यक्ति के संतुलन का सुन्दर उदाहरण है।' सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

इकाई 11 ‘सरोज स्मृति’ एवं ‘असाध्य वीणा’ : पाठ एवं विवेचना

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’: जीवन एवं कृतित्त्व

11.3.1 जीवन परिचय एवं कृतित्त्व

11.3.2 ‘सरोज स्मृति’ : पाठ एवं विवेचना

11.4 अज्ञेय : जीवन एवं कृतित्त्व

11.4.1 जीवन परिचय एवं कृतित्त्व

11.4.2 ‘असाध्य वीणा’ : पाठ एवं विवेचना

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.9 सहायक पाठ्य सामग्री

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातक द्वितीय वर्ष के प्रथम प्रश्न पत्र .... इकाई है . इस इकाई से पूर्व आप ने आधुनिक हिन्दी पद्य साहित्य के दो महान कवियों के जीवन एवं कृतित्त्व का अध्ययन किया.

इस इकाई में आप हिन्दी साहित्य के दो विशिष्ट कवियों एक उनकी दो प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कविताओं के पाठ-विवेचन का अध्ययन करेंगे.

इकाई के प्रथम भाग में आप सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का संक्षिप्त जीवन से परिचित होंगे तथा साथ ही साथ 'निराला' द्वारा लिखित सुप्रसिद्ध लंबी कविता 'सरोज स्मृति' के चुनिन्दा पाठ का अध्ययन करेंगे.इकाई के दूसरे भाग में आप हिन्दी के एक अन्य विशिष्ट व्यक्तित्त्व एवं नई कविता के स्तम्भ श्री हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के जीवन एवं काव्य का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे.

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि आधुनिक हिन्दी कविता का क्या महत्व है।
- निराला के जीवन एवं काव्य का परिचय प्राप्त करेंगे ।
- अज्ञेय के जीवन एवं काव्य का परिचय प्राप्त करेंगे।
- हिन्दी कविता के विकास में 'निराला' एवं अज्ञेय का अवदान समझ सकेंगे।

11.3 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' : जीवन एवं कृतित्त्व

11.3.1 जीवन परिचय एवं कृतित्त्व

जीवन परिचय - महाकवि निराला का कवित्व जितना वैविध्यपूर्ण, रोचक एवं विशिष्ट है उतना ही उनका व्यक्तित्व भी उदार , दृढ़ व आकर्षक है। निराला का जन्म सन् 1896 में बसंत पंचमी के दिन 'कान्यकुब्ज' ब्राह्मण परिवार के पं. रामसहाय त्रिपाठी के घर उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के एक गाँव 'गंढ़ाकोला' में हुआ था। पं. राम सहाय त्रिपाठी बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल राज्य में नौकरी करते थे। इनका स्वभाव उत्यन्त उग्र था और एकमात्र संतान निराला जी को पिता के क्रोध को झेलना पड़ता था। कहा जाता है कि निराला की माँ सूर्य की अराधना करती थी और इनका जन्म भी रविवार को हुआ था अतः निराला जी का जन्म नाम सूर्यकुमार रखा गया। बाद में स्वयं निराला जी ने इसे 'सूर्यकान्त' में परिवर्तित कर दिया। निराला जी की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा बंगला में ही हुई। हाईस्कूल के जीवन में ही इन्होंने संगीत, घुड़दौड़ और कुश्ती में दक्षता प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त संगीत में भी उनकी गहन रूचि थी व उनका कण्ठ स्वर बहुत सधा हुआ था। सन् 1911 में जब ये हाईस्कूल में अध्ययनरत थे तब इनका विवाह मनोहरा देवी से हुआ। सन् 1916 में देश में जब महामारी का प्रकोप फैला तब त्रिपाठी परिवार भी उसके आगोश में समा गया। पिताजी चल बसे, उसके एक साल बाद इनके चाचा, भाई, भाभी, भतीजी और पत्नी की भी मृत्यु हो गई। अकेले तेईस वर्षीय निराला पर अन्य अपने एक पुत्री एवं पुत्र के अतिरिक्त चार बालकों के भरण-पोषण का भार आ गया। इन विषम परिस्थितियों

में भी निराला अविचिलित रहै । निराला जी ने महिषादल राज्य में नौकरी की, परन्तु अपने स्वाभिमानी व विद्रोही स्वभाव के कारण निराला को नौकरी छोड़नी पड़ी। जीविका का और कोई साधन नहीं था इसलिए निराला जी साहित्य के क्षेत्र में ही अनुवाद, लेख, टीका-टिप्पणी जो भी लिख सकते थे, लिखते रहै और पत्र-पत्रिकाओं में छपवाने के लिए संघर्षरत् रहै । पर धीरे-धीरे उनकी प्रतिभा का सम्मान हुआ और वे साहित्य-जगत में स्थिर होते गए।

वस्तुतः निराला जी का पूरा जीवन ही तूफानों में घिरने, टकराने और अन्ततः दृढ़ता से उन पर विजय पाने की अमर गाथा है। 'राम जी की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' की रचना उनकी इसी मन स्थित का प्रमाण है। 27 जनवरी, सन् 1947 को बसंत पंचमी के दिन निराला जयन्ती का समारोह बड़े धूमधाम से काशी में मनाया गया था। निराला के जीवन के अन्तिम दिन शारीरिक और मानसिक कष्ट में बीते और लम्बी बीमारी के उपरान्त 15 अक्टूबर, 1961 को दारागंज (प्रयाग) में उनकी इहलीला समाप्त हो गया। उनकी 'नये पत्ते ', 'बेला', 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' दारागंज के लिखी गए रचनाएं मानी जाती है। विषम परिस्थितियों में जहाँ निराला टूटे हैं वहीं अपने अन्तर से शक्ति-ग्रहण की जीवन-संघर्ष से जूझे भी हैं। यही कारण है कि निराला के व्यक्तित्व में हम संघर्ष प्रियता, रूढ़ियों का विरोध, विद्रोह व क्रान्ति का स्वर विशेष रूप से देखते है। तो दूसरी ओर करूणा तथा जगत की नश्वरता का भाव भी। निराला ने छन्द को ही निर्बन्ध नहीं किया वरन् स्वयं भी बन्धन रहित रहै । फकीरी और स्वाभिमानी उनके स्वभाव में रही। उनके बाह्य व्यक्तित्व की झलक इस प्रकार से थी - ''कद लगभग छः फुट, चौड़ा सीना, विशाल मस्तक, दिव्य तेज से परिपूर्ण आँखें, बैल की तरह चौड़े कन्धे, विशाल बाहू, तीखी सुडौल नासिका और लम्बे बाल। साहित्यिक सभा, गोष्ठियों और अन्य सामाजिक आयोजना में उनका सुदर्शन व्यक्तित्व छाया रहता था। उनकी आकृति और शारीरिक संरचना ग्रीक योद्धाओं के समान थीं, इसीलिए कोई उन्हें 'अपोलो' कहता था, तो कोई 'विवेवकानन्द'।

निराला जी जीवन भर परोपकारी रहै । निराला जी के आत्मसम्मान की प्रकृति को लोग अहंकार, समझते रहै परन्तु निराला जी का अहंकार व्यक्तिगत स्तर पर कभी नहीं रहा। वे बोलते तब समस्त हिन्दी साहित्य व साहित्यकारों की ओर से बोलते, दलित व पीड़ित मानव की ओर से बोलते। फैजाबाद के साहित्य सम्मेलन में आचार्य शुक्ल को नीचे और राजैनितक नेताओं को उच्च मंच पर आसीन देखकर वे टण्डन से उलझ गऐ थे। सन् 1935-36 में गाँधी जी जब हिन्दी साहित्य सम्मलेन के सभापति चुने गऐ थे तब हिन्दी साहित्यकारों के सन्दर्भ में दोनों की वार्ता में विरोधाभास नजर आया था। वास्तव में निराला का स्वाभिमान देश, जाति, संस्कृति और साहित्य का स्वाभिमान था। मानवता की रक्षा और सत्य पालन के लिए समाज की नजर में पतित, अछूत, नगण्य एवं पापी व्यक्तियों को भी बिना हिचक गले लगाया। इनकी पत्नी मनोहरा देवी के प्रति निराला का प्रेम भी अटूट था। जिस प्रकार रत्नावली के कथन ने तुलसी को राम भक्ति की ओर विमुख किया उसी प्रकार निराला को भी उनकी पत्नी के हिन्दी-कविता और देश-प्रेम की ओर मोड़ा। इस सम्बन्ध में एक घटना सर्वप्रसिद्ध है - मनोहरा देवी सुन्दर थी, पंडिता थी, साहित्यिक ज्ञान में निराला से बीस ही थी। एक दिन झल्लाकर निराला जी ने पूछा ''तुम हिन्दी-हिन्दी करती हो, हिन्दी में क्या है? जवाब मिला, ''तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं'' निराला जी ने कहा, ''हिन्दी हमें नहीं आती?'' मनोहरा देवी ने कहा ''यह तो तुम्हारी जबान बतलाती

है। बैसवाड़ी बोल लेते हो, तुलसीकृत ‘रामायण‘ पढ़ी है, बस। तुम खड़ी बोली को क्या जानते हो? और फिर मनोहरा देवी ने हिन्दी के कई धुरंधर पडितों के नाम दोहरा दिए। निराला भौचक्के। यह बात उनके मन में गहरी चोट कर गई। उन्होंने हिन्दी सीखने की ठानी और रात-रात भर जाग कर सरस्वती और मर्यादा पत्रिकाओं के आधार पर हिन्दी सीखी और ऐसी सीखी कि साहित्यिक क्षेत्र में उनका अवदान अविस्मरणीय रहा। पत्नी का यह ऋण निराला भूले नहीं। सन् 1936 में प्रकाशित अपने ‘गीतिका‘ काव्य संग्रह की अर्पण पत्रिका में अपनी पत्नी के प्रति आदर भाव प्रकट करते हुए निराला ने लिखा था - ‘‘जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी रूक्षता को देखकर मुसकरा देती थी। जिसने अन्त में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण-परिणिता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य श्रृंगार की पूर्ति की, उस सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया का महत्व समझकर ही निराला ने ‘तुलसीदस‘ काव्य की रचना की, जो उनकी एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक देन हैं।

साहित्यकार अपनी वैचारिक संवेदना व रचनाओं की अन्तर्वस्तु समसामयिक परिवेश से अवश्य प्रभाव ग्रहण करती है। कवि कर्म का उद्देश्य समसामयिक यथार्थ बोध कराना होता है। इस दृष्टि से निराला जी के साहित्य पर विचार करते समय हम देखते हैं कि उनका रचना-कर्म 1916 से 1960 तक के सुदीर्घ कालखण्ड में फैला हुआ है। द्विवेदी युगीन कवियों ने अपने अतीत को पुनः स्मरण कर राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का गान किया और छायावादी युग तक आते-आते इस भावना ने नवजागरण का रूप ले लिया और मोहभंग की स्थित उत्पन्न हुई। निराला जी की कविताओं में पराधीन भारत में व्याप्त विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश व क्रान्ति का भाव तथा स्वतंत्र भारत में आदर्श व स्वप्न-भंग के कारण असंतोष व विद्रोह का भाव पूर्ण रूप से व्यक्त हुआ है। निराला ने समसामयिक चेतना को काव्य में सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

छायावादी काव्य का प्रारम्भ सन् 1918 के आसपास माना जाता है। उन्हीं दिनों निराला भी साहित्य- साधना में पूरी तन्मयता से लीन थे। सन् 1923 में ‘अनामिका‘ नामक प्रथम काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात ‘परिमल‘ (1930), ‘गीतिका‘ (1936), ‘अनामिका‘ (1938), ‘तुलसीदास‘ (1938), ‘कुकुरमुत्ता ‘ (1942), ‘अणिमा‘ (1943), ‘बेला‘ (1943), ‘अपरा‘ (1946), ‘नए पत्ते ‘ (1946), ‘अर्चना‘ (1950), ‘आराधन‘ (1953) और ‘गीत गुंज‘ (1953) आदि निराला के प्रकाशित काव्य संकलन हैं। ‘अर्चना‘, ‘अराधना‘ और ‘गीत गुंज‘ में सुन्दर मंगलाचरण गीत भी है। गीतगुंज के गीत शब्दावली में सरल और संगीतोपयोगी हैं।

पं. नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला-काव्य का अध्ययन पाँच चरणों में बाँटकर किया। प्रथम चरण में उन्होंने परिमल तक की कविताओं को रखा, दूसरे चरण में ‘गीतिका‘ के गीतों को, तीसरे चरण में ‘तुलसीदास‘, ‘सरोजस्मृति‘ और ‘राम की शक्ति पूजा‘ जैसे दीर्घ प्रगीतों को, चौथे चरण में ‘कुकुरमुत्ता ‘, ‘अणिमा‘, ‘बेला‘ और ‘नए पत्ते' तक की प्रयोगात्मक रचनाओं को और पांचवे चरण में ‘अर्चना‘-‘अराधना‘ व ‘गीतगुंज‘ संकलित गीतों को स्थान दिया है। इनकी प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरण की रचनाओं में समासयुक्त तत्सम बहुल शब्दावली का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। चतुर्थ चरण की रचनाओं में बोलचाल की भाषा में कहीं व्यंग्य का तीख रूप है तो कहीं हास्य-व्यंग्य की मिश्रित छाया है। और अन्तिम चरण की रचनाओ में

विशुद्ध एवं सरल, भक्ति-भाव सम्पन्न रूप मिलता है।

निराला के कवि-कर्म का संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है - पूर्ववर्ती काल (1920-38) तक की निराला की मुख्य दार्शनिक कविताएँ मानी जाती हैं - 'अधिवास', 'पंचवटी प्रसंग', 'तुम और मैं', 'प्रकाश', 'जग का एक देखा तार' और 'पास ही रे', 'हीरे की खान'। 1939-40 ई. से विवेकानद का दर्शन उन्हें अपर्याप्त लगने लगता है और उनकी कविताओं में अन्य विचार पद्धतियों को अपनाने का भी संकेत मिलने लगता है। उनकी काव्य रचनाओं नया समाजशास्त्रीय चिंतन उभर कर सामने आता है। निराला की अनेक कविताओं में दीनों और दलितों का चित्रण किया गया है। अब तक निराला समाज और राष्ट्र की कठोर वास्तविकताओं के सामने नहीं आए थे। सारा राष्ट्र जिस प्रकार पुनर्जागरण और स्वाधीनता-संग्राम-काल के कुछ बड़े-बड़े आदर्शवादी स्वप्नों में खोया था, वे भी खोए थे। सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा है, भारत विश्व को नया आध्यात्मिक संदेश देगा, यह देश एक नए प्रकार की शक्ति के रूप में उभरेगा आदि स्वप्न ही थे, जो कि वर्तमान शताब्दी के चौथे दशक के अंत और पांचवें दशक के आरंभ-काल में भारतीय प्रदेशों में कांग्रेस के शासन से त्यागपत्र देकर अलग हो जाने, द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ, भारत छोड़ों आन्दोलन, बंगाल के अकाल आदि राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं से ध्वस्त हो गए। स्वतंत्रता-आंदोलन में इस देश की निम्न तथा निम्न-मध्यवर्गीय जनता अब तक उपेक्षित थी।

11.3.2 'सरोज स्मृति' : पाठ एवं विवेचना

सरोज स्मृति : वाचन

ऊनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन-सिन्धु-तरण;
तनये, ली कर दृक्पात तरुण
जनक से जन्म की विदा अरुण!
गीते मेरी, तज रूप-नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय,
चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण
कह - "पित:, पूर्ण आलोक-वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण,
'सरोज' का ज्योति:शरण - तरण!" --
अशब्द अधरों का सुना भाष,
मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश
मैंने कुछ, अहरह रह निर्भर
ज्योतिस्तरणा के चरणों पर।
जीवित-कविते, शत-शर-जर्जर
छोड़ कर पिता को पृथ्वी पर

तू गई स्वर्ग, क्या यह विचार --
"जब पिता करेंगे मार्ग पार
यह, अक्षम अति, तब मैं सक्षम,
तारूँगी कर गह दुस्तर तम?" --
कहता तेरा प्रयाण सविनय, --
कोई न था अन्य भावोदय।
श्रावण-नभ का स्तब्धान्धकार
शुक्ला प्रथमा, कर गई पार!
धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका!
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अत: दधिमुख।
क्षीण का न छीना कभी अन्न,
मैं लख न सका वे दृग विपन्न;
अपने आँसुओं अत: बिम्बित
देखे हैं अपने ही मुख-चित।
सोचा है नत हो बार बार --
"यह हिन्दी का स्नेहोपहार,
यह नहीं हार मेरी, भास्वर
यह रत्नहार-लोकोत्तर वर!" --
अन्यथा, जहाँ है भाव शुद्ध
साहित्य-कला-कौशल प्रबुद्ध,
हैं दिये हुए मेरे प्रमाण
कुछ वहाँ, प्राप्ति को समाधान
पार्श्व में अन्य रख कुशल हस्त
गद्य में पद्य में समाभ्यस्त। --
देखें वे; हसँते हुए प्रवर,
जो रहै देखते सदा समर,
एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण,
देखता रहा मैं खडा़ अपल
वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल।

व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल
क्रुद्ध युद्ध का रुद्ध-कंठ फल।
और भी फलित होगी वह छवि,
जागे जीवन-जीवन का रवि,
लेकर-कर कल तूलिका कला,
देखो क्या रँग भरती विमला,
वांछित उस किस लांछित छवि पर
फेरती स्नेह कूची भर।
अस्तु मैं उपार्जन को अक्षम
कर नहीं सका पोषण उत्तम
कुछ दिन को, जब तू रही साथ,
अपने गौरव से झुका माथ,
पुत्री भी, पिता-गेह में स्थिर,
छोड़ने के प्रथम जीर्ण अजिर।
आँसुओं सजल दृष्टि की छलक
पूरी न हुई जो रही कलक
प्राणों की प्राणों में दब कर
कहती लघु-लघु उसाँस में भर;
समझता हुआ मैं रहा देख,
हटती भी पथ पर दृष्टि टेक।
तू सवा साल की जब कोमल
पहचान रही ज्ञान में चपल
माँ का मुख, हो चुम्बित क्षण-क्षण
भरती जीवन में नव जीवन,
वह चरित पूर्ण कर गई चली
तू नानी की गोद जा पली।
सब किये वहीं कौतुक-विनोद
उस घर निशि-वासर भरे मोद;
खाई भाई की मार, विकल
रोई उत्पल-दल-दृग-छलछल,
चुमकारा सिर उसने निहार
फिर गंगा-तट-सैकत-विहार
करने को लेकर साथ चला,
तू गहकर चली हाथ चपला;
आँसुओं-धुला मुख हासोच्छल,
लखती प्रसार वह ऊर्मि-धवल।

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि-जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त
लिखता अबाध-गति मुक्त छंद,
पर संपादकगण निरानंद
वापस कर देते पढ़ सत्त्वर
दे एक-पंक्ति-दो में उत्तर।
लौटी लेकर रचना उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन-गुन कर
सम्पादक के गुण; यथाभ्यास
पास की नोंचता हुआ घास
अज्ञात फेंकता इधर-उधर
भाव की चढी़ पूजा उन पर।
याद है दिवस की प्रथम धूप
थी पडी़ हुई तुझ पर सुरूप,
खेलती हुई तू परी चपल,
मैं दूरस्थित प्रवास में चल
दो वर्ष बाद हो कर उत्सुक
देखने के लिये अपने मुख
था गया हुआ, बैठा बाहर
आँगन में फाटक के भीतर,
मोढ़े पर, ले कुंडली हाथ
अपने जीवन की दीर्घ-गाथ।
पढ़ लिखे हुए शुभ दो विवाह।
हँसता था, मन में बडी़ चाह
खंडित करने को भाग्य-अंक,
देखा भविष्य के प्रति अशंक।
इससे पहिले आत्मीय स्वजन
सस्नेह कह चुके थे जीवन
सुखमय होगा, विवाह कर लो
जो पढी़ लिखी हो -- सुन्दर हो।
आये ऐसे अनेक परिणय,
पर विदा किया मैंने सविनय
सबको, जो अड़े प्रार्थना भर
नयनों में, पाने को उत्तर

अनुकूल, उन्हें जब कहा निडर --
"मैं हूँ मंगली," मुड़े सुनकर
इस बार एक आया विवाह
जो किसी तरह भी हतोत्साह
होने को न था, पडी़ अड़चन,
आया मन में भर आकर्षण
उस नयनों का, सासु ने कहा --
"वे बड़े भले जन हैं भैय्या,
एन्ट्रेंस पास है लड़की वह,
बोले मुझसे -- 'छब्बीस ही तो
वर की है उम्र, ठीक ही है,
लड़की भी अट्ठारह की है।'
फिर हाथ जोडने लगे कहा --
' वे नहीं कर रहै ब्याह, अहा,
हैं सुधरे हुए बड़े सज्जन।
अच्छे कवि, अच्छे विद्वज्जन।
हैं बड़े नाम उनके। शिक्षित
लड़की भी रूपवती; समुचित
आपको यही होगा कि कहें
हर तरह उन्हें; वर सुखी रहें।'
आयेंगे कल।" दृष्टि थी शिथिल,
आई पुतली तू खिल-खिल-खिल
हँसती, मैं हुआ पुन: चेतन
सोचता हुआ विवाह-बन्धन।
कुंडली दिखा बोला -- "ए -- लो"
आई तू, दिया, कहा--"खेलो।"
कर स्नान शेष, उन्मुक्त-केश
सासुजी रहस्य-स्मित सुवेश
आईं करने को बातचीत
जो कल होनेवाली, अजीत,
संकेत किया मैंने अखिन्न
जिस ओर कुंडली छिन्न-भिन्न;
देखने लगीं वे विस्मय भर
तू बैठी संचित टुकडों पर ।
धीरे-धीरे फिर बढा़ चरण,
बाल्य की केलियों का प्रांगण

कर पार, कुंज-तारुण्य सुघर
आईं, लावण्य-भार थर-थर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यौं मालकौस नव वीणा पर,
नैश स्वप्न ज्यों तू मंद मंद
फूटी उषा जागरण छंद
काँपी भर निज आलोक-भार,
काँपा वन, काँपा दिक् प्रसार।
परिचय-परिचय पर खिला सकल --
नभ, पृथ्वी, द्रुम, कलि, किसलय दल
क्या दृष्टि। अतल की सिक्त-धार
ज्यों भोगावती उठी अपार,
उमड़ता उर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील नील,
पर बँधा देह के दिव्य बाँध;
छलकता दृगों से साध साध।
फूटा कैसा प्रिय कंठ-स्वर
माँ की मधुरिमा व्यंजना भर
हर पिता कंठ की दृप्त-धार
उत्कलित रागिनी की बहार!
बन जन्मसिद्ध गायिका, तन्वि,
मेरे स्वर की रागिनी वह्नि
साकार हुई दृष्टि में सुघर,
समझा मैं क्या संस्कार प्रखर।
शिक्षा के बिना बना वह स्वर
है, सुना न अब तक पृथ्वी पर!
जाना बस, पिक-बालिका प्रथम
पल अन्य नीड़ में जब सक्षम
होती उड़ने को, अपना स्वर
भर करती ध्वनित मौन प्रान्तर।
तू खिंची दृष्टि में मेरी छवि,
जागा उर में तेरा प्रिय कवि,
उन्मनन-गुंज सज हिला कुंज
तरु-पल्लव कलिदल पुंज-पुंज
बह चली एक अज्ञात बात
चूमती केश--मृदु नवल गात,

देखती सकल निष्पलक-नयन
तू, समझा मैं तेरा जीवन।
सासु ने कहा लख एक दिवस :--
"भैया अब नहीं हमारा बस,
पालना-पोसना रहा काम,
देना 'सरोज' को धन्य-धाम,
शुचि वर के कर, कुलीन लखकर,
है काम तुम्हारा धर्मोत्तर;
अब कुछ दिन इसे साथ लेकर
अपने घर रहो, ढूंढकर वर
जो योग्य तुम्हारे, करो ब्याह
होंगे सहाय हम सहोत्साह।"
सुनकर, गुनकर, चुपचाप रहा,
कुछ भी न कहा, -- न अहो, न अहा;
ले चला साथ मैं तुझे कनक
ज्यों भिक्षुक लेकर, स्वर्ण-झनक
अपने जीवन की, प्रभा विमल
ले आया निज गृह-छाया-तल।
सोचा मन में हत बार-बार --
"ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषय-बेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरुस्थल -- नहीं सुजल।"
फिर सोचा -- "मेरे पूर्वजगण
गुजरे जिस राह, वही शोभन
होगा मुझको, यह लोक-रीति
कर दूं पूरी, गो नहीं भीति
कुछ मुझे तोड़ते गत विचार;
पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूँ अक्षम; निश्चय
आयेगी मुझमें नहीं विनय
उतनी जो रेखा करे पार
सौहार्द्र-बंध की निराधार।
वे जो यमुना के-से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार

खाये के मुख ज्यों पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर-गंध,
उन चरणों को मैं यथा अंध,
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूं, ऐसी नहीं शक्ति।
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह!"
फिर आई याद -- "मुझे सज्जन
है मिला प्रथम ही विद्वज्जन
नवयुवक एक, सत्साहित्यिक,
कुल कान्यकुब्ज, यह नैमित्तिक
होगा कोई इंगित अदृश्य,
मेरे हित है हित यही स्पृश्य
अभिनन्दनीय।" बँध गया भाव,
खुल गया हृदय का स्नेह-स्राव,
खत लिखा, बुला भेजा तत्क्षण,
युवक भी मिला प्रफुल्ल, चेतन।
बोला मैं -- "मैं हूँ रिक्त-हस्त
इस समय, विवेचन में समस्त --
जो कुछ है मेरा अपना धन
पूर्वज से मिला, करूँ अर्पण
यदि महाजनों को तो विवाह
कर सकता हूँ, पर नहीं चाह
मेरी ऐसी, दहैज देकर
मैं मूर्ख बनूं यह नहीं सुघर,
बारात बुला कर मिथ्या व्यय
मैं करूँ नहीं ऐसा सुसमय।
तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम,
लग्न के; पढूंगा स्वयं मंत्र
यदि पंडितजी होंगे स्वतन्त्र।
जो कुछ मेरे, वह कन्या का,
निश्चय समझो, कुल धन्या का।"
आये पंडित जी, प्रजावर्ग,
आमन्त्रित साहित्यिक ससर्ग

देखा विवाह आमूल नवल,
तुझ पर शुभ पडा़ कलश का जल।
देखती मुझे तू हँसी मन्द,
होंठो में बिजली फँसी स्पन्द
उर में भर झूली छवि सुन्दर,
प्रिय की अशब्द श्रृंगार-मुखर
तू खुली एक उच्छवास संग,
विश्वास-स्तब्ध बँध अंग-अंग,
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर।
देखा मैनें वह मूर्ति-धीति
मेरे वसन्त की प्रथम गीति --
श्रृंगार, रहा जो निराकार,
रस कविता में उच्छवसित-धार
गाया स्वर्गीया-प्रिया-संग --
भरता प्राणों में राग-रंग,
रति-रूप प्राप्त कर रहा वही,
आकाश बदल कर बना मही।
हो गया ब्याह आत्मीय स्वजन
कोई थे नहीं, न आमन्त्रण
था भेजा गया, विवाह-राग
भर रहा न घर निशि-दिवस जाग;
प्रिय मौन एक संगीत भरा
नव जीवन के स्वर पर उतरा।
माँ की कुल शिक्षा मैंने दी,
पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची,
सोचा मन में, "वह शकुन्तला,
पर पाठ अन्य यह अन्य कला ।"
कुछ दिन रह गृह तू फिर समोद
बैठी नानी की स्नेह-गोद।
मामा-मामी का रहा प्यार,
भर जलद धरा को ज्यों अपार;
वे ही सुख-दुख में रहै न्यस्त,
तेरे हित सदा समस्त, व्यस्त;
वह लता वहीं की, जहाँ कली
तू खिली, स्नेह से हिली, पली,

अंत भी उसी गोद में शरण
ली, मूंदे दृग वर महामरण!
मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल,
दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही!
हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म, रहै नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हो भ्रष्ट शीत के-से शतदल!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

11.4 अज्ञेय : जीवन एवं कृतित्व

11.4.1 जीवन परिचय एवं कृतित्त्व

अज्ञेय कवि कथाकार चिंतक आलोचक और सम्पादक रहे हैं। वे विलक्षण यात्रा-वृत्तान्तों और संस्मरणों के लेखक हैं। 'उत्तर प्रियदर्शी' शीर्षक से उनका एक नाटक भी है। इसके अलावा अज्ञेय ने शरतचन्द्र के 'श्रीकांत' और जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। अज्ञेय का जन्म 7 मार्च 1911 को कुशीनगर में एक पुरातात्त्विक खनन स्थल पर हुआ। पिता पं0 हीरानन्द शास्त्री पुरातत्त्व विभाग के उच्चाधिकारी थे। अज्ञेय ने विज्ञान में स्नातक उपाधि प्राप्त की थी तथा अंग्रेजी विषय में स्नातकोत्तर के प्रथम वर्ष में अध्ययन किया किंतु 1929-36 तक क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रियता के कारण शिक्षा में व्यवधान आया। अज्ञेय चन्द्रशेखर आजाद, बोहरा और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में शामिल थे। इसी सिलसिले में उन्हें जेल भी हुई। 'चिन्ता' शीर्षक काव्य संग्रह तथा 'शेखर: एक जीवनी' जैसा उपन्यास जेल में ही लिखा गया। एक वर्ष तक (1936) 'सैनिक' के संपादक मण्डल में रहै। 1937 में 'विशाल भारत' के सम्पादन से जुड़े। 1943 में सेना में नौकरी की तथा असम बर्मा फ्रंट पर नियुक्ति मिली। 1950-55 में आल इंडिया रेडियो, दिल्ली में नियुक्ति मिली। स्वदेश और विदेश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया। दद्दा यानी कि राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त से कवि की अत्यधिक निकटता थी। विदेश यात्राओं में 'जापान यात्रा' का प्रभाव उनके रचनाकार पर सर्वाधिक है। बर्कले के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में अध्यापन भी किया। 1965 से 69 तक साप्ताहिक दिनमान का सम्पादन किया। अंग्रेजी साप्ताहिक 'एवरीमैंस' का भी सम्पादन किया। 'प्रतीक' और 'नया प्रतीक' जैसे साहित्यिक पत्रों में सम्पादन के साथ इसी दौर में कविता कहानी उपन्यास लेखन भी चलता रहा। सप्तकों के सम्पादन का कार्य भी हुआ। 1961 में प्रकाशित काव्यकृति 'आँगन के पार द्वार' को 1964 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। 'कितनी नावो में कितनी बार' शीर्षक काव्यकृति को 1979 में भारतीय ज्ञानपीठ सम्मान मिला। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का भारत भारती सम्मान मरणोपरान्त इला डालमिया ने ग्रहण कर उसे

वत्सलनिधि को प्रदान कर दिया था।

अज्ञेय की प्रथम काव्यकृति 'भग्नदूत' (1933) है। क्रमशः इस रचना यात्रा में 'चिन्ता' (1942) 'इत्यलम्' (1946) 'हरी घास पर क्षण भर' (1949) 'बावरा अहै री' (1954) 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' (1957) 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959) 'आँगन के पार द्वार' (1961) 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967) 'क्यों कि मैं उसे जानता हूँ' (1968) 'सागर मुद्रा' (1969) 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (1970) 'महावृक्ष के नीचे' (1977) 'नदी की बांकपर छाया' (1981) 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' (1986) आदि हैं। 'प्रिजन डेज एंड अदर पोयम्स' (1946) उनकी अंग्रेजी कविताओं का संग्रह है। 'शेखर: एक जीवनी' के दो भागों के अलावा 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' (1961) उनके उपन्यास हैं। विपथगा (1937) परम्परा (1944) कोठरी की बात (1945) शरणार्थी (1948) जयदोल (1951) आदि उनके कहानी संग्रह हैं। 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'आलवाल', 'भवंती', 'सर्जना और संदर्भ' उनके लेखों का संग्रह है। तारसप्तक (1943) दूसरा सप्तक (1951) तीसरा सप्तक (1959) चौथा सप्तक (1978) का अज्ञेय ने सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त 'अरे यायावर रहै गा याद' तथा 'एक बूंद सहसा उछली' उनके यात्रा वृत्तांत हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय का रचना संसार व्यापक और विविध हैं।

'असाध्यवीणा' 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक संग्रह की महत्वपूर्ण कविता है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' शीर्षक संग्रह की अनेक कविताएं जैसे इस महत्त्वपूर्ण कविता का पूर्व पक्ष है। इस उल्लेख का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय की कविताएं यहाँ विशेष आध्यात्मिक गहराई में ढलती दिखाई देती है। इस आध्यात्मिकता के केन्द्र में ईश्वर नहीं बल्कि मनुष्य है। इस अध्यात्म की विशेषता यह है कि यहाँ कवि उस आत्म का आविष्कार करता है जो उदात्त और समर्पणशील है। उसका संघर्ष व्यापक सत्य से जुड़ने का है। अज्ञेय इस एकात्म में व्यक्ति का शेष हो जाना ठीक नहीं मानते। व्यापक सत्य ही उनके लिए ममेतर है जो अपनी व्याप्ति और अर्थ से व्यक्ति अर्थात 'मम' को अर्थवान सोद्देश्य और मानवीय बनाता है। इस दार्शनिक बोध से भरी हुई अज्ञेय की अनेक कविताएं हैं, जिनमें से एक की ये पंक्तियाँ देखिए: 'मुझको दीख गया:/सूने विराट के सम्मुख'/हर आलोक छुआ अपनापन/है उन्मोचन/नश्वरता के दाग से।(अरी ओ करुणा प्रभामय) 'असाध्यवीणा' की कथा वस्तुतः एक रूपक के रूप में प्रयुक्त है। पूरी कविता 'सृजन' की उस प्रक्रिया का अर्थ बताना चाहती है जिसके द्वारा सृजन व्यापक अर्थवान और गहरे अर्थ में मानवीय उद्देश्य को अर्जित करता है। अज्ञेय आधुनिक कवि हैं यह कहने का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय के भावबोध और मूल्यदृष्टि के केन्द्र में मनुष्य है। यह मनुष्य अपने चतुर्दिक के तीव्र परिवर्तनशील और किन्हीं अर्थों में विघटन की ओर जाते हुए जीवन से निरपेक्ष या दायित्वहीन नहीं है। एक सजग रचनाकार की तरह अज्ञेय की चिंता में मानवीय गतिशील समाज और सामाजिकता का पक्ष है। अपनी रचनाशीलता में अज्ञेय ने अपनी अर्जित वैचारिकी और अनुभव से यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि ऐसे विघटन के विरुद्ध मूल्यावेषी समर्पणशील व्यक्तित्व ही सकारात्मक भूमिका जरूरी है। इसके लिए मनुष्य को अपनी सृजनात्मकता के मानवीय रूप के लिए संघर्ष करना होगा। प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक मानवीय दीप्ति है जो अपनी रचने की क्षमता को रहस्य में आवेष्टित किये पड़ी रहती है। उन्होंने प्रत्येक मानवीय अस्तित्व के भीतर ऐसे

अनूठेपन की थाह ली। इस भाव को हम अज्ञेय की 'दीप अकेला' शीर्षक कविता में देख सकते हैं। 'त्रिशंकु' में अज्ञेय ने लिखा है कि कला एक श्रेष्ठतम नीति(एथिक) की दिशा में गतिशील होती है, इस श्रेष्ठतम नीति को वे सामान्य नैतिकता से अलग भी करते हैं इसी अर्थ में वे कला की सामाजिकता का पक्ष भी रखते हैं। अज्ञेय ने संवेदना को वह यंत्र कहा है- 'जिसके सहारे जीवयष्टि अपने से इतर के साथ सम्बन्ध जोड़ती है' (अज्ञेय: आलवाल)। अज्ञेय मनुष्य के लिए दायित्वबोध से भरी सामाजिकता को जरुरी मानते हैं किन्तु इसके लिए उसकी 'अस्मिता' के मिट कर विलयित हो जाने को ठीक नहीं मानते। मानव व्यक्तित्व वाह्य संघर्ष की टकराहट का अपने सृजनात्मक केन्द्र पर अडिग रहकर सामना करता है तब वह अपने व्यक्तित्व को अधिक संघटित सामाजिक उपादेयता में प्राप्त करता है।

इस प्रकार के अपने विश्वासों को कविता में ढालते हुए अज्ञेय ने अपने अभिप्रेत अर्थ को जीवन की गहरी सारपूर्णता में अर्जित किया है इसीलिए उनकी कविता में यह मूल्यबोध अपनी सूक्ष्मता में व्यक्त होता है। यहाँ से यदि हम 'असाध्यवीणा' के धुरी भाव की खोज करें तो सम्भवतः वह सृजन को समर्पणशील आत्मोत्तीर्णता के द्वारा लेने का भाव है। यही 'आत्म' और 'आत्मेतर' का वह मिलन बिंदु है जहाँ वे एक दूसरे को अपना-अपना अर्जित 'विराट' सौंपते हैं और पूर्णकाम होते हैं। यह अलग प्रकार का आत्मदान है जो दाता को रिक्त नहीं करता बल्कि देय की महिमा और आलोक से दोनों को भर देता है, दाता को भी और पाने वाले को भी। 'असाध्यवीणा' में यह प्रक्रिया प्रियंवद और 'असाध्यवीणा' के बीच इसी गरिमापूर्ण संपूर्णता में घटित होती है। यहाँ आकर साधक, साधना और साध्य तीनों के भीतर वह संगीत बज उठता है जो आस्वादन की उस उच्च भूमि तक ले जाता है जहाँ जाकर सारी निजताएं अपने आकांक्षित सत्य का एक सघन आत्मिक एकांत में साक्षात्कार करती हैं। इस प्रकार 'असाध्यवीणा' में निहित आख्यान में सृजन प्रक्रिया का रूपक ध्यान या समाधि के द्वारा एक विलक्षण लोकोत्तरता में सम्पन्न होता है जिसमें 'लौकिक' या 'लौकिकता' के स्थूल अर्थ को लेकर चलना संभव नहीं है। वस्तुतः इस संसार को सच्चे अर्थ में सुसंस्कृत और मानवीय रूप में ढालने के स्वप्न और आकांक्षा को अज्ञेय मनुष्य में ऐसे आत्मविस्तार के द्वारा संभव होते देखते हैं। यहाँ से हम इस कविता में मनुष्य के उस रागबोध प्रज्ञा और साधना का रूप निष्पन्न होते देखते हैं जहाँ वह व्यापक सत्य के साक्षात्कार और तादात्म्य के योग्य हो पाता है। अकारण नहीं है कि 'असाध्यवीणा' को सुनते हुए सभी अपने व्यक्तित्व की तुच्छता द्वेष इत्यादि से मुक्त होते हैं और उसके भीतर अपने प्रिय स्वप्नों की छवि देखते हैं। 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं, 'अन्तः सलिला', 'चक्रांतशिला' और 'असाध्यवीणा'। तीनों खण्डों में रूपक और प्रतीक मिलजुल कर 'व्यापक सत्य' के अनिर्वचनीय साक्षात्कार बोध और अभिव्यक्ति को संभव करना चाहते हैं। 'अन्तः सलिला' में रेत रिक्त या सूखी हुई नहीं है उसके भीतर रस की निरन्तर गति है। अज्ञेय का प्रिय 'मौन' यहाँ अपने प्रेय और सार्थक रूप में मौजूद हैं, 'ज्ञेय' को सम्पूर्णता में जानने के लिए यह मौन या कि चरम एकांत आवश्यक है। जानने की सीमा से परे स्थित सत्य को जानने की साधना इस मौन में है, इसके बावजूद वह अव्यक्त रूप में ही बना रह सकता है। अज्ञेय इन कविताओं में बौद्ध दर्शन की निष्पत्तियों के बहुत निकट दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार 'अन्तः सलिला' में जीवन बाह्य रूपाकारों से अलग आंतरिक गतियों के अर्थ में

जाना गया है और कई बार अर्थ को एक रहस्यमयता मिलती दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि अज्ञेय अस्तित्व की सार्थकता के प्रश्न को ‘विराट’ से उसके सम्बन्ध के नजदीक जाकर समझाना चाहते हैं। वह ‘मछली’ उनका प्रिय प्रतीक है जो सागर और आकाश के नील अनन्त के बीच अपनी जिजीविषा के संघर्ष के साथ अपनी प्राणवायु के लिए उछलती है और उन विराटों के बीच अपने अस्तित्व की सार्थकता बता जाती है। इस तरह उसका जीवन सागर और आकाश दोनों को अपनी समाई भर छूकर भी क्षुद्र नहीं है बल्कि अर्थवान बनता है। ‘इयत्ता’ के भीतर विराट के अर्थ को अज्ञेय इस प्रकार समझते हैं।

‘चक्रांतशिला’ शीर्षक खण्ड में एक ‘चक्रमितशिला’ का रूपक है। फ्रांस के ईसाई बेनेडिक्टी संप्रदाय के मठ ‘पियेर-क्वि-वीर’ से अज्ञेय को इस चक्रमण करती शिला का रूपक मिला, जिसे उन्होंने ‘काल’ के अर्थ में ग्रहण किया है। ‘एक बूंद सहसा उछली’ में वे लिखते हैं- ‘वह पत्थर जो घूमता है, चक्रमित शिला, चक्रांतशिला.......... वह काल के अतिरिक्त और क्या है।’ इस खण्ड में अज्ञेय पुनः तथागत करुणामय बुद्ध की उस छवि का साक्षात्कार करते हैं जो सारी विषमताओं पर अपनी धवल करुणामयी मुस्कान डालते हैं। इस प्रकार कालरुपी काक जो कुछ भी लिखता जाता है, उसे यह मुक्ति दूत मिटाता जाता है।

‘आँगन के पार द्वार’ का अर्थ समझते चलें। यह वह द्वार है जो हमें बाहर से जोड़ता है किंतु भीतर भी आँगन है यानी व्यक्ति के अर्जित विस्तार को व्यापक विस्तार से जोड़ता है। इस प्रकार ‘आत्म’ का ‘आत्मेतर’ से सम्बन्ध रागात्मक और परस्पर आलोक का सृजन करने वाला बनता दिखाई देता है।

अभ्यास प्रश्न: 1

1 दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) ‘असाध्यवीणा’ शीर्षक कविता का मूल मन्तव्य बताइए।

ख) अज्ञेय के लिए ‘अन्वेषण’ का क्या महत्व है बताइए।

ग) अज्ञेय ने रचनाकार के लिए क्या जरूरी माना है?

----

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

क) ‘असाध्यवीणा’ ....शीर्षक काव्यसंग्रह में संकलित कविता है।

ख) अज्ञेय के नाटक का शीर्षक है ....

ग) अज्ञेय को .... शीर्षक कृति पर साहित्य अकादमी सम्मान मिला।

घ) अज्ञेय .... के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय थे।

1.4.2 असाध्य वीणा : पाठ एवं विवेचन

असाध्य वीणा : वाचन

आ गये प्रियंवद ! केशकम्बली ! गुफा-गेह !
राजा ने आसन दिया। कहा :
"कृतकृत्य हुआ मैं तात ! पधारे आप।
भरोसा है अब मुझ को
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी !"

लघु संकेत समझ राजा का
गण दौड़े ! लाये असाध्य वीणा,
साधक के आगे रख उसको, हट गये।
सभा की उत्सुक आँखें
एक बार वीणा को लख, टिक गयीं
प्रियंवद के चेहरे पर।

"यह वीणा उत्तराखंड के गिरि-प्रान्तर से
--घने वनों में जहाँ व्रत करते हैं व्रतचारी --
बहुत समय पहले आयी थी।
पूरा तो इतिहास न जान सके हम :
किन्तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मंत्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीटी-तरु से इसे गढ़ा था --
उसके कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कंधों पर बादल सोते थे,
उसकी करि-शुंडों सी डालें

हिम-वर्षा से पूरे वन-यूथों का कर लेती थीं परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे,
केहरि उसके वल्कल से कंधे खुजलाने आते थे।
और --सुना है-- जड़ उसकी जा पँहुची थी पाताल-लोक,
उसकी गंध-प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि सोता था।
उसी किरीटी-तरु से वज्रकीर्ति ने
सारा जीवन इसे गढ़ा :
हठ-साधना यही थी उस साधक की --
वीणा पूरी हुई, साथ साधना, साथ ही जीवन-लीला।"
राजा रुके साँस लम्बी लेकर फिर बोले :
"मेरे हार गये सब जाने-माने कलावन्त,
सबकी विद्या हो गई अकारथ, दर्प चूर,

कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।
पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ-तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी।
इसे जब सच्चा स्वर-सिद्ध गोद में लेगा।
तात! प्रियंवद! लो, यह सम्मुख रही तुम्हारे
वज्रकीर्ति की वीणा,
यह मैं, यह रानी, भरी सभा यह :
सब उदग्र, पर्युत्सुक,
जन मात्र प्रतीक्षमाण !"
केश-कम्बली गुफा-गेह ने खोला कम्बल।
धरती पर चुपचाप बिछाया।
वीणा उस पर रख, पलक मूँद कर प्राण खींच,
करके प्रणाम,
अस्पर्श छुअन से छुए तार।
धीरे बोला : "राजन! पर मैं तो
कलावन्त हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ--
जीवन के अनकहै सत्य का साक्षी।
वज्रकीर्ति!
प्राचीन किरीटी-तरु!
अभिमन्त्रित वीणा!
ध्यान-मात्र इनका तो गदगद कर देने वाला है।"
चुप हो गया प्रियंवद ।
सभा भी मौन हो रही ।
वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया ।
धीरे-धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक टेक दिया ।
सभा चकित थी -- अरे, प्रियंवद क्या सोता है ?
केशकम्बली अथवा होकर पराभूत
झुक गया तार पर?
वीणा सचमुच क्या है असाध्य ?
पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा--
नहीं, अपने को शोध रहा था ।
सघन निविड़ में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी-तरु को

कौन प्रियंवद है कि दंभ कर
इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वंय एक जीवन-भर की साधना रही?
भूल गया था केश-कम्बली राज-सभा को :
कम्बल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिसमें साक्षी के आगे था
जीवित रही किरीटी-तरु
जिसकी जड़ वासुकि के फण पर थी आधारित,
जिसके कन्धों पर बादल सोते थे
और कान में जिसके हिमगिरी कहते थे अपने रहस्य।
सम्बोधित कर उस तरु को, करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद।
"ओ विशाल तरु!
शत सहस्र पल्लवन-पतझरों ने जिसका नित रूप सँवारा,
कितनी बरसातों कितने खद्योतों ने आरती उतारी,
दिन भौंरे कर गये गुंजरित,
रातों में झिल्ली ने
अनथक मंगल-गान सुनाये,
साँझ सवेरे अनगिन
अनचीन्हे खग-कुल की मोद-भरी क्रीड़ा काकलि
डाली-डाली को कँपा गयी--
ओ दीर्घकाय!
ओ पूरे झारखंड के अग्रज,
तात, सखा, गुरु, आश्रय,
त्राता महच्छाय,
ओ व्याकुल मुखरित वन-ध्वनियों के
वृन्दगान के मूर्त रूप,
मैं तुझे सुनूँ,
देखूँ, ध्याऊँ
अनिमेष, स्तब्ध, संयत, संयुत, निर्वाक :
कहाँ साहस पाऊँ
छू सकूँ तुझे !
तेरी काया को छेद, बाँध कर रची गयी वीणा को
किस स्पर्धा से
हाथ करें आघात

छीनने को तारों से
एक चोट में वह संचित संगीत जिसे रचने में
स्वंय न जाने कितनों के स्पन्दित प्राण रचे गये।
"नहीं, नहीं ! वीणा यह मेरी गोद रही है, रहै ,
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोदी बैठा मोद-भरा बालक हूँ,
तो तरु-तात ! सँभाल मुझे,
मेरी हर किलक
पुलक में डूब जाय :
मैं सुनूँ,
गुनूँ,
विस्मय से भर आँकू
तेरे अनुभव का एक-एक अन्त:स्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय--
गा तू :
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।
"गा तू !
यह वीणा रखी है : तेरा अंग -- अपंग।
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म-भरित,
रस-विद,
तू गा :
मेरे अंधियारे अंतस में आलोक जगा स्मृति का
श्रुति का --
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा !
" हाँ मुझे स्मरण है :
बदली -- कौंध -- पत्तियों पर वर्षा बूँदों की पटापट।
घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना।
चौंके खग-शावक की चिहुँक।
शिलाओं को दुलारते वन-झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद।
कुहरें में छन कर आती
पर्वती गाँव के उत्सव-ढोलक की थाप।
गड़रिये की अनमनी बाँसुरी।
कठफोड़े का ठेका। फुलसुँघनी की आतुर फुरकन :
ओस-बूँद की ढरकन-इतनी कोमल, तरल, कि झरते-झरते

मानो हरसिंगार का फूल बन गयी।
भरे शरद के ताल, लहरियों की सरसर-ध्वनि।
कूँजो की क्रेंकार। काँद लम्बी टिट्टिभ की।
पंख-युक्त सायक-सी हंस-बलाका।
चीड़-वनो में गन्ध-अन्ध उन्मद मतंग की जहाँ-तहाँ टकराहट
जल-प्रपात का प्लुत एकस्वर।
झिल्ली-दादुर, कोकिल-चातक की झंकार पुकारों की यति में
संसृति की साँय-साँय।
"हाँ मुझे स्मरण है :
दूर पहाड़ों-से काले मेघों की बाढ़
हाथियों का मानों चिंघाड़ रहा हो यूथ।
घरघराहट चढ़ती बहिया की।
रेतीले कगार का गिरना छप-छपाड़।
झंझा की फुफकार, तप्त,
पेड़ों का अररा कर टूट-टूट कर गिरना।
ओले की कर्री चपत।
जमे पाले-ले तनी कटारी-सी सूखी घासों की टूटन।
ऐंठी मिट्टी का स्निग्ध घास में धीरे-धीरे रिसना।
हिम-तुषार के फाहै धरती के घावों को सहलाते चुपचाप।
घाटियों में भरती
गिरती चट्टानों की गूंज --
काँपती मन्द्र -- अनुगूँज -- साँस खोयी-सी,
धीरे-धीरे नीरव।
"मुझे स्मरण है
हरी तलहटी में, छोटे पेडो़ की ओट ताल पर
बँधे समय वन-पशुओं की नानाबिध आतुर-तृप्त पुकारें :
गर्जन, घुर्घुर, चीख, भूख, हुक्का, चिचियाहट।
कमल-कुमुद-पत्रों पर चोर-पैर द्रुत धावित
जल-पंछी की चाप।
थाप दादुर की चकित छलांगों की।
पन्थी के घोड़े की टाप धीर।
अचंचल धीर थाप भैंसो के भारी खुर की।
"मुझे स्मरण है
उझक क्षितिज से
किरण भोर की पहली
जब तकती है ओस-बूँद को

उस क्षण की सहसा चौंकी-सी सिहरन।
और दुपहरी में जब
घास-फूल अनदेखे खिल जाते हैं
मौमाखियाँ असंख्य झूमती करती हैं गुंजार --
उस लम्बे विलमे क्षण का तन्द्रालस ठहराव।
और साँझ को
जब तारों की तरल कँपकँपी

स्पर्शहीन झरती है --
मानो नभ में तरल नयन ठिठकी
नि:संख्य सवत्सा युवती माताओं के आशिर्वाद --
उस सन्धि-निमिष की पुलकन लीयमान।

"मुझे स्मरण है
और चित्र प्रत्येक
स्तब्ध, विजड़ित करता है मुझको।
सुनता हूँ मैं
पर हर स्वर-कम्पन लेता है मुझको मुझसे सोख --
वायु-सा नाद-भरा मैं उड़ जाता हूँ। ...
मुझे स्मरण है --
पर मुझको मैं भूल गया हूँ :
सुनता हूँ मैं --
पर मैं मुझसे परे, शब्द में लीयमान।

"मैं नहीं, नहीं ! मैं कहीं नहीं !
ओ रे तरु ! ओ वन !
ओ स्वर-सँभार !
नाद-मय संसृति !
ओ रस-प्लावन !
मुझे क्षमा कर -- भूल अकिंचनता को मेरी --
मुझे ओट दे -- ढँक ले -- छा ले --
ओ शरण्य !
मेरे गूँगेपन को तेरे सोये स्वर-सागर का ज्वार डुबा ले !
आ, मुझे भला,
तू उतर बीन के तारों में
अपने से गा

अपने को गा --
अपने खग-कुल को मुखरित कर

अपनी छाया में पले मृगों की चौकड़ियों को ताल बाँध,
अपने छायातप, वृष्टि-पवन, पल्लव-कुसुमन की लय पर
अपने जीवन-संचय को कर छंदयुक्त,
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे !
तू गा, तू गा --
तू सन्निधि पा -- तू खो
तू आ -- तू हो -- तू गा ! तू गा !"

राजा आगे
समाधिस्थ संगीतकार का हाथ उठा था --
काँपी थी उँगलियाँ।
अलस अँगड़ाई ले कर मानो जाग उठी थी वीणा :
किलक उठे थे स्वर-शिशु।
नीरव पद रखता जालिक मायावी
सधे करों से धीरे धीरे धीरे
डाल रहा था जाल है म तारों-का।
सहसा वीणा झनझना उठी --
संगीतकार की आँखों में ठंडी पिघली ज्वाला-सी झलक गयी --
रोमांच एक बिजली-सा सबके तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयम्भू
जिसमें सीत है अखंड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।

डूब गये सब एक साथ।
सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे।
राजा ने अलग सुना :

"जय देवी यश:काय
वरमाल लिये
गाती थी मंगल-गीत,
दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी,

राज-मुकुट सहसा हलका हो आया था, मानो हो फल सिरिस का
ईर्ष्या, महदाकांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने लुगड़े-से झड़ गये, निखर आया था जीवन-कांचन
धर्म-भाव से जिसे निछावर वह कर देगा।

रानी ने अलग सुना :
छँटती बदली में एक कौंध कह गयी --
तुम्हारे ये मणि-माणिक, कंठहार, पट-वस्त्र,
मेखला किंकिणि --
सब अंधकार के कण हैं ये ! आलोक एक है
प्यार अनन्य ! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस-भार मेघ को,
थिरक उसी की छाती पर उसमें छिपकर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास भरी।
रानी उस एक प्यार को साधेगी।
सबने भी अलग-अलग संगीत सुना।
इसको वह कृपा-वाक्य था प्रभुओं का --
उसकी आतंक-मुक्ति का आश्वासन इसको
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक -- उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुशबू।
किसी एक को नयी वधू की सहमी-सी पायल-ध्वनि।
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।
एक किसी को जाल-फँसी मछली की तड़पन --
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मंडी की ठेलमेल, गाहकों की अस्पर्धा-भरी बोलियाँ

चौथे को मन्दिर मी ताल-युक्त घंटा-ध्वनि।
और पाँचवें को लोहै पर सधे हथौड़े की सम चोटें
और छठें को लंगर पर कसमसा रही नौका पर लहरों की अविराम थपक।
बटिया पर चमरौधे की रूँधी चाप सातवें के लिये --
और आठवें को कुलिया की कटी मेंड़ से बहते जल की छुल-छुल
इसे गमक नट्टिन की एड़ी के घुँघरू की
उसे युद्ध का ढाल :
इसे सझा-गोधूली की लघु टुन-टुन --
उसे प्रलय का डमरू-नाद।
इसको जीवन की पहली अँगड़ाई

पर उसको महाजृम्भ विकराल काल !
सब डूबे, तिरे, झिपे, जागे --
ओ रहै वशंवद, स्तब्ध :
इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी,
संघीत हुई,
पा गयी विलय।
वीणा फिर मूक हो गयी।
साधु ! साधु ! "
उसने राजा सिंहासन से उतरे --
"रानी ने अर्पित की सतलड़ी माल,
है स्वरजित ! धन्य ! धन्य ! "
संगीतकार वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक -- मानो
गोदी में सोये शिशु को पालने डाल कर मुग्धा माँ
हट जाय, दीठ से दुलारती --
उठ खड़ा हुआ।
बढ़ते राजा का हाथ उठा करता आवर्जन,
बोला : "श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था --
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी
महाशून्य वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सबमें गाता है।"
नमस्कार कर मुड़ा प्रियंवद केशकम्बली। लेकर कम्बल गेह-गुफा को चला गया।
उठ गयी सभा। सब अपने-अपने काम लगे।
युग पलट गया।प्रिय पाठक ! यों मेरी वाणी भी
मौन हुई।

भावार्थ -

इस कविता में अज्ञेय ने एक चीनी लोक कथा का आधार लिया है। यह लोककथा उस भारतीय रंग रूप के आख्यान में बदल जाती है जिसमें किरीटीतरु के अंश से गढ़ी गई वीणा वस्तुतः असाधारण साधक वज्रकीर्ति के जीवन भर की साधना थी। विडम्बना यह कि वीणा तो पूरी हुई किंतु उसके भीतर का संगीत जागता इसके पूर्व ही वज्रकीर्ति का जीवन शेष हो गया।

पहले हम उस चीनी लोककथा को देखें। डॉ. रामदरश मिश्र ने सन्दर्भ दिया है कि ‘ओकाकुरा की ‘द बुक ऑफ ट्री’ में ‘टेमिंग ऑफ द हार्फ’ शीर्षक कथा में किरी नामक विलक्षण वृक्ष का उल्लेख मिलता है। इसी वृक्ष के अंश को लेकर एक जादूगर ने वीणा को निर्मित किया। वीणा चीनी सम्राट के पास थी। सम्राट को इसके भीतर सोये असाधारण संगीत का भान था किंतु उसने देखा कि इस वीणा का संगीत जगा सकने में कोई कलाकार सक्षम नहीं हो सका। राजकुमार पीवो ने एकांत साधना के द्वारा उस उच्चतर भूमि को स्पर्श कर लिया कि जिससे वह ‘वीणा’ बज उठी। सम्राट के पूछने पर राजकुमार ने यह अद्भुत उत्तर दिया कि उसे कुछ भी ज्ञात नहीं है। सिवाय इसके कि वीणा और उसके बीच एक योग बन गया, अर्थात उनके बीच का पार्थक्य मिट गया और वीणा बज उठी।

अज्ञेय इस कथा को जापानी ज़ेन साधना के सोपानों में ढाल देते हैं। उनकी दृष्टि में कहीं यह रचना और रचयिता के सम्बन्ध को गहराई से समझा जाने वाला अर्थवान रूपक है। इसीलिए प्रायः इस कविता को सृजन प्रक्रिया की निष्पत्तियों के साथ मिलाकर देखा गया है।

व्याख्या - वज्रकीर्ति के जीवन भर की साधना का प्रतिफल हुई वीणा राजा के पास है। अनेक कलावंतो ने उस वीणा को बजाने का उद्यम किया है किंतु निष्फल हुए हैं। राजा पुनः नयी उम्मीद के साथ प्रियवंद का आवाह्न करते हैं और उस विलक्षण वीणा को प्रियवंद को सौंपते हैं। राजसभा टकटकी लगाए प्रियवंद को देख रही है। प्रियवंद कम विलक्षण नहीं है। केशकंबली गुफागेह वासी प्रियवंद भी अनन्य साधक हैं। अपनी विकट लंबी साधना के चलते ही वे केशकंबली हुए हैं। अज्ञेय प्रियवंद की विशेषताओं के सन्दर्भ से साधना की उन एकांत नीरव स्थितियों की ओर संकेत करते हैं जिसके द्वारा कोई साधक अपने मन आत्मा और व्यक्तित्व की उच्चतम भूमि को प्राप्त कर सकता है। यह उस उदात्त को अर्जित करना है जिसमें स्वार्थ, संकीर्णता और किसी प्रकार का कलुष नहीं है। एक प्रकार से यही एकांत समर्पण के योग्य मन आत्मा और प्रतिभा की तैयारी है। अज्ञेय इसे ‘अहं’ का विलयन कहते हैं। प्रियंवद के सम्मुख राजा उस किरीटीतरु की विशालता गहराई व्यापकता और ऊँचाई का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः यह वृक्ष अखण्ड गतिमान परम्परा ही नहीं है, बल्कि समूची संसृति है। इस वृक्ष के आदि मध्य अंत में सृष्टि का पूरा वैभव विस्तार और भविष्य समाहित है। कविता में स्पष्ट रूप से यह प्रसंग आता है कि उत्तराखण्ड के उस शांत आत्मिक वैभव से परिपूर्ण वन खण्ड में वह वृक्ष संस्कृति के पितर सरीखा स्थित था। उसकी वत्सलता, शांति गंभीरता और विस्तार को अज्ञेय ने अनूठे ढंग से कहा है। वृक्ष इतना विशाल कि उसके कंधों पर बादल सोते थे, कानों में हिमशिखर अपना रहस्य कह जाते थे। जड़ें पाताल में दूर तक गयीं थी कि जिन पर फण टिका कर वासुकि सोता था। वन प्रान्तर के वासी हिमवर्षा से बचने के लिए उसके विस्तृत आच्छादन के नीचे आ जाते थे। भालू, सिंह आदि उसकी छालों से अपनी पीठ रगड़ लेते। सबका आत्मीय पितर, गुरू और सखा सरीखा यह वृक्ष अपनी काया में ही नहीं अपितु अपनी आत्मा में भी ममता से भरा हुआ सबके आत्मविस्तार को संभव करने वाला है। राजा का विश्वास है कि वज्रकीर्ति की कठिन साधना व्यर्थ नहीं होगी । वीणा बजेगी अवश्य अगर कोई सच्चा साधक उसी ममता समर्पण और आत्मविस्तार में ढल कर उसे अपने अंक में लेगा। यह कह कर राजा वीणा प्रियंवद को सौंपते हैं । सभी अत्यधिक उत्सुकता जिज्ञासा और प्रतीक्षा पूर्वक इसे देख रहे हैं, अर्थात् राजा,

रानी, प्रजा समेत पूर्ण सभा उत्सुक और आतुर हैं।

प्रियवंद अपने केश कंबल पर बैठे, वीणा उस पर रखकर प्राणों को उर्ध्वता में साधा, आँखें बंद की और वीणा को प्रणाम किया। यह समाधि की आरम्भिक अवस्था थी। प्रियवंद के द्वारा रचा हुआ वह एकांत जिसमें उन्हें सभी चीजों से हटा कर अपने ध्यान को चरम एकाग्रता में केन्द्रित करना था। अज्ञेय ने यहाँ लिखा है- 'अस्पर्श छुवन से छुए तार' अर्थात प्रियंवद ने अपनी गहन होती हुई समाधि में 'वीणा' को अपने ध्यान में धारण किया। 'वीणा' उनके ध्याता का एकांत ध्येय थी और ध्यान को उस पर केन्द्रित करना उनकी ध्यान प्रक्रिया का आरम्भ था। ध्यान में डूबे हुए मद्धिम स्वर में प्रियंवद ने 'अहं' से मुक्त होने का प्रमाण भी दिया। उन्होंने कहा कि वे कलाकार नहीं बल्कि शिष्य साधक हैं। वे साधक होने की अपनी स्थिति को किसी महत्व बोध के साथ नहीं बताते। प्रियंवद उस महान वीणा की निकटता से रोमांचित है। 'वीणा' जो उस परम अव्यक्त सत्य की साक्षी है, वज्रकीर्ति की महान साधन का प्रतिफल है और वह महान किरीटी वृक्ष। ऐसी अभिमंत्रित वीणा के ध्यान ने प्रियंवद में विलक्षण हर्षाकुलता को भर दिया।

क्रमशः प्रियंवद ध्यान की गहराइयों में उतरते हैं। प्रियंवद मौन है, इस मौन के साथ सभा भी मौन है। प्रियंवद ने वीणा को गहरे समर्पण भरे प्रेम के साथ अपने अंक में ले लिया। इस अहंमुक्त साधक ने धीरे-धीरे झुकते हुए अपने माथे को वीणा के तारों पर टिका दिया। सभा की प्रतिक्रिया यह हुई कि क्या प्रियंवद सो गए, क्या वीणा का बजना सचमुच असंभव है?

अज्ञेय यहाँ कथा में नाटकीयता की युक्ति को सहै जते हैं। 'असाध्यवीणा' एक लंबी आख्यानपरक कविता है। इस युक्ति से कथा का नाटकीय तनाव बनता है।

कवि की दृष्टि प्रियंवद पर टिकती है और वह उस साधक की गहनतर होती हुई ध्यानावस्था के विषय में बताता है।

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में प्रायः व्यक्तित्व के संघटन की बात कही है। इस प्रक्रिया के द्वारा व्यक्तित्व की सर्जनात्मक अर्थवत्ता बनती है। अपने व्यक्तित्व के एकांत साक्षात्कार के उन्हीं क्षणों में उसकी क्षमता का साक्षात्कार या आविष्कार किया जा सकता है। ज़ेन बुद्धिज्म द्वारा अर्जित सातोरी ध्यान पद्वति के अर्थ ने अज्ञेय को इसीलिए आकृष्ट किया। इस आत्म साक्षात्कार के द्वारा सबसे पहले आत्मपरिष्कृति रूप लेती है। इस कविता में भी प्रियंवद उस महान वीणा के स्वर को मुक्त करने लायक साधक होने की साधनावस्था में जब उतरते हैं तो आत्मपरिष्कार की भावभूमि को छूते हैं। एक स्पंदित एकांत का परिवेश है जो मौन से संभव है। शब्दों के निर्मम कोलाहल का थम जाना ही आत्मिक स्फुरण को गति प्रदान कर सकता है।

ध्यान दें कि सातोरी ध्यान पद्धति में निहित ध्यान की चारो अवस्थाओं का क्रमशः निरुपण 'असाध्यवीणा' में है। प्रथम अवस्था में ध्याता अपने अहं से मुक्त होकर विस्तृत भावभूमि के प्रति उन्मुख होता है। ऐसा करते हुए वह एक प्रकार की विस्मृति में चला जाता है जो समाधि की तरह है। इस समाधि में उसकी चेतना का ध्येय से सम्बन्ध होता है और उसकी विराटता और व्याप्ति को धारण करता है। तीसरी अवस्था में ध्याता और ध्येय का 'योग' अपनी अखंडता निर्मित करता है और चौथी अवस्था में ध्येय ध्याता के भीतर आविर्भूत होता है। यहाँ से हम 'प्रियंवद' के मौन समर्पण एकात्म और वीणा में संगीत अवतरण को समझ सकते हैं। इस प्रकार यह नीरव मौन की मुखरित महामौन तक की यात्रा है। इस समाधि के भीतर प्रियवंद की

'वीणा' के पितर कीरीटीतरू से गहरी समर्पित एकात्मकता बनती है। इसके साथ ही किरीटीतरू अपने व्यापक विशद विलक्षण जीवनानुभवों के साथ प्रियंवद की स्मृति में प्रकट होता है। प्रियवंद उसकी स्मृतियों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि सदियों, सहस्राब्दियों में असंख्य पतझरों के बाद नव-नव पल्लवनों ने जिसे निर्मित किया। जीवनानुभवों के ऐसे कितने ही वैविध्य हैं जिनका साक्षी है किरीटीतरू! बरसात की अंधेरी रातों में जुगनुओं ने जिसकी अपनी समवेत चमक से आरती उतारी। दिन को भँवरों ने अपनी गूंज से भर दिया। रात झिंगुरों ने अपने संगीत से सजाया और सवेरा अनगिनत प्रजातियों के पक्षियों के कलरव से भरता गया। उनका उल्लास उनकी क्रीड़ाएँ किरीटीतरू के सर्वांग में आनंद की विह्वलता भर देती हैं। प्रियंवद सम्बोधन देते हैं ओ दीर्घकाय! अर्थात् ऐसे प्रकृत स्वर संभार के आमोद से भरे हुए विशाल वृक्ष उस वन प्रदेश में सबसे सयाने पिता, मित्र, शरणदाता सरीखे महावृक्ष तुम्हारे भीतर वे तमाम वन्य ध्वनियाँ समाहित हैं, मैं चाहता हूँ कि वे समस्त मेरी अनुभूति में अवतरित हों, मैं तुम्हारी उस मुखरित साकारता को अपने ध्यान में धारण करूं। महावृक्ष का इस प्रकार आह्वान करते हुए प्रियवंद को पुनः अपनी लघुता का बोध होता है, कहते हैं उस साक्षात्कार और योग का साहस कैसे पाऊँ, वीणा में अवस्थित संगीत को बलात मुखरित करने की स्थिति प्रियवंद को काम्य नहीं है, वह उसे उस अद्भुत वीणा से छीनने की स्पर्धा से विरत होकर पुनः अहं के विलयन के साथ महावृक्ष को राग और समर्पण पूर्वक सम्बोधित करते हैं। वे उसकी वत्सल गोद का आह्वान करते हुए कहते हैं कि है तुम पिता मुझे अपने शिशु की तरह सम्हालो, मेरी बालसुलभ किलकें तुम्हारे वत्सल स्पर्श की प्रसन्नता से भर जाएं। इस प्रकार प्रियंवद अपने अस्तित्व को शिशु की निश्छल प्रेममयी भावभूमि में ले आते हैं। वे उस महावृक्ष में व्याप्त संगीत का स्वर में प्रकट होने का आह्वान करते हैं। वह संगीत जो उनकी सांसो को अपनी लय से आनन्द की चरम 'विश्रांति' की भावभूमि में भरा-पूरा करेगा। वे पुनः उस महावृक्ष का आदर और प्रेम के साथ आह्वान करते हैं। यहाँ हम प्रियंवद और किरीटीतरू के बीच के वत्सल एकात्म को अनुभव कर सकते हैं। प्रियंवद वीणा के अंगी स्वरूप तरु को जो रसविद् और स्मृति और श्रुति का सार स्वरूप है, तू गा! तू गा! कह कर पुकारते हैं।

महावृक्ष अपने समस्त जीवनानुभवों व स्मृतियों सहित मुखर हो उठा है। तू गा! के मनुहार को गुनता हुआ सा वह प्रियंवद की साधना को स्वीकार कर अपनी स्मृतियों का पुनः पुनः साक्षात्कार करता प्रतीत होता है। यहाँ हम उसके विशाल और निरन्तर हुए अनुभवों की लड़ियों को क्रमशः खुलते देखते हैं। महावृक्ष की स्मृति में निर्मल प्रकृति के अनेक अनुभव हैं। विशाल वन प्रदेश के नैसर्गिक क्रियाकलापों में बदली भरे आकाश की कौंध, पत्तियों पर वर्षा की बूंदों की टप-टप ध्वनि, निस्तब्ध रात में महुए का टप-टप टपकना, शिशु पक्षियों का चौंक-चिहुंक जाना, शिलाओं पर बहते झरनों का द्रुत जल, उनका कल-कल स्वर संभार, शीतभरी रातों का कुहरा, उसे चीर कर आती गाँवों में उत्सव के वाद्य वृंद की आवाजें, गड़रिये की बांसुरी के खोये-खोये से स्वर, कठफोड़वा का अपनी लम्बी चोंच से काठ पर ठक-ठक करना, फुलसुंघनी की क्षिप्र-चंचल गतियाँ ढ़रते हुए ओसकणों का हरसिंगार बन जाना, कुंजपक्षी की ध्वनियाँ, हंसों की पंक्तियाँ, चीड़ वनों में गंध उन्मद पतंग का ठिठकना टकराना, जलप्रपातों के स्वर, इन सबके भीतर निसर्ग की मुखरता, स्वरों के गतिरूप उसकी स्मृति में उतरते हैं।

इस क्रम में हम निरंतर दृश्यों में एक सूक्ष्म बदलाव देख सकते हैं। स्मृति के ऐसे आह्वान में जीवनानुभवों के शांत मृदुल कोमल ही नहीं भीषण रूप भी हैं। ये सभी प्रकृति के रूप हैं, स्वरों में नाना वैभव से सजी प्रकृति के इन रूपों में सुदूर पहाड़ों को घेरते आक्रान्त करते बढ़ते चले आते ऐसे काले बादल हैं जो हाथियों के समूह से लगते हैं, पानी का घुमड़ कर बढ़ना, करारों का नदी में टूट कर छप-छड़ाप गिरना, आंधियों की रोषभरी हुंकार, वृक्षों की डालों का टूट कर अलग हो जाना, ओले की तीखीमार, पाले से आहत घास का टूटना, शीत जमी मिट्टी का धूप की स्निग्धता में क्रमशः कोमल होना हिमवर्षा से चोटिल धरती पर हिम के फाहै जैसे, घाटियों में गिरती चट्टानों का शोर क्रमशः धीमा और शांत होता हुआ, पहाड़ों के बीच के समतल की हरी घासों के निकट मध्यम कद के वृक्षों और तालाबों पर सुबह-शाम वन पशुओं का जुटना और शब्द करना, वे विविध स्वर भिन्न-भिन्न पुकारों से, कहीं गर्जना, कहीं घुर घुराना, चीखना, भूकना या चिचियाना, नाना पशुओं के अपने-अपने स्वर का विलक्षण मेल-जोल, तालों में छाये कुमुदिनी और कमल के पत्तों पर तेजी से जलजन्तुओं का सरक जाना, मेढक की तेज छलांगों से उत्पन्न ध्वनि, वन प्रांतर के निकट से गुजरते रास्तों पर पथिक के घोड़ों की टापें अथवा मंद स्थिर गति से चलते भैंसों के भारी खुरों की आवाजें, स्वरों का यह बहुरंगी स्वरूप सबका सब महावृक्ष की स्मृति में घुलकर घुलता गया है। अति प्रातः का वह दृश्य भी जब क्षितिज से भोर की पहली किरण झांकती है और ओस की बूंदों में उसकी सिहरन और दीप्ति उतर आती है, मधुमक्खियों के गुंजार में अलसाई सी वे दुपहरियायें जब घास-फूस की असंख्य प्रजातियों के नाना पुष्प खिल उठते हैं, शांत सी संध्याएं जब तारों से अनछुई सी सिहरने लगती हैं कुछ ऐसे जैसे आकाश में अश्रुभरी आँखों वाली असंख्य बछड़ों वाली युवा धेनुओं के आशीष उस गोधूलि बेला को पुलकन में रच रहे हों। कीरीटीतरू का अनुराग भरा स्वीकार यह है कि उस महावृक्ष ये स्वर और दृश्य अपने वैभव में अचंचल कर देते हैं, प्रत्येक स्वर वृक्ष के अस्तित्व को अपनी लय में लीन कर लेता है, यह जीवन की विराट बहुरंगी छवियाँ हैं जो वृक्ष की अस्मिता को अपनी स्फूर्ति तरलता संगीत और तरंग में डुबा देती है। यह व्यापक व्याप्त जीवन के प्रतीक किरीटीतरू की विस्मृति या कि समाधि अवस्था है जो अपने जीवन को उस व्याप्ति और वैविध्य में घुला कर अर्थ पाती है। इसीलिए उसका सच यह है कि- 'मुझे स्मरण है पर मुझको मैं भूल गया हूँ।' यह भी कि ''मैं नहीं, नहीं मैं कहीं नहीं'', वृक्ष की यह उदात्त समाधि अवस्था प्रियंवद की चेतना को अपनी व्याप्ति और ऊँचाई सौंपती है और वे कातर होकर अपने गूंगेपन में उस स्वर ज्वार का आह्वान करते हैं। पुनः पुनः वे किरीटीतरू का उसके समृद्ध जीवनानुभवों से अखण्ड तादात्मय के लिए आवाहन करते हैं और उस समस्त अर्जित संगीत के लय में ढल कर मुखर हो उठने की मनुहार करते हैं। 'अंग' में व्यापते अंगी को प्रियंवद इस तरह पुकारते हैं।

सघन समाधि में घटित होते इस आह्वान को अज्ञेय ने उसके उदात्त के अनुरूप ही शब्द दिये हैं। एक प्रकार से यहाँ साधना से साधना तक की अंतरंग यात्रा है। प्रियंवद की साधना वज्रकीर्ति की साधना को पूरा करने के लिए उस समग्र जीवन संगीत को टोहती है जिसका वैभव अपने जीवंत वैविध्य में किरीटीतरू में बसता है। एक सम्मोहन सा यहाँ बनता दिखाई देता है। सृजन की प्रक्रिया में निहित वह रहस्यमयता जिसका आत्मिक सा संवाद ही संभव है, यहाँ जैसे उस पूरे जादू की सृष्टि करती है और वीणा बज उठती है। उस संगीत को अज्ञेय ने स्वयंभू कहा है। उसके

भीतर सृष्टा का अखण्ड मौन सोता है। सबके मर्म को गहराई तक जाकर झंकृत कर देने वाले संगीत के प्रभाव को भी अज्ञेय ने कुछ ऐसे देखा है कि प्रियंवद ही नहीं, राजा रानी, प्रजा समेत सभी उसमें एक साथ डूबते हैं, बिहारी के 'तंत्रीनाद कवित्तरस' वाले दोहे में आये 'सब अंग' से डूबने के अर्थ में ही डूबते हैं। किंतु उनका तिरना और पार लगना अपनी विशिष्ट निजताओं के अर्थ में ही होता है अर्थात् सभी अपने चरम काम्य या अभीष्ट का अर्थ ग्रहण करते हैं। इस प्रकार अज्ञेय यहाँ 'आत्मविलयन' के अपने उन्हीं आदर्शों को पुष्ट करते हैं जिनके अनुसार व्यक्तित्व को निःशेष करके समर्पित होना अर्थवान नहीं है बल्कि 'अस्मिता' के सृजनात्मक विशिष्ट अर्थ को अर्जित करने के बाद किया गया समर्पण ही मूल्यवान होता है। इस कविता में भी आप देखिए कि राजा ने जहाँ जयदेवी का मंगलगान सुना और महत्वाकांक्षा द्वेष चाटुकारिता नये-पुराने बैर से मुक्त होकर व्यक्तित्व का वह विरेचन अनुभव किया कि जिसमें धर्म ही प्रधान हो उठा और राज्य का दायित्व फूल सा हलका हो आया। इसी तरह रानी ने वस्त्राभूषणों की निरर्थकता अनुभव की, जीवन का प्रकाश केवल वह समर्पित नेह है जिसमें विश्वास है आश्वस्ति है अनन्यता है रस है। रानी भी निर्भार होती हैं। देखा जाए तो श्रोताओं ने स्वर को अपने-अपने जीवनानुभवों के अनुरूप सुना। यहाँ अज्ञेय ने साधना और रचना की जीवन सापेक्षता को देखा है। जिसका जैसा जीवन था, जिसे जो काम्य था प्रेय था, उसने उसका वैसा साक्षात्कार किया। अज्ञेय ने यहाँ काव्यात्मक ब्यौरे दिए हैं जिनका अर्थ ओझल या अमूर्त नहीं है। इस प्रक्रिया से गुजर कर 'इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी/संघीत हुई/पा गई विलय/'

अतः विलय पाना ही ध्येय है किंतु संघीत होकर विलय पाना ही श्रेयस्कर है। सभी श्रोता उस समाधिभाव से संयुक्त होकर ही संघीत हुए। प्रियंवद के साथ उन्होंने भी किरीटीतरू को उसकी समग्रता के साथ आत्मसात किया, इस तरह एक सेतु बना। अज्ञेय का बल 'महाशून्य' पर है। इस 'महाशून्य' में महामौन अवस्थित है। राजा और प्रजा की अत्यधिक प्रशंसा में भी अविचलित रहते हुए प्रियंवद ने पुनः वीणा को बजा देने का श्रेय स्वीकार नहीं किया बल्कि राजकुमार पीवों की तरह ही अपने एकांत आत्म विस्मरण, समर्पण और महाशून्य के अनिर्वचनीय अनुभव के विषय में बताया। यह भी कहा कि वही सबके भीतर है जब सब अपने भीतर उससे एकात्म होने की लय में स्थित हो जाते हैं तब वह गा उठता है। प्रियंवद ने उस 'महामौन' को अनाप्त अद्रवित और अप्रमेय जैसे विशेषण दिये हैं। इस प्रकार वह संगीत प्रियवंद सहित पूरे उपस्थित समाज को चेतना की उस उच्चतम भूमि पर ले गया जिसके कारण युग पलट गया।

इस प्रकार हम देखते है कि इस कविता में आया आख्यान पूरी तरह से रूपकात्मक है। किरीटीतरू, वज्रकीर्ति वीणा, प्रियंवद आदि सभी जीवनानुभवों की व्याप्ति तक मनुष्य की गति और उसके आत्मिक विरेचन की आवश्यकता की ओर संकेत करते हैं। एक प्रकार से यह उत्कृष्ट रचना के लिए जरूरी जीवन सम्बद्धता की भी बात है। अज्ञेय ने रचना में सत्यान्वेषी दृष्टि के साथ धंसना स्वीकार किया है। इस सत्य को जानने और व्यक्त करने के लिए उच्चकोटि की रचनात्मक निस्पृहता को भी जरूरी माना है। इस प्रकार अज्ञेय एक आवेगमय वस्तुनिष्ठता पर भी ध्यान देते हैं।

अज्ञेय की काव्यभाषा का रूझान शब्दान्वेषण की और प्रायः देखा गया है। इस दृष्टि से वे तत्सम के अतिरिक्त तद्भव देशज यहाँ तक कि ग्रामज शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। कई बार वे शब्दों

की नई अर्थछवियों को भी खोजते हैं। भाषा को अज्ञेय काव्यात्मक लचीलेपन में ढालते दिखाई देते हैं। इस प्रकार अज्ञेय की काव्यभाषा उनके भाव वैविध्य को व्यक्त करने में पूरी तरह से सक्षम है। रुपकों, प्रतीकों के साथ-साथ नये उपमानों के प्रयोग की दृष्टि से भी अज्ञेय की काव्यभाषा समर्थ है। प्रकृति के अछूते बिंबों ने 'असाध्यवीणा' की भाषा को खास तौर पर सजाया है। 'कविता' में काव्योचित तरलता और आवेग को प्रतिफलित करने के लिए अज्ञेय ने 'गद्य' को अर्थ की लय से संवारा है। इस लय की खासियत यह है कि यह शब्दों के निकटवर्ती अंतरालों में अर्थ की व्यापक संभावनाएं भर देती है।

11.5 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

- महाकवि निराला के जीवन और काव्य जगत से परिचित हो गए होंगे
- निराला की महान काव्य रचना 'सरोज स्मृति' के काव्य सौंदर्य से परिचित हो गए होंगे
- कविवर अज्ञेय के जीवन और कविता संसार से परिचय प्राप्त कर चुके होंगे

11.6 शब्दावली

- संत्रास - भय एवं पीड़ा जनक स्थिति
- उत्तर-आधुनिकता - आधुनिकता के बाद का काल
- विकेन्द्रीकरण - किसी वस्तु ,विचार का एक केन्द्र में न पाया जाना
- प्रतिबद्धता - किसी विचार के प्रति दृढ़ निश्चय की स्थिति
- समकालीनता - अपने काल का, वर्तमान काल में, एक साथ
- स्फुरण - अंग का फड़कना, उमगना, उमंग पूरित होना
- आत्म विस्मरण - स्वयं को भूल जाना
- विरेचन - शुद्धि
- अप्रमेय - जो नापा न जा सके
- खगकुल - पक्षियों के समूह
- दीर्घकाय - विशाल शरीर वाला
- अभिमंत्रित - मंत्र द्वारा संस्कारित किया गया

11.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 अभ्यास प्रश्न 1 के उत्तर

1. महाभारत 2. कर्ण 3. कामाध्यात्म 4. 1961 ई0
5. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक 6. दिनकर

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति:

क) 'असाध्यवीणा' आँगन के पार द्वार' शीर्षक काव्यसंग्रह में संकलित कविता है।

ख) अज्ञेय के नाटक का शीर्षक है 'उत्तर प्रियदर्शी'

ग) अज्ञेय को 'आँगन के पार' शीर्षक कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

घ) अज्ञेय, चंद्रशेखर आजाद, बोहरा और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय थे।

11.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, विजेन्द्र नारायण सिंह – रामधारी सिंह 'दिनकर', साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
2. सिंह, बच्चन सिंह – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
4. पंत, सुमित्रा नन्दन, आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा और नवीनता, ई. चैलिशेव, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. नीरज, गोपाल दास, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
6. भटनागर, डॉ. राम रतन, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, युनिवर्सल प्रेस, इलाहाबाद।
7. बांदिवडेकर, चंद्रकांत, अज्ञेय की कविता: एक मूल्यांकन।
8. माथुर, गिरिजा कुमार, नई कविता: सीमाए और संभावनाएं।
9. शाह, रमेशचन्द्र (सम्पादक), असाध्य वीणा और अज्ञेय।

11.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. वाजपेयी, नंददुलारे, कवि सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1997
1. सिंह, नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी।
3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. बांदिवडेकर, चंद्रकांत, अज्ञेय की कविता: एक मूल्यांकन।
5. माथुर, गिरिजा कुमार, नई कविता: सीमाए और संभावनाएं।
6. शाह, रमेशचन्द्र (सम्पादक), असाध्य वीणा और अज्ञेय।

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

1 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जीवन परिचय देते हुए सरोज स्मृति का सार अपने

2 शब्दों में लिखिए .

3.'अज्ञेय' का संक्षिप्त जीपरिचय देते हुए 'असाध्य वीणा' का प्रतिपाद्य अपने शब्दों में लिखिए .

इकाई 12 - मीरा सूर पद्माकर और घनानन्द के पद

इकाई की रूपरेखाः-

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 मीरा व्यक्तित्व एवं कृतित्व

  12.3.1 जीवन परिचय

  12.3.2 साहित्यिक परिचय

12.4 मीरा के पद: संदर्भ एवं व्याख्या

12.5 सूर व्यक्तित्व एवं कृतित्व

  12.5.1 जीवन परिचय

  12.5.2 साहित्यिक परिचय

  12.6.6 सूर के पद संदर्भ एवं व्याख्या

12.7 पद्माकरा व्यक्तित्व एवं कृतित्व

  1.7.1 जीवन परिचय

  1.7.2 साहित्यिक परिचय

12.8 पद्माकर के पद संदर्भ एवं व्याख्या

12.9 घनानन्द व्यक्तित्व एवं कृतित्व

  12.9.1 जीवन परिचय

  12.9.2 साहित्यिक परिचय

12.10 घनानन्द के पद संदर्भ एवं व्याख्या

12.11 सारांश

12.12 शब्दावली

12.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.16 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना-

यह स्नातक द्वितीय वर्ष की 15 वीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से पहले आप भक्तिकाल के प्रमुख कवि कबीर एवं रहीम तथा रीतिकाल के चर्चित कवि विहारी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ-साथ उनके कुछ दोहों की ससंदर्भ व्याख्या का अध्ययन कर चुके हैं।
प्रस्तुत इकाई में आप मीरा, सूर, पद्माकर घनानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ-साथ उनके कुछ महत्वपूर्ण पदों की व्याख्या का भी अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भक्तिकाल की सम्प्रदाय निरपेक्ष कवयित्री मीरा, सगुण भक्ति धारा के कृष्ण भक्ति शाखा के महाकवि सूर तथा रीतिकाल के चर्चित कति पद्माकर और घनानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में बता सकेंगे।मीरा, सूर, पद्माकर और घनानन्द के काव्य की कुछ प्रमुख साहित्यिक विशेषताओं को जान सकेंगे । मीरा सूर पद्माकर और घनानन्द के चुनिन्दा पदों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगें ।

12.3 मीरा: व्यक्तित्व एवं कृतित्वः-

12.3.1 जीवन परिचय

भक्तिकाल की कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों में मीरा का महत्वपूर्ण स्थान है उनकी लाकप्रियता एवं महत्व को बताने के लिए उनका काव्य ही काफी है। नवीन अनुसंधानों एवं खोजों के अनुसार मीरा का जन्म विक्रमी सं. 1555 सन् 1498, को तत्कालीन मेड़ता राज्य के निकट बिजोली ग्राम में मेड़तिया के राठौड़ राजवंश में हुआ था यह गाँव वर्तमान में डोगाना जंक्शन से 9 कि.मी. दूर स्थित है। इनके पिता का नाम रतन सिंह था । इनके दादा राय दूदा मेड़ता राज्य के संस्थापक थे तथा परदादा राय जोधा जयपुर रियासत के संस्थापक थे ।

मीरा दो वर्ष की भी नहीं हो पाई थी कि उनकी माता झाली राजकंवर (श्री देव किशन राजपुरोहित ने अपनी पुस्तक ''मीरा बाई मेड़तणी'' मीरा की माता का नाम झाली राजकंवर बताया है) का देहान्त हो गया। पत्नी की मृत्यु से दुःखी रतन सिंह ने विजौली गांव छोड़ दिया और कुड़की गाँव जाकर एक छोटे से किले की स्थापना की। मीरा के बचपन के कुछ वर्ष यहीं व्यतीत हुए तत्पश्चात् उनके पितामह राव दूंदा उन्हें मेड़ता ले आये वे वैष्णव थे उनके यहाँ साधुओं का सत्संग हुआ करता था मीरा पर भी इसी परिवेश का प्रमाण पड़ा यहाँ मीरा ने सगुण वैष्णव भक्ति का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त किया और अपना ध्यान भ्क्ति की ओर केन्द्रित किया और वह अपने आराध्य देव कुष्ण के प्रति समर्पित हो गई । मीरा का विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ विवाह के बाद मीरा अपने ससुराल मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पहुँची, महाराणा सांगा से उन्हें अत्यधिक स्नेह मिला मीरा की भक्ति भावना पर उन्हें गर्ज था किन्तु विवाह के छः वर्ष बाद ही अतिसार नामक बिमारी के कारण उनके पति भोजराज की मृत्यु हो गई। इनके तीन चार वर्षोपरान्त उनके पिता एवं देवर की भी मृत्यु हो गई । यह सब होते हुए भी मीरा की भक्ति भावना में कोई अन्तर नहीं आया क्योंकि उनके जीवन में कृष्ण ही सर्वस्व थे। पति की मृत्यु के बाद वे राजपरिवार की अपेक्षा पर खरी नहीं उतर पाई वे साधुओं के साथ

सत्संग और पूजा-पाठ में अपना समय व्यतीत करने लगी। मीरा का यह स्वच्छ आचरण चित्तौड़ के सिसौदिया राजवंश के राजपरिवार को असध्य हो गया उन्हें यातनाएं दी जाने लगी किन्तु मीरा तो कृष्ण की भक्ति में इतनी लीन थीं कि विष का प्याला भी अमृत समझकर पी गई, पिटारे में भेजे हुए सांप भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकें। ''जाको राखे साइयां मार सके न कोय।'' इस कहावत को चरितार्थ करते हुए मीरा कोई बाल भी बांका न कर सका। जीवन के अन्तिम समय में मीरा पुष्कर, वृन्दावन की यात्रा करते हुए द्वारिका पहुँची। वहाँ उन्हें राव रणछोड़ जी के मन्दिर में नरशी मेहता का सानिध्य प्राप्त हुआ और यही विक्रमी संवत् 1604 में उनका स्वर्गवास हो गया द्वारिका स्थित गोमती घाट पर जहाँ उनका दाह संस्कार किया गया मीरा का एक छोटा सा मन्दिर आज भी वहाँ देखने को मिलता है।

12.3.2 साहित्यिक परिचयः-

मीरा के नाम से रचित जो पूर्ण या अपूर्ण रचनाएं मिली हैं या यत्र-तत्र जिनका उल्लेख हुआ उनकी कुल संख्या 11 बताई गई है-

1. गीत गोविन्द की टीका।
2. नरसी का मायरा।
3. राग सोरठा पद।
4. पलार राग।
5. राग गोविन्द।
6. सत्यभनुं रूसण।
7. मीरा की गरबी।
8. रूक्मणी मंगल।
9. नरसी मेहता की हुण्डी।
10. चरीत (चरित्र)।
11. स्फुट पद।

इनमें से स्फुट पदों को छोड़कर सभी अप्रमाणिक हैं मीरा के स्फुट पद ही मीरा की पदावली नाम से जाने जाते हैं ये पद विभिन्न रूपों में प्रकाशित हो चुके हैं कुछ महत्वपूर्ण संस्करणों का विवरण नीचे दिया जा रहा है-

1- मीरा बाई की पदावली - 1932 साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

2- मीरा के भजन - 1998 नवल किशोर प्रेस लखनऊ।

3- मीरा बाई की प्रेम साधना - 1947 अजन्ता प्रेस पटना।

4- मीरा का वृहत पद संग्रह - 1952 लोक सेवक प्रकाशन काशी।

5- मीरा ग्रन्थावली (दो भाग) - वाणी प्रकाशन दिल्ली।

साहित्यिक विशेषताएं-

1- मीरा की भक्ति भावना-

मीरा ने अपने जीवन में वैष्णव भक्ति सर्वोपरि स्थान दिया है उनकी भक्ति का अपना एक विशिष्ट स्वर है मीरा मूलतः सम्प्रदाय निरपेक्ष भक्त है श्री मदभागवत में वर्णित माधुर्य भक्ति का जो रूप है वह मीरा के काव्य मिलता है वे सगुणोपासक हैं, उनके आराध्य देव कृष्ण हैं और

जीवन पर्यन्त, उसी गिरधर नागर की भक्ति मे उन्होंने सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। मीरा कहती हैं कि गिरधर नागर के अतिरिक्त उनका कोई नहीं है-

''म्हारां री गिरधर गोपाल दूसरां वाँ कुयाँ।

इतना ही नहीं मीरा कहती है कि मैंने प्राणों की बाजीलगाकर गिरधर नागर को प्राप्त किया है-

'' मीरा कहें प्रभु गिरधर नागर लियौ छै सीस सटै।''

उनके सभी कष्टों के निवारक भी गोपाल ही हैं-

कोट करम जंजाल जीव रा मिटै रा जाल।

मीरा की प्रेम भावना- मीरा के काव्य का मूल प्रेम हैं। सम्पूर्ण भक्ति आंदोलन में उनका प्रेम सहज और उत्कुष्ट है उनके आराध्य प्रियतम् गिरधर लाल है उनके प्रति मीरा का सीधा और प्रत्यक्ष प्रेम निवेदन है कृष्ण के रूप माधुर्य पर मीरा अत्यन्त मुग्ध हैं-

सावली सूरती म्हारे हीय में समायी
सुन्दर वदन कंवलदल लोचन, मधुर-मधुर मुस्कावे
मदनायक गोपाल विराजै।

इसी रूप पर आसक्त होकर मीरा गिरधर को अपना पति और प्रियतम मान चुकी हैं-

''गिरधर म्हारो सांचो प्रियतम देखत रूप लुमाऊँ।''

मीरा की प्रेम भावना में मिलन की जगह विरह ही अधिक है इस विरहानुभूति में दर्द का तो पूछना ही क्या-

''है री म्हा तो दरद दिवाणी म्हारा दरद न जाण्या कोई।''
घायल री गत घायल जाण्या हिवड़ो अगण सजोई।''

मीरा की प्रेम भावना पर बच्चन सिंह ने लिखा हैं- ''उनकी प्रेम साधना स्वकीया की प्रेम साधना थी- **''जाके सिर मोर मुकुट मेरा पति सोई।''**

प्रभु को पतिवरता की सेज पर पधारने का आमन्त्रण देती है उनके स्वागत के लिए कुल वधु की तरह श्रंगार करती हैं उन्होंने गोविन्द से लुक छिपकर प्रेम नहीं किया था बल्कि उन्हें ढ़ोल बजाकर प्रेम देकर मोल लिया था उनके प्रेम में कहीं उच्छृंखलता नहीं हैं अमिजात्य को वे छोड़ चुकी थीं पर अभिजात के तत्कालीन गुणों को उन्होंने नहीं छोड़ा था।'' हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास पृ0 134)

मीरा की काव्य भाषा- मीरा की काव्य भाषा मूलतः ब्रजमिश्रित राजस्थानी है उन्होंने अपने कावय में ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो लोकजीवन में रची-बसी थी उनके काव्य में ब्रजमिश्रित राजस्थानी के अतिरिक्त पंजाबी, खड़ी बोली, पूर्वी भाषा का भी प्रयोग है साधु संगत तीर्थाटन आदि के कारण कबीर की तरह ही उनकी भाषा में कई बोलियों का आभास मिलता है। ''मीरा बाई की पदावली की भूमिका में परशुराम चतुर्वेदी ने दिखाया है कि मीरा में चार भाषा स्तरों का प्रयोग है-

1- राजस्थानी -

थें तो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर-नाजिर कब की खड़ी। सजनियाँ दुसमण होय बैठ्यां सब न लगूँ कड़ी।

2- ब्रजभाषा-

यह विधि भक्ति कैसे होय।

मण की मैल हिय ते न छूटी दियो तिलक सिर धोय।

3- पंजाबी-

हो काँनाँ किन गूँथी जुल्फा काँरियाँ।

4- गुजराती-

प्रेमनी-प्रेमनी-प्रेमनी रे मने लागी कटारी प्रेमनी।

जल जमुना माँ भरवाँ गयाँती हँती गागर माथे हमनी रे।

(हिन्दी काव्य का इतिहास पृ0 97-98

अभ्यास प्रश्न - 1

अति लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. मीरा का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?
2. मीरा की भक्ति में किस भाव की प्रधानता है ?
3. मीरा के आराध्य देव कौन हैं ?
4. मीरा के पदों की मूल भाषा क्या है ?
5. मीरा की मृत्यु किस स्थान पर हुई ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. मीरा का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए ?
2. मीरा के रचना संसार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?
3. मीरा की प्रेम भावना का संक्षिप्त विवेचन कीजिए ?

12.4 मीरा के पद संदर्भ एवं व्याख्या -

1- मण थें परस रे हरि चरण।

सुमग शीतल कंवल कोमल जगत ज्वाला हरण।

इण चरण प्रहलाद परस्यां इन्द्र पदवी धरण।

इण चरण ध्रुव अटल करस्यां सरण असरण सरण।

इण चरण ब्रह्माण्ड भेंट्यां नख सिरवां सिरि भरण।

इण चरण काल्याणाध्यां गोप लीला करण।

इण चरण धारयां गोवरधण गरब मधवा हरण।

दासे मीरा लाल गिरधर अगम तारण तरण।

शब्दार्थ- मण = मन। थें = तू। परस = स्पर्श कर, वन्दना कर। रे = के। सुमग = सुन्दर, सौभाग्य जनक। ज्वाला = दुःख या कष्टं परस्याँ = पूजा। करस्यां = किया। भेट्यां = व्यात, नाप लिया। सिरी = शोभा, श्री, बाध्यां = नाथ में रस्सी डाली। मधवा = इन्द्र।

संदर्भ - पद भक्तिकालीन चर्चित कवयित्री मीरा द्वारा रचित है तथा उनकी पदावली से उद्धृत हैं।

प्रंसग - इस पद में मीरा ने भक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया है साथ ही स्वयं अपने मन को प्रभु चरणों की वन्दना करने को कहा है।

व्याख्या- कृष्ण भक्ति के सराबोर मीरा अपने मन को समझाते हुए सम्बोधित करते हुए कह रही

हैं कि है ! मेरे मन तुम हरि अर्थात कृष्ण के चरणों का स्पर्श (वन्दना) करो! क्योकि प्रभु के वे चरण सुन्दर शीतल तथा कमल के समान सुन्दर होने के साथ-साथ इस संसार की ज्वालाओं अर्थात दैहिक दैविक और भौतिक दुःखो के ताप को हरने वाले हैं, मनुष्य को इन दुःखों से मुक्ति दिलाने वाले हैं। इन चरणों का स्पर्श (वन्दना) कर भक्त प्रहलाद को इन्द्र की उपाधि प्राप्त हो गई इन चरणों की शरण में जाकर ही ध्रुव ने अटल गोद (ध्रुव लोक) प्राप्त किया। प्रभु की इन चरणों में अशरण भी शरण पाते हैं। ये वही चरण हैं, जिन्होंने ब्रह्माण्ड को तीन डग में बाटा लिया। प्रभु के चरणों से ही सम्पूर्ण विश्व के समस्त क्रिया कलाप संचालित हैं। संसार में नख से शिख तक जितना भी सौन्दर्य व्याप्त है उसके पोषण कर्ता भी यही चरण हैं। इन्हीं चरणों ने महाविशघर कालिया नाग को वश में कर वृन्दावन वासियों को भय से मुक्त किया और गोपियों के साथ उनकी लीलाएं और गोवर्धन पर्वत को धारण कर इन्द्र के घमण्ड को चूर किया तथा वृन्दावन वाषियों को उसके कोप से बचाया।

अन्त में मीरा कहती है कि वह उन्हीं भगवान कृष्ण की दासी है जो इस अगम्य संसार से उद्वार करने वाले हैं।

विशेष - इस पद में मीरा ने अपने मन को श्री कृष्ण के चरणों की शरण में जाने को कहा है।

यहाँ कृष्ण के प्रति मीरा का एकनिष्ठ भक्ति का संकेत मिलता है कृष्ण भक्ति से ही इस संसार सागर से मुक्ति प्राप्त हो सकती हैं।

भाषा- ब्रजमिश्रित राजस्थानी।

अलंकार- अनुप्रास, उपमा, रूपक।

2- बस्याँ म्हारे नेणण माँ नन्दलाल।

मोर मुगट मकराकृत कुण्डल अरूण तिलक सोहाँ भाल।

मोहन मूरत साँवरा सूरत नेण बण्या विशाल।

अधर सुधारस मुरली राजाँ उर वैजंती माल।

मीरा प्रभु संतों सुखदायां भक्त बछल गोपाल।।

शब्दार्थ - वस्याँ = बसो, निवास करो। म्हारे = मेरे। नेणण = आँखों में। मोर-मुकुट = मोर के पंखों का मुकुट। मक्रराक्रत = मछली के आकार के।

सोहाँ = शोभायमान। भाल = माथा। सुधारस = अमृत जैसा रस। राजाँ = शुसोभित। भक्त बछल = भक्त वत्सल।संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग - इस पद में मीरा अपने आराध्य कृष्ण के मनमोहक रूप सौन्दर्य का चित्रण करने के साथ-साथ उन्हें अपने आँखों और मन में बसे रहने के लिए विनती कर रही हैं।

व्याख्या - मीरा नन्दलाल यानी कृष्ण से कह रही हैं तुम मेरे नेत्रों में बस जाओ अर्थात कृष्ण की मनमोहक छवि मेरे नेत्रों में वसी रहै। कृष्ण की आकृति और वेशभूषा के बारे में बताते हुए मीरा आगे कहती हैं ऐसे कृष्ण जो मोर पंखों से बने मुकुट को धारण करने वाले हैं। कानो में मछली की आकृति के कुण्डल धारण करते हैं तथा माथे पर सुन्दर तिलक धारण करते हैं। उनकी यही मनमोहक छवि मेरे मन और प्राणों में निवास करती हैं। कृष्ण की सूरत साँवली सलोनी है उनके नेत्र विशाल है तथा होठों पर विराजने वाली मुरली उनकी शोभा को और अधिक बढ़ा रही है वक्ष पर बैजयन्ती माला (बैजयन्ती नाम की माला जिसे भगवान विष्णु धारण करते हैं) धारण

करने वाले हैं। इतना ही नहीं वे संतजनों को सुख प्रदान करने वाले तथा भक्तजनों से वात्सल्य भाव रखने वाले हैं ऐसे कृष्ण मेरे नेत्रों और प्राणों वस जाऐं।

विशेष -

इस पद में मीरा अपने आराध्य कृष्ण की छवि को अपने नेत्रों और हृदय में बस जाने की प्रार्थना कर रहीं हैं। इस पद के माध्यम से कृष्ण का मन मोहक चित्र प्रस्तुत हो गया है।

भाव साम्य -

''सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यह बानक मो मन वसौ सदा विहारी लाल।''

(बिहारी)

अलंकार-अनुप्रास

(3) पग बांध घुंघरिया गाच्यां री।
लोग कध्यां मीरा बावरी सासू कघ्यां कुलनासी री।
विख रो प्याला राणा भेज्यां पीवा मीरा हांसां री।
तण मण बारयां हरि चरणां मां दरसण अमृत पास्यां री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर धारी शरणां आस्यां री।

शब्दार्थ -पग = पावों में। घुंघरिया = घुंघरू। नाच्यां री = नृत्य किया। बावरी = बावली, पगली। कुलनाशी = कुल को कलंकित करने वाली। विख = विष। हांसां = हँसना, प्रसन्न रहना। प्यासां = प्यासा थारी = तुम्हारी।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग - मीरा कृष्ण की अनन्य भक्त थी उनके लिए कृष्ण ही सर्वस्व थे। पारीवारिक वर्जनाओं को दरकिनार क रवह पांवों में घुंघरू बांधकर कृष्ण प्रेम में तन्मय होकर सत्संग में नाचती थी इससे उनके राजकुल की समाज में निन्दा हो रही थी। राणा विक्रमजीत ने उन पर अनेक अव्याचार किए उन्हें मारने का भी प्रयास किया गया। किन्तु कृष्ण की छत्र छाया में उनका बाल भी बांका नहीं हुआ इसी का उल्लेख इस पद में हुआ हैं।

व्याख्या - मीरा कहती हैं-वह अपने पैरों में घुंघरू बांधकर कृष्ण प्रेम में मगन होकर नाचती हें उनके इस कृत्य पर लोग कहते है मीरा बावली (पागल) हो गई हैं। और सास कुलनाशी कहती है। इतना ही नहीं राजपरिवार कही मर्यादा का उलघंन के कारण मीरा कहती हैं कि राणा ने उन्हें राणा ने उन्हें मारने के लिए विष का प्याला भेजा। उन्होंने वह भी हँसकर पी लिया। मीरा आगे कहती है मैंने अपना तन-मन अर्थात सब कुछ कृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया है अब मात्र उनके दर्शन रूपी अमृत की प्यासी हैं। अन्त में मीरा कहती हैं। कि है मेरे प्रभु गिरधर लाल मैं आपकी शरण में आना चाहती हूँ मुझे अपनी शरण में लेकर कृतार्थ कीजिए।

विशेष - मीरा भक्त कवयित्री होने के साथ-साथ राजपरिवार की कुल बधु थीं उन पर राजपरिवार की मर्यादानुसार अनेक प्रतिबन्ध थे लेकिन मीरा ने कृष्ण भक्ति के लिए इन बंधनों को तिलाजंजि दे दी। राजपरिवार की मर्यादा के विरूद्ध जाने पर उन्हें अनेक अत्याचार सहने पड़े यहाँ तक उन्हें मारने के लिए विष पीने को बाध्य किया गया।

नारी ही नारी को अधिक प्रताड़ित करती है उक्त पद में सास और ननदों द्वारा मीरा को प्रताड़ित

करना इसका प्रमाण है।इस पद में निम्न कहावत चरितार्थ हो रही है-

जाको राखे सांइयाँ मार सके ना कोई।
बाल बांको न कर सके जो जग वैरी होइ।।

(4) है री म्हां दरद दिवाणी म्हांरा दरद णा जाण्यां कोय।
घायल की गत घायल जाण्या हिवड़ो अगस संजोय।
जौहर कीमत जौहरां जाण्यां क्या जाणा जिण खोय।
दरद री मारयां दर-दर डोल्यां बैद मिल्या णा कोय।
मीरा री प्रभु पीर मिटांगा लद वैर सावरो होय।

शब्दार्थ - म्हां = मैं । दरद = दर्द प्रेम की पीड़ा । म्हारा = मेरा। जोहार = जवाहर रत्न । गत = दशा, गुणवत्ता। जोहरी = रत्नों का पारखी। दर-दर = घर-घर। डोलूँ = भटकती है । बैद = बैध।

संदर्भ – पूर्ववत ।

प्रसंग - इस पद में मीरा की वियोगावस्था का वर्णन है वे जानती हैं कि अलौकिक आराध्य प्रियतम कृष्ण से प्रत्यक्ष मिलन सम्भव नहीं फिर भी वे कृष्ण से मिलने के लिए छटपटा रहीं है मीरा की जो पीड़ा है वह प्रियतम कृष्ण के वियोग की पीड़ा है इसलिए वह उस पीड़ा की भी दिवानी हो गई हैं।

व्याख्या - मीरा कहती हैं मैं कृष्ण कि वियोग के दर्द की दिवानी हो गई हूँ लेकिन मेरा दर्द कोई नहीं जान सकता जैसे हीरे-मोती का मूल्य उसका पारवी जोहरी ही जान सकता है या जिसने अपने मूल्यवान हीरे खो दिये हों। मीरा आगे कहती है मेरी वेदना को सिर्फ मैं ही जानती हूँ अपनी विरह वेदना के उपचार के लिए मैं घर-घर फिरी परन्तु उसे कोई बैद्य नहीं मिला। मीरा कहती हैं मेरी विरह वेदना भगवान कृष्ण के मिलन से ही मिट सकती है अन्यथा इसके मिटने की सम्भावना नहीं दिखती।

विशेष - मीरा कृष्ण से जुड़ी हर वस्तु की दिवानी हैं यहाँ मीरा की वियोगावस्था का वर्णन हुआ है जिस प्रकार मीरा कृष्ण भक्ति और प्रेम की दिवानी है उसी प्रकार कृष्ण के वियोग के दर्द की भी दिवानी हो गई है । यह पद 'जाके पाँव न फटी बिवाई सो क्या जाने पीर पराई।'' कहावत को चरितार्थ करता है ।

अलंकार – अनुप्रास ।

(5) करम गत टाराँ णाही टराँ ।
स्तबादी हरिचन्द्रा राजा, डोम घर णीराँ भराँ ।
पांच पांडु राराणी द्रुयता, हाड़ हिमालाँ गराँ ।
जग कियाँ बलि लेण इन्द्रासण, जाँयाँ पाताल पराँ ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, विखरू अमृत कराँ ।

शब्दार्थ - काम = कर्म। गत = दशा। टारौ णाही टरै = टाले नहीं टलती। सतवादी = सत्यवादी, सत्य बोलने वाला। डोम = भंगी। णीरा = पानी दुमता = द्रोपती। हाड़ = हिमालय पर। गराँ = गल गया। जाग = यज्ञ। बलि = राजा बलि बिखरू = बिखरू = विष को। लेण = लेने। इन्द्रासण = इन्द्र की पदवी। पराँ पड़ा।

सन्दर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - यहा मीरा ने कर्मवाद और भाग्यवाद के सिद्धान्त पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि व्यक्ति अपने कर्म व भाग्य का फल अवश्य भोगता है।

व्याख्या - मीरा कहती है कि भाग्य की जो दशा है उसे कोई नहीं टाल सकता जिसके भाग्य में जो लिखा है वह घटित होके रहै गा अपने इस कथन को स्पष्ट करते हुए मीरा विभिन्न पौराणिक उद्धरण देते हुए कहती हैं- सत्यवादी हरिश्चन्द्र को भी डोम के घर पानी भरने का काम करना पड़ा। द्रोपती जो पाँच पाण्डवों की रानी थीं उसने जीवन भर कष्ट सहें इसी भाग्य के लेखे के कारण उसका शरीर हिमालय की बर्फ में गलकर नष्ट हुआ बलि जैसे यशस्वी राजा ने इन्द्र की पदवी प्राप्त करने के लिए अनेक यज्ञ किए लेकिन भाग्य के कारण उन्हें पाताल जाना पड़ा अर्थात भाग्य ही सर्व शक्तिमान है इसलिए मीरा कहती हैं है ! गिरधर गोपाल आप में तो विष को अमृत बना देने की क्षमता है आप मेरा बुरा भाग्य बदल सकते हैं।

विशेष -कर्म व भाग्य एक दूसरे के पर्याय हैं।

भाव साम्य-

''कर्म का भोग भोग का कर्म यही जड़ चेतन का आनन्द।'' (प्रसाद)

12.5 सूर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व -

12.5.1 जीवन परिचय -

हिन्दी साहित्य के भक्ति कालीन कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा सबसे लम्बी और समृद्ध है, महाकवि सूरदास इस काव्य परम्परा प्रमुख स्तम्भ हैं। पुष्टिमार्ग के जहाज नाम से विख्यात इस महाकवि के जीवन के संबंध में पर्याप्त हैं किन्तु आधुनिक खोजों से यह मतभेद प्रायः समाप्त हो गया है।

जन्म - मध्यकालीन भक्ति साहित्य के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले बल्लभ सम्प्रदाय के आधार पर सूरदास का जन्म सन् 1535 (सन् 1477) वैशाख शुक्ल पंचमी माना गया है। वर्तमान में महाकवि की यह जन्मतिथि सर्वमान्य है।

जन्म स्थान - सूरदास के जीवन की अन्य स्थितियों की तरह ही उनके जन्म स्थान को लेकर भी पर्याप्त मतभेद है-

1- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में सूरदास का जन्म स्थान रुनकाता माना है। डॉ0 श्याम दास जी भी शुक्ल के मत से सहमत हैं।

2- डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल सूरदास का जन्म स्थान ग्वालियर के समीप गोपालचल माना जाता है।

3- चौरासी वैष्णवन की वार्ता के आधार पर श्री हरिराय ने सर्वप्रथम सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के समीप सीही ग्राम बताया है। वर्तमान में अधिकांश विद्वान सूर का जन्म स्थान 'सीही' मानते हैं।

जाति, वंश एवं गुरू- आधुनिक खोजों के आधार पर सूरदास ब्राहम्ण थे के आस-पास सारस्वत ब्राहम्ण वंश में उनका जन्म हुआ था पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लाभाचार्य उनके दीक्षा गुरू थे। सूरदास अन्धे थे इस बात की पुष्टि उनके पदों में हो जाती है। लेकिन इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं कि वे जन्मान्ध थे या बाद में अन्धे हुए। बाल्यावस्था से ही सूरदास वैरागी रहै आचार्य बल्लभ से दीक्षा लेकर वे गोवर्धन पर्वत पर अपना जीवन व्यतीत करने लगे और उन्होंने जीवन

पर्यन्त श्री नाथ जी की सेवा की।

मृत्यु- महाकवि सूरदास के जीवन के अन्तिम चरण के बारे में स्पष्टतया कुछ भी नहीं कहा जा सकता अधिकांश विद्वानों ने उनकी मृत्यु सं0 1635 से 1642 के बीच मानी जाती है।

12.5.2- साहित्यिक परिचय-

रचनाएं- महाकवि सूरदास को अनेक रचनाओं का प्रणेता माना जाता है अब तक उनके नाम के 25 ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है-

1- सूर सारावाली	2- भागवत भाप्य	3- सूर रामायण
4- गोवर्धन लीला	5- सूरसाठी	6- भंवर गीत
7- प्राणप्यारी	8- सूरदास की विनय आदि के स्फुट पद	
9- एकादशी महात्म्य	10- दशम स्कन्ध भाषा	11- साहित्य लहरी
12- मान लीला	13- नाग लीला	14- दृष्टिकूट पद
15- सूर पचीसी	16- नल दयमन्ती	17- सूरसागर
18- राधा रस केलि कौतुहल	19- दान लीला	20- व्याहलो
21- सूर सागर सार	22- सूर सतक	23- सेवा फल
24- हरिवंश टीका	25- राम जन्म।	

उपरोक्त रचनाओं में विद्वानों सूरदास की तीन ही रचनाओं को प्रमाणिक रचना माना है - 1- सूरसागर 2- साहित्य लहरी 3- सूरसावली। सूरसागर सूरदास की सर्वाधिक प्रमाणिक रचना हैं। सूरसारावली और साहित्य लहरी को विद्वानों ने या तो सूर सागर का अंश माना हैं। अथवा उन्हें सूरदास की रचना मान लिया गया है।

1- सूरसागर- सूरसागर सूरदास की सर्वाधिक प्रमाणिक रचना है यह लगभग सं. 1567 से 1600 के बीच लिखी गई। इस रचना का मूल स्रोत श्रीमदभागवत् है। इसमें बारह स्कन्ध हैं जिसमें सवा लाख पद बताए गए हैं। किन्तु वर्तमान तक शोधकर्ता विद्वानों को दस हजार पद ही प्राप्त हुए हैं इसमें 12 स्कन्ध हैं। सम्पूर्ण सूरसागर एक मुक्तक रचना के रूप में इसमें मूलतः श्री कृष्ण के कार्यो और अद्भूत लीलाओं के वर्णन का गीत सार है, इतना ही नहीं नाद सौन्दर्य, संगीतात्मकता, विभिन्न रसों को प्रयोग तथा अद्भूत भवामिव्यक्ति आदि विशेषताओं से युक्त यह ग्रन्थ आज भी प्रासंगिक है।

2- सूर सारावली- इस रचना की कोई मूल प्रति उपलब्ध नहीं है बंबई तथा लखनऊ से प्रकाशित 'सूरसागर' की प्रतियों के प्रारम्भ में यह रचना मिलती है इसकी रचना सं0 1634 में मानी गई है, इसमें कुल 1107 पद है। इसमें नखशिख वर्णन मुक्त सौन्दर्य नायिका भेद के साथ कतिपय स्थानों पर श्रंगार में अश्लीलता का भी वर्णन है।

3- साहित्य लहरी- साहित्य लहरी दृष्टि कूट पदों का संग्रह है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसका रचनाकाल सं0 1607 विक्रमी माना है। लेकिन डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा और मुंशीराम शर्मा ने इसका रचनाकाल सं0 1627 या सं0 1617 माना है इसमें कुल 118 पद है इसका विषय रस अलंकार और नायिका भेद है।

साहित्यिक विशेषताएं- सूरदास की साहित्यिक विशेषताओं की पृष्ठ भूमि को समझाते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पियूस धारा, जो काल

की कठोरता में दब गई थी अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरलता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैले मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यो की छाप लगी हुई आठ वीणाएं श्री कृष्ण की प्रेम लीला का कीर्तन करने उठीं जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वाणी की थी।'' (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रन्थावली खण्ड 01-पृ0. 259)

1- भक्ति भावना- महाकवि सूरदास ने इस प्रपंचात्मक संसार से मुक्ति का एकमात्र उपाय भगवान की भक्ति को स्वीकार किया है। उनकी भक्ति भावना के सर्वप्रथम दर्शन उनके विनय के पदों में होते है विनय भावना भक्ति का प्रथम सोयान है, जिसमें नम्रता आत्मसमर्पण और श्रद्धा का समावेश है इसमें महाकवि सूर ने अपने आराध्य कृष्ण की श्रेष्ठता को पग-पग पर स्वीकार किया है तथा स्वयं को निरीह अकिंचन और पापी की श्रेणी में रखा है क्योंकि विनय से आसक्त भक्ति मूलतः दास्य भाव पर आधारित है।

श्रीमदभागवत् की नवधा भक्ति में से सूरदास ने अन्तिम तीन को मुख्य रूप से ग्रहण किया है, जिसमें आत्म निवेदन, दास्य एवं सरव्य की प्रमुख हैं। सूरदास की भक्ति भावना पर मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है ''सूरदास की भक्ति भावना की एक बहुत बड़ी विशेषता है उसका सहज सतत् विकासशील रूप सूर की भक्ति भावना दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन की वैधी भक्ति से दास्य, सरव्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की रागानुजा भक्ति के विविध सोपानों को पार करती हुई प्रेमाभक्ति की सिद्धावस्था में पहुँची है उसमें भक्ति भावना के सभी रूप हैं। भक्ति आन्दोलन पर सूरदास का काव्य पृ. 2247 कहना चाहिए कि सूरदास के काव्य में समाविष्ट सम्पूर्ण भक्ति तत्व का आधार उपासक एवं उपास्य के बीच अनन्य प्रेमपूर्ण काव्य का केन्द्र बिन्दु है यही पारस्परिक प्रेम एक तरफ सूर के काव्य में माधुर्य एवं लालित्य का सृजन करता है वहीं दूसरी तरफ श्रंगार और वात्सल्य के सभी पारम्परिक एवं मौलिक तत्वों का समावेश करता है और यह सब सूर की प्रतिमा और सगुण की उपासना को प्रतिफल हैं हॉलाकि वे निर्गुण भक्ति को पूर्णतः नकारते नहीं पर सगुण भक्ति के पक्ष्य में अपना तर्क देते हुए कहते हैः-

''रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु निरालंब कित धावें।
स्ब विधि अगम विचारहि तातैं सूर सगुन पद गावै।।''

2- वात्सल्य वर्णन- महाकवि सूरदास के काव्य के प्रारम्भ में उनके उपास्यदेव कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं का वर्णन सर्वथा नवीन उद्धावनाओं के साथ मिलता है। जिसमें वात्सल्य के दोनों काव्य रूपों संयोग वात्सल्य और वियोग वात्सल्य का अदभुत चित्रण है।

(अ) संयोग वात्सल्य- महाकवि सूर ने संयोग वात्सल्य के अर्न्तगत कृष्ण के जन्म से लेकर वाल्यकाल तक सम्पूर्ण चेष्टाओं का वर्णन किया है इसमें कृष्ण की बाल चेष्टाएं, वेश-भूषा बाल क्रीड़ाओं आदि का वर्णन है।

कृष्ण की बाल चेष्टाओं एवं क्रीड़ा का एक उदाहरण देखिए-

''सोमित कर नवनीत लिये।
घुटरून चलत रेनु तन मण्डित मुख दधि लेय किये।।''

(ब) वियोग वात्सल्य- जिस प्रकार सूरदास ने कृष्ण की बाल्यावस्था की मनोरम झांकिया है उसी प्रकार वियोग वात्सल्य का भी हृदय द्रावक एवं अनुठा चित्रण किया है। वियोग वात्सल्य

की सबसे सुन्दर झलक श्री कृष्ण के मथुरा गमन के अवसर पर देखी जा सकती है-

''जसौदा बार-बार यौ भारवै।
है कोई ब्रज में हितू हमरौ चलत गोपालहिं राखै ।।

कहा करै मेर छगन-मगन को नृप् मधुपरी बुलायौ। सुफलक सुत मेरे प्रान हनन को काल रूप होई आयौ ।।''

3- श्रृंगार वर्णन- महाकवि सूरदास का 'सूरसागर' में वर्णित श्रंगार भावना का चित्रण भी वात्सल्य वर्णन की तरह ही आद्वितीय एवं मार्मिक है। सूरदास के वात्सल्य वर्णन पर आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने लिखा है ''वात्सल्य और श्रंगार के क्षेत्रों का जितना आधिक उद्धाटन सूर ने बन्द आँखों से किया है उतना किसी कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना-कोना झॉक आये हैं।''
(हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.109)

(अ) संयोग श्रंगार- महाकवि सूर के संयोग वर्णन के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''श्रंगार के संयोग और वियोग दोनो पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं मिलता। वृन्दावन में कृष्ण और गोपियों का सम्पूर्ण जीवन क्रीड़ामय है और वह सम्पूर्ण क्रिया संयोग पक्ष है। उसके अन्तर्गत विभागों की परिपूर्णता कृष्ण और राधा के अंग प्रत्यंग की शोभा के अत्यन्त प्रचुर और चमत्कार पूर्ण वर्णन में वृन्दावन के करील कुजों, लताओं हरे-भरे कछारों, खिली हुई चांदनी, लेकिन कुंजन संचारियों का इतना बाहुल्य कहां मिलेगा। सांराश यह कि संयोग मुख के जितने प्रकार के क्रीड़ा विधान हो सकते हैं वे सब सूर ने लाकर इकट्ठे कर दिए हैं। यहाँ तक कि कन्धे चढ़कर फिरने का राधा का आग्रह जो कुछ कम रसिको को अरूचिरकर श्रैणता प्रतीत होगी।'' (शुक्ल ग्रन्थावली-1 पृ. 286) संक्षेप में कहना चाहिए कि महाकवि सूर का संयोग श्रंगार वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी है उनका हृदय प्रेम की नाना उमंगों का अक्षय भण्डार प्रतीत होता है।

(ब) वियोग श्रंगार- संयोग श्रंगार का जितना व्यापक और गहरा चित्रण महाकवि सूरदास ने किया है उससे कहीं अधिक व्यापक और मर्मस्पर्शी चित्रण वियोग श्रंगार का किया है उन्होंने गोपियों के माध्यम से काव्य साहित्य में विरह के अनतर्गत आने वाली सभी अर्न्तदशाओं का वर्णन किया है। जिसमें गोपियों के निश्च्छल हृदय एवं कृष्ण के प्रति सहज प्रेम के साथ उनकी विरह की सभी मानसिक दशाओं को सूर ने भलि-भॉति चित्रिण किया है। कहना चाहिए कि महाकवि सूरदास का वियोग श्रंगार मौलिक रमणीय होने के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व साहित्य के लिए अद्भूत है। इसे गोपियों की आतृप्त प्रेमानुभूति के चित्रण में देखा जा सकता है।

''अखियाँ हरि दर्शन की भूँखी ।
कैसे रहैं रूप रस राँची ये बातियाँ सुनि रूखी ।।
बारक वह मुख फेरि दिखाओं दुहि प्य पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलाओं ये सरिता है सूखी।।''

काव्य भाषा- महाकवि सूरदास की काव्य भाषा बोलचाल की भाषा के अधिक निकट है उन्होंने मुख्य रूप से ब्रजप्रदेश में बोली जाने वाली ब्रजभाषा को साहित्य रचना का आश्रय बनाया उसमें ब्रजभाषा के सभी गुण एवं रूप दृष्टिगोचन होते हैं उनकी भाषा में भावात्मकता, लालित्य, गीतात्मकता, प्रवाहमयता तथा तीन शब्द शक्तियों अमिधा, लक्षणा, व्यंजना का समावेश है,

साथ ही लोक प्रचलित भाषा को साहित्य की भाषा बनाने के कारण उनके काव्य में विभिन्न भाषाओं संस्कृत, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के शब्द के साथ ही प्रान्तीय भाषाओं गुजराती राजस्थानी, पंजाबी अवधि आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में आ गये हैं। सूरदास की काव्य भाषा के बारे में बच्चन सिंह ने लिखा है- ''उसमें ब्रजी के ठेठ शब्द अवश्य है पर उनका काव्यात्मक विन्यास अपने संगीत तत्व, नाटकीय भंगिमा, बिंब विधान, रूपकात्मकता, भावपूर्ण वक्रोक्तियों के कारण अत्यन्त प्रभावशाली हो उठा है। वस्तु की व्यापकता और नवीन प्रसंगोद्भावना के कारण ही उनकी शैली में वैविध्य आया है। मुहावरे और लोकोक्ति तो उनकी भाषा की जान है। लोकधुनों की मिठास के कारण भाषा और भी लालित्य पूर्ण हो गई है।''
(हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास पृ0 128)

अभ्यास प्र0 2

अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. महाकवि सूरदास का जन्म कब हुआ था ?
2. सूरदास के नाम से अब तक कितने ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं ?
3. महाकवि सूर के प्रमाणिक ग्रन्थों की संख्या कितनी है ?
4. सूरदास के दीक्षा गुरू कौन थे ?
5. सूरसागर में कितने स्कन्ध हैं ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. सूरदास की भक्ति भावना को संक्षेप में समझाइयें ?
2. सूरसागर पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?
3. महाकवि सूरदास के वात्सल्य वर्णन का संक्षिप्त विवेचन कीजिए ?

12.6 सूर के पद संदर्भ एवं व्याख्या-

1- जसोदा हरि पालने झलावै-

हलरावै बुलरावै मल्हावै जोई सोई कहु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहै न आनि सुवावै।
तू काहै नहि बेगि सों आवै ताहै कौं कान्ह बुलावै।।
के बहु पलक हरि मूंद लेते हैं, अधर कब हुँ फटकावै।
सोवत जानि मौन है बैठी कर-कर सैन बतावै।
इहि अन्तर अकुलाई उठे हरि-जसुमति मधुरै गावै
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनी पावैं।

शब्दार्थ- दुलराई = प्यार करना। निंदरिया = नींद। सोवत = सोता। सैन-इसाएं = अन्तर हृदय। नन्द यामिनी = नन्द की पत्नी (यशोदा)

संदर्भ - प्रस्तुत पद महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर से उद्धृत है।

प्रसंग - माता यशोदा घर के काम-काज निपटाने है तु श्री कृष्ण को पालने में झूला-झुलाकर सुलाने का प्रयास कर रही है। बालक माता का सानिध्य पान के लिए सोने और जागने का बहाना करता है। इस पद में माता के प्रति स्नेह भाव देखते ही वनता है।

व्याख्या- सूरदास जी कहते हैं कि माता यशोदा कृष्ण को पालने में झूला-झुलाकर सुला रही है। इस क्रम में कभी पालने को खिलाती हैं, कभी बच्चे को पुचकारती है, हवा करती है, साथ ही लोरी गाती हुई नींद से आग्रह करती है कि तुझे कोई साधारण बालक नहीं अपितु मेरा कान्हा बुला रहा है अतः जल्दी से आकर मेरे बालक को सुला क्यों नहीं देती बाल सुलभ क्रीड़ा में बाल भगवान कृष्ण कभी अपनी पलक बंद कर लेते हैं, और कभी अपनी पलकों को अधखुला सा कर लेते हैं माता यशोदा सोचती है कि बालक को नींद आ गयी है तब पालना हिलाना व गाना बन्द कर देती है, तब-तब बालक इशारा कर-कर के बताता है कि मैं अभी सोया नहीं हूँ। इस प्रकार की बाल-लीला देखकर माता का हृदय ममत्व भाव से भर उठता है, सूरदास जी कहते है कि यह सब सुख है जो माता याशोदा प्राप्त कर रही है जैसा अमर मुनियों को भी दुर्लभ है। ?

विशेष -

1- बाल सुलभ चेष्टाओं का सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है।

2- वात्सल्य रस एवं माधुर्य गुण का समावेश हुआ है।

3- माता के हृदय को ममत्व भाव का आगाद्य सुख प्राप्ति हुई है।

4- ब्रजभाषा में कुकान्त शैली का लयात्मक क्रम है।

मैय्या मोरी मैं नहीं माखन खायो।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायौ ।।
देखि तु हि सींके पर भाजन ऊँचैं धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हें कर अपने, छींका केहि विधि पायौ ।।
मुख दाधि यौंहि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि मुसकाव्य जसोदा, स्यामहि कंठ लगायौ ।।
बल-विनोद मोद मन मोध्यों, भक्ति प्रताप दिखायौ ।
सूरदास जसुमत को यह सुख, सिव विरांधे नहिं पायौ।।

शब्दार्थ = ख्याल = खेलना। भाजन = बर्तन। नन्हि = नन्हें, छोटे। दुरायौ = छिपाना सींके = छींका । कर = हाथ, साँटि = छड़ी। सिव-शिव भगवान। विरंचि = ब्रह्मा ।

संदर्भ - पूर्ववत !

प्रसंग - श्री कृष्ण मारवन चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़े गये तब ग्वालिन उलाहना लेकर माता यशोदा के पास जाती है, माता यशोदा रोज-रोज शिकायत से तंग आकर बालक कृष्ण को मारने के लिए छड़ी उठाती है, बालक किस चतुरता से माँ की मार से बचने के लिए अपनी सफाई पेश करता है।

व्याख्या- सूरदास जी कहते है कि श्री कृष्ण अत्यन्त दुलार भरी वाणी में अपनी माता यशोदा से अनुनय विनय करने लगे कि माता मैंने मक्खन की चोरी नहीं की और न ही मैंने मक्खन खाया। मेरे साथ सखा खेलते हैं, उनमें बड़े लड़के मक्खन की चोरी करते हैं और मुझ जैसे छोटे बच्चे के मुख पर पकड़े जाने के भय से लिपटा देते हैं। अब तू ही बता कि छोटी बांहों वाला बच्चा हूँ मैं इतने ऊँचेप र लटके छींके के बर्तन तक कैसे पहुँच सकता हूँ, प्रयास करने पर भी छींके तक नहीं पहुँच सकता । इतनी सफाई देने पर भी जब माँ का क्रोध शान्त नहीं हुआ तब कृष्ण का ध्यान अपनी शारीरिक स्थिति पर गया तब बड़ी चतुरता से उन्होंने शीघ्रता से मूँह पर लिपटा मक्खन

पोछा और हाथ में पकड़ा हुआ मक्खन से भरा दोना पीठ के पीछे छिपा दिया। कृष्ण के इस बाल सुलभ नटखट रूप का कौतुक देखकर यशोदा हृदय में पुत्र के प्रति स्नेह से भर गई। सारा क्रोध भूलकर उन्होंने कृष्ण को गले लगाया। कृष्ण ने बाल सुलभ क्रीड़ाओं के आनन्द से माँ का मन मोह लिया और भक्ति के प्रताप का यशोदा को दर्शन करा दिये। अन्त में सूर कहते हैं कि बाल-लीला का जो सुखः यशोदा को प्राप्त हुआ वह वात्सल्य सुख ब्रह्मा और शिव भी नहीं या सके। यह सुख तो अवर्णनीय और हृदय से अनुभूत करने वाला हैं।

विशेष-

1- इस पद में बाल लीला के मक्खन चोरी प्रसंग का सहृदयता एवं विद्ग्धता से बिंब या भाव चित्र उपस्थित हुआ है।

2- इस पद में बालकों की अन्तवृतियों का प्रकृत स्वभाव निरूपित हुआ है।

3- इस पद में लोक चेतना का संकेत हुआ है।

4- मैया मोरी में...................अनुप्रास अलंकार है।

5- ब्रजभाषा की लोक संगीत परम्परा का प्रभाव भी इस पद में देखा जा सकता है।

उधो, मन नाहीं दस-बीस।
एक हुतो सो गयो संग को आराधै ईस।।
देह अति शिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिन सीस।
स्वासां अटकि रही आसा लागे, जीवहिं कोरि-बरीस।।
तुम तो सरवा श्याम सुन्दर के , एकत जोग के ईस।
सूरदास रसिकन की बतियाँ पुखों मन जगदीश।।

शब्दार्थ- ऊधौं उद्धव (कृष्ण के मित्र)। हुतो = जो पास था। श्याम = श्री कृष्ण। आरौ = आराधना। सीस = सवासौ = श्वास। जीवाहिं = जी रहीं हैं। सखा = मित्र। रसिकन = पूर्ण। बतिया = बातें।

संदर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - उद्धव निर्गुण ज्ञान के प्रसार है तु ब्रज में आता है और गोपियों से कृष्ण के निर्गुण रूप की अराधना की बात कहता है। उसका उत्तर गोपियाँ इस पद में दती हैं। साथ ही अपने लौकिक प्रेम स्थापना करती है उद्धव के निर्गुण ज्ञान को ग्रहण न करने की विवशता भी दर्शाती हैं।

व्याख्या- सूरदास गोपियों के माध्यम से कहते हैं कि है उद्धव हमारे पास तो एक ही मन था, हमारे पास दस-बीस मन होते तो एक मन हम तुम्हें भी दे देतीं, निराश नहीं करती किन्तु हमारी इस विवशता पर भी आप ध्यान देवें। हमारे पास जो एक मन था वो तो कृष्ण अपने साथ मथुरा ले गए, फिर निर्गुण कृष्ण की अराधना बिना मन हम कैसे करें। श्री कृष्ण के लोकिक प्रेम के कारण हम कितना कमजोर हो गयी हैं मानो बिना कृष्ण के हमारे शरीर शेष रहा गया है, इस शरीर में श्वास अटकी है वो भी उनके आने की आशा से उनके आने की बात तो हम करोड़ो वर्षों तक करती रहेंगी है उद्धव तुम तो कृष्ण के मित्र हो उनसे तुम्हारा लोकिक संबंध भी है तुम्हारी ये कठोर बातें हमारे पल्ले नहीं पड़ेगी। अन्त में सूरदास जी कहते हैं कि गोपियों को कृष्ण की लौकिक प्रेम की बातें करने से ही हमारे द्वारा हमारे इष्ट की सच्ची अराधना है।

विशेष-1- इस पद में निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की विजय दर्शाई गई है।

2- वैष्णव परम्परा की सगुण भक्ति में लीला वर्णन में आनन्द का जो स्रोत फटता है-वह जनता के

मन को स्पर्श करता है। इसी स्थिति के कारण सगुण भक्ति ही श्रेष्ठ है।

3- लोकिक प्रेम के प्रति पूर्ण शक्ति का भाव चित्रित हुआ है।

4- बोलचाल की ब्रजभाषा में शब्दों का लयात्मक क्रम मिलता है।

4. लरिकाई का प्रेम, कहौ अलि कैसे करिकै छूटत ?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब, अन्तरगति यों लूटन ।।
चंचल चाल मनोहर चितनवन वह मुसुकांति मंद धुन गावत ।
नटवर भेस नंदनंदन को वह विनोद गृह इतने आवत ।।
चरनकमल की सपथ करति, हौं, संदेश मोहि विष सम लागत ।
सूरदास मोहि निमिष न विसरत, मोहन मूरत सोषत जागत ।।

शब्दार्थ- लरिकाई = बचपन, अन्तर गति = मन, चिन्त की वृति।

निमिष = पलभर को भी। विसरत = भूलना ।

संदर्भ- पूर्ववत।

प्रसंग - गोपियाँ बाल साहचार्य- संभूत प्रेम की एकनिष्ठता का मार्मिक वर्णन कर रहीं हैं।

व्याख्या- गोपियाँ उद्धव से कहती है कि, है उद्धव! यह बताओं कि बाल साहचर्य से उत्पन्न प्रेम कैसे छूट सकता है। हम ब्रज के स्वामी कृष्ण लिलाओं का कहाँ तक वर्णन करें ? उनकी लीलाओं का ध्यान हमारे मन को सहज रूप से उनकी ओर आकर्षित करना रहता है, अर्थात उनका स्मरण आते ही हम अपनी सुध-बुध खो बैठता हैं उनकी वह चंचलता से युक्त चाल, वह मनोहर दृष्टि वह मधुर मुस्कान और धीमे-धीमे स्वर में गाना हमें कभी भी नहीं भूलता। उनका वह नटवर का वेश धारण करके विनोद करते हुए वन से घर को लौटना हमारी स्मृति सदैव छाया रहता हैं।

हम श्री कृष्ण की चरण कमलों की सौगन्ध खाकर कहती हैं कि उनका यह संदेश (उन्हें भूलकर ब्रह्म की अराधना करने का संदेश) हमें विष के समान घातक लगता है। हमें तो सोते हुए जागते हुए कृष्ण की वह मोहक मूरति एक पल के लिए भी नहीं भूलती है।

विशेष-

1- यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बचपन के संस्कार अमिट रहते हैं।

2- लरिकाई कौ प्रेम, में एक अद्भुत मार्मिकता है और हृदय को छू लेने की क्षमता है।

3- विप्रलंभ श्रंगार रस है।

4- अनुप्रास, उपमा, व रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है ।

5. निरगुन कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हंसी समुझाय सौंह दै बूझती सांच न हांसी ।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी ।।
कैसो बरन, भेंस हैं कैसो, केहि रस में अभिलासी ।
पावेगो पुनि कियो आपनो, जो रे कहैगो गाँसी ।
सुनत मौन रहयो अयो सौ सूर सबै मति नासी ।।

शब्दार्थ- सौंह = सौगन्ध, कसम। बरन = वर्ण, रंग। गाँसी = कपट की बात ठग्यौ सौ = उगा हुआ सा, सतम्मित। नासी = नष्ट हो गई।

संदर्भ- प्रस्तुत पद सगुण उपासक, कृष्ण के अनन्य भक्त महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'भ्रमर गीत सागर' में से लिया गया है।

प्रसंग- प्रस्तुत पद में सूरदास ने गोपियों के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म की उपेक्षा और सगुण ब्रह्म की स्थापना का प्रयास किया है।

व्याख्या- गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म पर व्यंग्य करती हुई उद्धव से पूछती हैं कि, है उद्धव! तुम्हारा निर्गुण किस देश का रहने वाला हैं (हम तो अपने सगुण कृष्ण का निवास जानती हैं) है मधुकर। हमें हँसकर अर्थात प्रसन्न मन से यह सब समझा दो। हम तुम्हें सौगन्ध देकर सच-सच पूछ रही है। तुम्हारे मजाक नहीं कर रही हैं अब यह बताओ कि तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म का पिता कौन है, उनकी माँ कौन है, उनकी पत्नी हैं और उनकी सेवा करने वाली दासी कौन है ? उसका रंग और वेश-भूषा कैसी है और उसे कौन सा रस अच्छा लगता है?

फिर गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से कहती हैं कि है भ्रमर! यदि तूने कोई कष्ट की बात कही, झूठ कहा तो तूझे अपनी करनी का फल भुगुतना पड़ेगा। गोपियों के मुख से निकली इन बातों को सुनकर उद्धव मौन हो गये ऐसा लग रहा था कि जैसे उनकी सारी बुद्धि नष्ट हो गई अर्थात वह किंकर्तवाविमूढ़ हो कुछ भी उत्तर न दे सके।

विशेष-

1- प्रस्तुत पद में व्यंग्यात्मक शैली में निर्गुण ब्रह्म का खण्डन किया गया है।

2- गोपियों का वाग्वैदग्ध दृष्टव्य है।

3- उपरिषदों ने जिस ब्रह्म के संबंध में नेति-नति कहा है उस ब्रह्म का निरूपण बेचारे उद्धव कैसे कर पाते।

12.7 पद्माकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व

12.7.1 जीवन परिचयः-

रीतिकाल के अन्तिम श्रेष्ठ अलंकारिक कवि आचार्य पद्माकर का जन्म 1753 ई. में सागर में तैलंग ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज दक्षिण भारत के निवासी थे, इनके पिता का नाम मोहन लाल भट्ट था जो अनुष्ठान कर्ता और तान्त्रिक के रूप में प्रसिद्ध थें पद्माकर का लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा बुन्देल खण्ड में हुई। कविता लिखने की परम्परा इनके परिवार मंे थीं इनके वंशज आज भी कविता लिखने हैं कवीश्वर की पदवीं से विभूषित हैं।

पदमाकर का अधिकांश जीवन राजदरवारों में बीता वे सागर नरेश रघुनाथ राव अप्पा, महाराज जैतपुर, सुगरा निवासी नोने अर्जुन सिंह, दतिया महाराज पीरिक्षित, शुजाउद्धौला के जांगीरदार गोसांई अनूप गिरि उपनाम हिम्मत बहादुर, सितारा के रघुनाथ राव (राघोवा) जयपुर नरेश प्रताप सिंह और उनके पुत्र जगत सिंह, उदयपुर नरेश महाराजा भीम सिंह तथा ग्वालियर नरेश दौलत राव सिंघिया के दरवारों में रहें और कभी-कभी अपने घर बांदा भी आते थे। सन् 1833 में कानपुर में इनकी मृत्यु हो गई।

12.7.2 साहित्यिक परियचय-

श्रीतिकालन कवि आचार्य पद्माकर क नाम अब तक ग्यारह रचनाओं का उल्लेख हुआ है-

1- अनुपगिरि

2- हिम्मत बादुर विरूदावली
3- ईश्वर पचीसी
4- गंगालहरी
5- जगद्विनोद
6- जमुना लहरी
7-पद्माभरण
8-प्रबोधपंचाशिका
9- राजनीति राम रसायन
10- लिलहारी
11- बिरूदावली।

कहा जाता है कि उक्त ग्रन्थों में से लिलहारी लीला और प्रबोध पंचाशिका पद्माकर द्वारा रचित ग्रन्थ नहीं इन ग्रन्थों के अतिरिक्त महाराजा ग्वालियर की प्रशस्ति में लिखा गया ग्रन्थ आलीजाह प्रकाश भी मिलता है जो जगत सिंह की प्रशस्ति में लिखा गया जगदविनोद का ही अशंतः परिवर्तित रूप है। इन दोनों प्रशस्ति ग्रन्थों में कोई खाश अन्तर नहीं है, आलीजाह प्रकाश में जगद्विनोद के ही छनद हैं कही-कही पर भाषान्तर जरूर मिलता है।

पद्माकर की वास्तविक कीर्ति के आधार पर दो ही ग्रन्थ हैं जगद्विनोद और पद्माभरण। इनमें भी जगद्विनोद (1810) अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

हिन्दी साहित्य के अधिसंख्य विद्धानों ने पद्माकर के काव्य को तीन श्रेणियों में विभाजित किया हैः-

1- प्रशस्ति काव्य- इसके अनतर्गत दो ग्रन्थ प्रमुख है-
1- हिम्मतबहादुर विरूदावली 2- प्रताप सिंह विरूदावली।
2- रीति काव्य- रीति काव्य के अनतर्गत तीन ग्रन्थ हैं-
1-पद्माभरण 2- जगद्धिनोद 3- आलीजाह प्रकाश
3- भक्ति काव्य - भक्ति काव्य के अर्न्तगत निम्नलिखित ग्रन्थ हैं-
1-गंगा लहरी 2- यमुना लहरी 3- प्रबोध पचासा 4- कलि पचीसी 5- राजनीति की वचनिका 6- राम रसायन।

आचार्य पद्माकर अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न थे, श्रंगारिकता भक्ति भावना, ज्ञान , वैराग्य तथा बीर भावना उनके काव्य के प्रमुख विषय है रीतिकाल की परम्परानुसार उन्होंने रीतिग्रन्थ भी लिखे उनके काव्य की कुछ मूल विशेषताएं संक्षेप में इस प्रकार है-

1. **सौन्दर्य चित्रण**- पदमाकर का रूप सौन्दर्य चित्रण शास्त्रीय नहीं स्वानुभूतिजन्य है उन्होने स्त्री के रूप सौन्दर्य नख से शिख तक विविध प्राकृतिक उपमानों और प्रतिको के माध्यम से एक से बढ़कर एक चित्र खीचे है- पदमाभरण में नायिका का रूप सौन्दर्य का चित्रण देखते ही बनता है-

कमल चोर दृन तुव अधर विद्रुम रियु निराधार।
कचु कोकन के बन्धु है तम के वादी बार।।

2. **भक्ति भावना-** पद्माकर भगवान राम के अनन्य भक्त थे वे इस संसार की असारता में राम नाम को ही मानते थे। वे सांसारिक वस्तुओं का आकर्षण छोड़कर राम के प्रति भक्ति भाव से प्रेम करने को कहते हैं 'प्रेम पचीसी' मोह लोभ आदि को छोड़कर जीवन को विरक्त हो पद्माकर राम में मन लगाने को कहते हैं-

''कफ, बात, पित, मल, मूत, हाड़, नस, मास, रूधिर जहँ है।
ये ऐसो निंध रूप नारिन को तिनसो प्रेम पगाया है।
सुभ सुन्दर श्याम सरोरूह लोचन राम न मन में आया है।
अब वचन विचार कहत पद्माकर कहत यह ईश्वर की माया है।

3. **श्रंगार भावना-** पेद्माकर ने नारी रूप सौन्दर्य के साथ-साथ श्रंगार के दोनो पक्षों का चित्रण किया है- ''पद्माकर नायिका के संयोग वियोग-वियोग के पक्षों को ऋतुओं और त्यौहारों से जोड़कर श्रंगार वर्णन को उत्सव पूर्ण बना देते हैं इसके फलस्वरूप शारीरिक आकर्षण के साथ मानसिक आकर्षण भी सगुंफित हो उठता है। फाग उनका सबसे प्रिय त्यौहार है इसके साथ जुड़े हुए अनुराग की फाग को एक दृश्य देखिए-

या अनुराग की फाग लखौ जँह रागति राग किसोर किसोरी।
त्यौं पद्माकर धालि हाली फिरि लाल ही लाल गुलाल की झोरी।।
जैसी की तैसी रही पिचकी कर काहु न केसरि रंग में बोरी।।
गोरि के रंग भीजिगो साँउरो के रंग में भीजि गो गोरी।।

उनके वियोग श्रंगार में भी प्रकृति का रंग मिला हुआ है उदाहरण-

''लागत बसत के सु पाती लिखी प्रीतम को
प्यारी परबीन क हमारी सुधि आनबी।
कहै पद्माकर इहाँ को यों हवाल।
विरघनल की ज्वाला सो दावानल तें मानबी।''

काव्य भाषा- पद्माकर के काव्य की मूल भाषा ब्रजभाषा है, उनका लालन-पालन और शिक्षा बुन्देल खण्ड में होने के कारण उन्होंने बुन्देली भाषा के संज्ञा, शब्द, क्रिया पद, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग प्रयाप्त मात्रा में किया है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पद्माकर की भाषा के संबंध में लिखते हैं- कहीं तो इनकी भाषा स्निग्ध मधुर पदावली द्वारा एक सजीव भाव भरी प्रेम मूर्ति खड़ी करती है कहीं भाव या रस की धारा बहाती है, कहीं अनुप्रासों की मीलित झंकार उत्पन्न करती है, कहीं वरदर्य से क्षुब्ध वाहिनी के समान अकड़ती और कड़कती हुई चलती है और कहीं प्रशान्त सरोवर के समान स्थिर और गंभीर होकर मनुष्य जीवन को विश्रान्ति की छाया दिखाती है। सारांश यह कि इनकी भाषा से वह अनेक रूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिए। भाषा की ऐसी अनेकरूपता गोस्वामी तुलसीदास जी में दिखाई पड़ती है।''

अभ्यास प्रश्न- 3

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पद्माकर का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?
2. पद्माकर की शिक्षा-दीक्षा कहाँ हुई ?
3. जगद्विनोद का प्रकाशन कब हुआ ?

4. पद्माकर की मृत्यु कहाँ हुई ?

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. पद्माकर के रचना संसार को संक्षेप में समझाईये ?
2. पद्माकर की श्रृंगार भावना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?

12.9. घनान्द: व्यक्तित्व एवं कृतित्व-

रीति की रीति मुक्त धारा या स्वच्छन्द धारा के प्रमुख कवि घनान्द के जीवन को लेकर स्पष्टतः कुछ भी नहीं कहा जा सकता उनके जीवन के संबंध में अधिकांश तथ्य विवादास्पद हैं। लाला भगवान दीन के इनका जन्म सं0 1715 को माना हैं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म सं0 1764 को माना है। इसके अतिरिक्त अन्य आलोचकों ने भी इनकी जन्मतिथि के संबंध में अलग-अलग तिथियां निर्धारित की हैं। घनान्द की जन्मतिथि संबंधी विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा करने के बाद डॉ0 मनोहर लाल गौड ने अपनी पुस्तक 'घनान्द और स्वच्छन्द काव्यधारा' में लिखा है ''संवत् 1730 में इनका जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय 26 या 27 वर्ष के ये होते हैं जो इनकी दीक्षा वृत को देखकर ठीक प्रतीत हाता है ।''

जन्मतिथि की तरह ही घनान्द के जन्म स्थान के बारे में भी मतभेद है, लेकिन वर्तमान में अधि संख्य विद्वान उनका जन्म दिल्ली के आस-पास मानते है लेकिन आज तक भी इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है ये भट्नागर कायस्थ थे और दिल्ली छोड़कर बनारस चले गये थे। घनानन्द के जीवन की सबसे प्रसिद्ध घटना के बारे में यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है- ''घनानन्द दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के खाश कलाम (प्राइवेट सेक्रेटरी थे) मुहम्मद शाह के दरवार की सुजान की वैश्या से वे जी जान से प्रेम करते थे। सुजान की इन पर अनुशक्ति और दूसरी ओर बादशाह के खाश कलम। इन दोनों बातों के कारण दरबारी इनसे ईर्ष्या करते थे। उन्होंने इन्हें राज्य से निष्काषित करने का षड़यंत्र रचा। एक दिन दरवार में उन सबने बारशाह ने घनानन्द की गाने की कला की प्रशंसा की। मुहम्मद शाह ने घनानन्द से गाने को कहा पर घनानन्द ने विनग्रता पूर्वक गाना सुनाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की, इस पर उन षड़यंत्र कारियों ने कहा कि यदि सुजान को बुलाया जाय और घनानन्द से गाने का अनुरोध करे तो वे अवश्य गाएंगें सुजान बुलाई गई और घनानन्द ने सचमुच सुजान की ओर मुँह करके गाना सुनाया गाने ने सभी को मंत्र मुग्ध कर दिया, किन्तु गाने के प्रभाव से मुक्त होने पर बादशाह अत्यधिक नाराज हुआ, क्योंकि एक तो घनानन्द ने राजा की आज्ञा की अपेक्षा सुजान ने अनुरोध को महत्व दिया दूसरे राजा की ओर पीठ व सुजान की ओर मुंह करके गाना सुनाया इस बेअदबी को बादशाह सहन न कर सका और उसने घनानन्द को देश निकाला दे दिया कहते हैं कि राज्य छोड़ते समय ये सुजान के पास गए और उससे साथ चलने को कहा परन्तु अपने जातिय गुणों की रक्षा करते उसने साथ चलने का इनकार कर दिया। इससे खिन्न होकर विरक्त भाव से वृन्दावन चले गये। और इनका अधिकांश जीवन यहीं बीता था। घनानन्द निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे, अपने ग्रन्थ- ''परमहंस ग्रन्थावली में उन्होंने अपने गुरू परम्परा का वर्णन किया है। घनानन्द ग्रन्थावली की भूमिका में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं ''प्रेम साधना का अत्याधिक पथ पार कर वे बड़े-बड़े साधकों,

सिद्धों को पीछे छोड़कर 'सुजानों' की कोटि में पहुँच गए थे। अतः सम्प्रदाय में उनका सखी भाव का नाम हो गया था।'' निम्वार्क सम्प्रदाय में यह परम्परा है कि जो भी उसमें दीक्षा लेगा उस भक्त को सखी नाम लेना पड़ता है, अतः घनानन्द ने भी सखी नाम लिया यह नाम था 'बहुगुनी'। उनकी कई रचनाओं में बहुगुनी नाम का उल्लेख मिलता है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार घनानन्द की मृत्यु अहमद शाह अब्दावली द्वारा मथुरा पर किए गए द्वितीय आक्रमण के समय संवत् 1817 सन् 1697 में मथुरा में हुई थी ।

15.9.2 साहित्यिक परिचय-

रचनाएं- घनानन्द की रचनाओं को समय-समय पर विद्धानों ने सम्पादित और प्रकाशित करने का कार्य किया है। 1952 में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'घनानन्द' ग्रन्थावली में संकलित उनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार है।

1- सुजान हित
2- कृपाकंद
3- वियोग बेलि
4- इश्कलता
5- यमुना यश
6- प्रीति पावस
7- प्रेम पत्रिका
8- प्रेम सरोवर
9- ब्रजविलाश
10- सरस बसंत
11- अनुभव चन्द्रिका
12- रंग बधाई
13- प्रेम पद्धति
14- विषमानुपुर सुषमा वर्णन
15- गोकुल गीत
16- नाम माधुरी
17- गिरि पूजन
18- विचार सार
19- दान घेटा
20- भावना प्रकाश
21- कृष्ण कौमुदी
22- धाम चमत्कार
23- प्रिया प्रसाद
24- वृन्दावन मुद्रा
25- ब्रज स्वरूप
26- गोकुल चरित्र
27- प्रेम पहै ली
28- रसना यश
29- गोकुल विनोद
30- ब्रज प्रसाद
31- मुरलिका मोद
32- मनोरथ मंजरी
33- छन्दाष्टक
34- त्रिमंगी
35- परम हंस वंशावली
36- ब्रज व्यवहार
37- गिरि गाथा
38- पदावली
39- प्रकीर्णन

घनानन्द की प्रेम भावना- हिन्दी साहित्य में घनानन्द को मूलतः प्रेम कवि के रूप में जाना जाता है सर्वविदित है कि घनानन्द सुजान नामक वैश्या के रूपासिक्त थे इसलिए उनकी प्रेमभिव्यंजना की शुरूआत लौकिक रूप से शुरू होकर राधाकृष्ण के भक्ति के साथ विस्तार पाती है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी प्रेम भावना पर लिखते हैं ''ये वियोग श्रंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम की पीर को लेकर ही इनकी वाणी का प्रादूर्भाव हुआ प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।''

(हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 320)

घनानन्द ने प्रेम की अवधारणा को समझते हुए लिखा है-

''अति सुधो सनेह को मारग है जहाँ नैकु सयानपन बॉक नहीं
तहै साँधे चलैं तजि आपनपौ झिझकै कपटी जै निसाँक नहीं
घनानन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरौ ऑक नहीं
तुम कौन धौ, पाटी पढ़े हो लला मन लेंहु पै देहु छयँक नहीं।''

संक्षेप में कहना चाहिए कि घनानन्द की दृष्टि में प्रेम का मार्ग बहुत सीधा और सरल होता है, इसमें चालाकी चतुराई और लोभ की जगह नहीं होती।

स्पष्ट है कि घनानन्द प्रेम की सहजता और सरलता में विश्वास करते है कि घनानन्द प्रेम की सहजता और सरलता में विश्वास करते है कि घनानन्द प्रेम की सहजता और सरलता में विश्वास करते हैं उनका प्रेम एक पक्षीय है उसमें प्रतिदान की कामना बिल्कुल भी नहीं है।

घनानन्द की भक्ति भावना घनानन्द जीवन के पूर्वाद्ध में लौकिक प्रेम पर पूर्ण विश्वास करते थे किन्तु सुजान द्वारा परिस्थितिवश ठुकराए जाने के कारण उन्होंने लौकिक जीवन से भी नाता तोड़कर वैराग्य लेकर कृष्ण से नाता जोड़ लिया था। इतना ही नहीं भौतिक स्नेह ऐश्वर्य और धन की निन्दा करते हुए घनानन्द कहते हैं-

''देह सौ स्नेह सो हवै खेह-खिन ही मैं
नते सब होत परि रहै गौ नहीं रे नाम।''

भौतिक जीवन से वैराग्य लेकर भी घनानन्द को राधा-कृष्ण के प्रति गहन आस्था असीम भक्ति व अटूट विश्वास है वे सब कुछ राधा कृष्ण को मानते है-

राधा रमन की बलि जाऊँ
गौर श्याम ललाम संपति रमि दुरम बेलि।
महा अनुपम रूप में शोभा लहलहानि रस झेलि
आयु बन धन आयु वन-मन हैं रहत निसि भोर।''

घनानन्द की काव्य भाषा-घनानन्द के काव्य की मूल भाषा परिनिष्ठित ब्रज भाषा है, उनकी काव्य भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा होते हुए भी उसमें ठेठ ब्रज रूप होने के साथ अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है उन्होंने मूलतः कवित्त और सवैया छन्दों का प्रयोग ही अधिक किया है इसके अतिरिक्त दोहा चौपाई सुमेरू, त्रिलोकी, ताटंक निसानी शोभन त्रिमंगी आदि छन्दों का प्रयोग भी उनके काव्य में मिलता है। उनके काव्य में सभी अलंकारों का प्रयोग है लेकिन विरोध मूलक और साम्यमूलक अलंकारों की अधिकता है।

अभ्यास प्रश्न -4

अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. घनानन्द का जन्म कब हुआ ?
2. घनानन्द रीतिकाल के किस धारा के कवि है ?
3. घनानन्द की प्रेमिका का क्या नाम था ?
4. निम्वार्क सम्प्रदाय में दीक्षित घनानन्द का सखी का नाम क्या था ?

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. घनानन्द की प्रेम भावना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ?
2. घनानन्द की भक्ति भावना का संक्षेप में समझाइये ?

12.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप-

- भक्ति काल की सम्प्रदाय निरपेक्ष कवयित्री मीरा, सगुण भक्ति धारा के कृष्ण भक्ति शाखा के महाकवि सूर तथा रीतिकाल के चर्चित कवि पद्माकर और घनानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जान चुके होंगे।
- मीरा, सूर, पद्माकर और घनानन्द के काव्य की कुछ प्रमुख विशेषताओं को समझ चुके होंगे।
- मीरा, सूर पद्माकर और घनानन्द के चनिन्दा पदों की ससंदर्भ व्याख्या कर चुके होंगे।

12.11. शब्दावली

- वर्षोपरान्त - वर्ष के बाद
- जीवन पर्यत्न - जीवन भर
- प्रपंचात्मक - छल-कपट से युक्त
- सृजन - निर्माण
- कीर्ति - यश
- रीति मुक्त - नि कवियों ने रीतिकाल में लक्षण उदाहरण से इत्तर स्वछन्द रूप काव्य रचना की वे रीति मुक्त कवि कहलाते हैं।
- माधुर्य भाव - ईश्वर को पति के रूप में पाने की इच्छा।

12.12. अभ्यास प्रश्नो के उत्तर-

अभ्यास प्रश्न -1

1. सन् 1498 में मेड़ता राज्य के निकट विजौली ग्राम में।
2. माधुर्य भक्ति।
3. कृष्ण।
4. ब्रजमिश्रित राजस्थानी।
5. द्वारिका में।

अभ्यास प्रश्न -2

1. सन् 1478 में।
2. 25 ग्रन्थ।
3. तीन।
4. आचार्य वल्लभाचार्य।
5. बारह स्कन्ध।

अभ्यास प्रश्न -3

1. सन् 1753 ई. में सागर में।
2. बुन्देल खण्ड में।
3. 1810 में।
4. कनपुर में।

अभ्यास प्रश्न - 4

1. संवंत 1730 में।
2. रीतिमुक्त या स्वच्छन्द धारा।
3. सुजान।
4. बहुगुनी।

12.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. चतुर्वेदी रामस्वरूप हिन्दी काव्य का इतिहास पृ. 9798
2. शुक्ल, राम चन्द्र रामचन्द्र शुक्ल ग्रन्थावली खण्ड-1 पृ. 259
3. पाण्डेय मैनेजर भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य पृ. 224
4. शुक्ल राम चन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 109
5. शुक्ल राम चन्द्र रामचन्द्र शुक्ल ग्रन्थावली पृ. 286
6. सिंह वच्चन हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास पृ. 128
7. सिंह वच्चन हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास पृ. 208
8. शुक्ल, रामचन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 170
9. शुक्ल, रामचन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 320

12.14. सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वाजपेयि, नंद दुलारे - सूरदास राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
2. नगेन्द (सं0) हिन्दी साहित्य का इतिहास
3. नगेन्द्र डॉ0 रीति काव्य की भूमिका नेशनल पब्लिशिंग हाउस

12.15. निबन्धात्मक प्रश्न -

1. मीरा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अधिकार सविस्तार वर्णन कीजिए ?
2. मीरा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए ?

इकाई 13 कबीर रहीम एवं विहारी के दोहे

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 कबीरः एक परिचय
13.3.1 कबीरः जीवन परिचय
13.3.2 साहित्यिक परिचय
13.4 कबीर: के दोहेः सन्दर्भ एवं व्याख्या
13.5 रहीम: एक परिचय
13.5.1 रहीम: जीवन परिचय
13.5.2 रहीम: साहित्यिक परचिय
13.6 रही के दोहै : संदर्भ एवं व्याख्या
13.7 विहारी: एक परिचय
13.7.1 विहारी: जीवन परचिय
13.7.2 विहारी: साहित्यिक परिचय
13.8 विहारी के दोहै संदर्भ एवं व्याख्या
13.9 सारांश
13.10 शब्दावली
13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.14 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

यह स्नातक द्वितीय वर्षकी चौदहवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से पहले आप हिन्दी छन्द के संदर्भ में विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप कबीर, रही एवं विहा ी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होने के साथ-साथ हिन्दी साहित्य के इन महत्पूर्ण हस्ताक्षरों के चुनिन्दा दोहों की ससंदर्भ व्याख्या का अध्ययन भी करेंगे।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- भक्तिकाल के प्रमुख कवि कबीर, रहीम एवं रीतिकाल के रीति सिद्ध कवि विहारी के जीवन के बारे में बता सकेंगे।
- कबीर, रहीम एवं विहारी का साहित्यिक परिचय जान सकेंगे।
- कबीर रहीम एवं विहारी के चुनिन्दा दोहै की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।

13.3 कबीर: एक परिचय

13.3.1 जीवन परिचय

भक्तिकाल के महत्पपूर्ण हस्ताक्षर संत कवि कबीर दास के जन्म के संदर्भ में भी अनेक भक्त कवियों की तरह ही विद्वानों में मतभेद रहा है इनके जन्म के संबंध में स्पष्टतः कुछ भी नहीं कहा जा सकता। डा0 पीताम्बर दास बडथ्वाल एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर का जन्म जगभग 1270 ई0 के आसपास माना है। डा0 परशुराम चतुर्वेदी डा0 फुहकर एवं रामकुमार वर्मा ने अनुमान लगाया है कि कबीर का जन्म 1425 ई0 के पूर्व हो गया होगा। डा0 श्यामसुन्दर दास कबीर का जन्म संवत 1454 मानते हैं, साथ ही डा0 मात प्रसाद गुप्त ने इनका जन्म 1455 ई0 माना है।

लेकिन अंतःसाक्ष्य एवं कबीर चरित बोध के प्रमाण से तथा आधुनिक काल में जो खोज हुई है उसमें कबीर दास का जन्म संवत 1518 (1398) ई0 माना गया है।

कबीर के जन्म के संबंध में भी मतभेद रहा है परन्तु इतना निश्चित है कि जुलाहा पंश के नीरू एवं नीमा नाम के दम्पति ने इनका पालन-पोषण किया। काशी में इनका जन्म हुआ, और काशी में ही अधिकांश जीवन व्यतीत किया। कबीर के संबंध में प्रसिद्ध है कि वे रामानन्द के शिष्य थे, ‘भक्तमाल’ में सामानन्द के शिष्यों का जो उल्लेख है उसके कबीर को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। कहना चाहिए कि कबीर एक गृहस्थ संयासी थे उनकी पत्नी का नाम लोई तथा उनकी दो सन्तानें कमाल और कमाली थी।

कबीर दीर्घ जीवी थे‘अनन्त दास की परचई’ में उनकी आयु 150 वर्ष बताई गई है, मगहर में उनकी मृत्यु हई। उनका जन्म काल सन् 1398 सिद्ध हो ही चुका है इस आधार पर उनका मृत्यु काल (1398$120 1518) सन् 1518 संवत् 1575 ठरता है; उनकी मृत्यु के संबंध में दोहै के

रूप में एक जनश्रुति अत्यधिक प्रचलित है।-

‘संवत पन्द्रह सौ पछत्तार कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी रल्यो पौन में पौन ।।

13.3.2 साहित्यिक परिचय-

रचनाएं- कबीर के जीवन की तरह ही उनका रचनाकर्म भी विवादास्पद है मूलतः कबीर का साहित्य जीन रूपों में विभाजित है।

1. रमैनी - रमैनी में संसार संबंधी विचार है।
2. साखी- इसमें जीव संबंधी विचार है।
3. सबद या पद - इसमें ब्रह्म संबंधी विचार है।

कबीर का यह कथ्रन ‘मसि कागद छुयौ नहीं कलम गहि न हाथ’ से स्पष्ट है कि वे पढ़े लिखे नहीं थे इस सब के बावजूद उनमें काव्य प्रतिभा कूट-कूट कर भरी थी। उनकी मौखिक वाणी का सम्पूर्ण संकलन उनके शिष्य धर्मदास ने ‘बीजक’ नाम से संकलित किया है। इसके अतिरिक्त इसके अतिरिक्त समय-समय पर अनेक विद्वानों ने कबीर की रचनाओं की खोज-बीन कर उनके शोध पूर्ण संकलन प्रस्तुत किए हैं, जिनमें कुछ महत्वपूर्ण संकलन आगे दिए गए हैं-

1. कबीर ग्रन्थावली - डॉ0 श्याम सुन्दर दास
2. कबीर ग्रन्थावली - डॉ0 माता प्रसाद गुप्त
3. कबीर ग्रन्थावली - अयोध्या सिंह उपाध्याय
4. ग्रन्थ शब्दावली - गोविन्द राम, दुर्लभ राम
5. संत कबीर की शब्दावली- मुंशी शिवव्रत लाल
6. कबीर की साखी- विचार दास शास्त्री
7. कबीर साखी सुधा- राम चन्द्र श्रीवास्तव

अन्ततः यह कहना असंगत न होगा कि कबीर का रचनाकर्म स्वयं लिपिवद्ध न होने पर भी प्रासंगिता के कारण उनके नाम भक्तों की उदारता से प्रचुर साहित्य उपलब्ध है।

भारतीय धर्म साधना के इतिहास में कबीर का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है वे भक्तिकाल के निर्गुण भक्ति धारा के ज्ञान मार्गी सारवा के सन्त कवि थे उन्हें रहस्यवादी कवि कहा जाता है रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा का मकरी है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्वाद को दो रूपों में बांटा है

1- साधनात्मक रहस्यवाद
2- भावनात्मक रहस्यवाद।

कबीर की रचनाओं में इन दोनों रूपों में दर्शन होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में कबीर का अद्वितीय स्थान है वे जिन मानवीय भावों को लोकधर्म का आधार बनाकर समाज में मनुष्यत्य की भावना का विकास करना चाहते थे उसमें सबसे अधिक गम्भीर भाव है प्रेम! विना प्रेम के भक्ति सम्भव नहीं यही भक्ति सम्भव नहीं यही भक्ति का मूल भाव है। कबीर की भक्ति साधना में भक्त की अपने अराध्य के प्रति निष्ठा, समर्पण और एकाग्रता सम्पूर्ण रूप से उपस्थित है उनके अराध्य राम दुशरध पुत्र राम राम से भिन्न है उन्होंन कहा भी है-

'दशरथ सुत निहु लोक बखाना राम नाम का परम है आना।''

उनके राम निराकर है और प्रकाश स्वरूप भी। उनकी भक्ति में जो भावना सर्वाधिक आकर्षक लगती है वह है भक्ति साधना में समाज के सभी वर्गों का समावेश, उनकी भक्ति आडाम्बरों से मुक्त होने के कारण सहज लगाने के साथ-साथ मिश्रित भक्ति प्रती होती है।

कबीर सामाजिक चेतना के प्रखर प्रवक्ता थे समाज में फैली रूढ़ियों और आडम्बरों का खुलकर विरोध किया धर्मगत रूढ़ियों के प्रति तो वे अत्यधिक विद्रोह करते दिखाई पड़ते हैं कबीर ने सीधी चोट करने वाली वाणी के द्वारा सामाजिक परिवर्तन की अलख जगाई।

कबीर के काव्य की मूल भाषा के संबंध में कुछ भी निर्णय नहीं लिया जा सकता। डा0 गोविन्द त्रिगुणायत ने कबीर कबीर की भाषा के संबंध में लिखा है- '' कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया है, उनकी बोलियों में हिन्दी, उर्दू फारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता ही है साथ ही खडी़ बोली, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी मारवाडी़ आदि उपभाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया है।''

(प्राचीन काव्य सुधा (सं) मानवेन्द्र पाठ)

भाषा की इसी विशेषता को 'पंचरंगी मिली-जुली' या 'पंचमेल खिचडी़' कहा है। भाषा पर कबीर की कितनी पकड़ थी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस कथन को पढ़कर आप स्वतः ही समझ जाएंगे ''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था वे वाणी के डिक्टेटर थे जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया है बन गया तो सीधी-सीध नहीं तो दरेरा देकर-'' (कबीर-हजारी प्रसाद द्विवेदी)

अभ्यास प्रश्न-1

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिकाल की खोजों के अनुसार कबीर के जन्म की कौन सी तिथि सर्वमान्य है?
2. कबीर के गुरू कौन थे?
3. कबीर को 'वाणी का डिक्टेटर किसने कहा है?
4. बीजक नाम से कबीर की वाणियों का संग्रह किसने किया?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कबीर का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए?
2. कबीर का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय दीजिए?
3. कबीर की भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?

13.4 कबीर के दोहै संदर्भ एवं व्याख्या

1 - सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार

शब्दार्थ - सतगुन = सच्चा गुरू
अनंत = 1- अपरम्पार, 2- असीमित, 3 -अनंत ज्ञान 4 - पूर्ण ब्रह्म
उघाड़िा = खोलना

संदर्भ - प्रस्तुत दोहा कबीर की साखियों से अवतरित है।

प्रसंग - इस दोहै में कबीर दास ने सच्च गुरू की महिमा एवं उनके उपकार का वर्णन किया है।

व्याख्या -कबीर दास कहते हैं कि सच्चे गुरू की महिमा (अनंत) का पर नहीं पाया जा सकता वह अपरम्पार है गुरू ने ही शिष्य पर (अनंत) असीमित उपकार किए हैं, गुरू के उपकार ने ही शिष्य के सामने (अनंत) ज्ञान रूपी नैत्रों का प्रकाश फैलाया है गुरू ने ही ब्रह्माण्ड के रहस्य को देखने समझने की क्षमता प्रदान की है। तात्पर्य यह कि सच्चा गुरू मनुष्य के ज्ञान रूपी नेत्रों को खोलकर उसे ज्ञान प्रदान करता है इस प्रकार ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग बताकर वह शिष्य को अनंत (पूर्ण ब्रह्म) का साक्षात्कार कराता है।

विशेष - भक्ति काल के सभी प्रमुख कवि गुरू को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम मानते हैं

कबीर गुरू को विशेष महत्व देते हुए ईश्वर के समकक्ष मानते हैं।

अलंकार - यमक अनुप्रसा

भाव साम्य - **'गुरू गोविन्द दोउ खड़े काके लागूँ पांइ।**
बलिहारी गुरू आपने गविन्द दियो बताई ।।

2 - कबीर कहैं मैं कथि गया, काथि गये ब्रह्म महै श
राम नाम ततसार है सब काहू उपदेश

शब्दार्थ- कथि गया = कहता हूं
तत्सार = सार तत्व
सबकाहू = सबके लिए

संदर्भ - पूर्ववत!

प्रसंग - इस दोहै में कबीर ने राम नाम को सारतत्व बताया है।

व्याख्या - कबीर कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्मा और शिवजी ने एक उपदेश दियाहै और में भी उन्हीं का अनुसरण करते हुए कहता हूं कि राम नाम ही वास्तव में सार वस्तु है यह उपदेश सभी के लिए है भाव यह है कि राम भक्ति का अधिकार विना किसी भेदभाव के सबको समान रूप से है।

विशेष - उक्लंकार - अनुप्रास
छंद - दोहा

3- विरहा बुराह जिमि कहा, विरहा है सुलतान।
जा घट विरह न संचरे सो घट सदा मसान ।।

शब्दार्थ- विरहा = विरह, दुःख
बुरहा = बूरा
सुलतान = राजा, श्रेष्ठ
हाट = संसार

संदर्भ- पूर्ववत

प्रसंग - इस दोहै में विरह को तुच्छ नहीं श्रेष्ठ कहा गया है विरह युक्त व्यक्ति को निर्जीव बताया गया है।

व्याख्या -कबीर कहते हैं विरह या वियोग को वूरा मत कहो विरह जीवन का राजाहिराज है व बुच्छ नहीं श्रेष्ठ है जिस संसार में विरह नहीं है वह रामसान के समान है अर्थात जिस मनुष्य में विरह का भाव नहीं व मृत समान है निर्जीव है।

विशेष -

अलंकार-अनुप्रास

4- **संसै खाया सकल जुग, संस किनहु खद्ध।**
जे बेहो गुरू अष्पिरा, तिनि संसा चूणि-चूणि खद्ध।

शब्दार्थ	संसै	=	संराय, संदेह
	सकल	=	सारे समस्त
	जुग	=	युग, काल, समय संसार
	खद्ध	=	खाना भक्षण करना
	अष्पिरा	=	अक्षर ज्ञान, उपदेश
	चूणि चूणि	=	चुन-चुनकर

प्रसंग - इस दोहै मे माया रूपी संदेह को मिटाने के लिए एक मात्र उपाय गुरू के ज्ञान को बताया है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं संसार में भ्रम का संशय व्याप्त है इस संसार को माया रूपी संदेह ने खा लिया है लेकिन इस संशय को कोई भी नहीं खा सका है तात्पर्य यह है कि संसार में प्रत्येक मनुष्य भ्रम का शिकार हो गया है। इस संशय रूपी माया को मिटाने में पूर्ण रूप से अक्षम हो चुका है लेकिन जिससे गुरू की कृपा से संसार की नश्वरता का ज्ञान ले लिया है, वे संशय को चुन-चुनकर खा जाते हैं अर्थात भ्रम का शिकार या उसका आहार बनने से बच जाते हैं।

विशेष: अलंकार रूपक, युनरूक्ति प्रकाश

5 - **सायर नहीं सीप बिन, स्वाति बूंद नांहि ।**
कबीर मोती नी पजै, सुन्नि सिसर गढ़ माहि ।।

शब्दार्थ -	सायर	=	संसार
	नीपजै	=	उत्पन्न होना, मुक्ति प्राप्त होना ।
	सुन्नि	=	शून्य
	सिवर	=	शिखर
	गढ़	=	शरीर रूपी किला

संदर्भ-पूर्ववत।

प्रसंग - इस दोहै में कबीर के हठयोग साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का उल्लेख है।

व्याख्या -कबीर कहते हैं कि जब समुद्र में रहने वाली सीय में स्वाति नक्षत्र की बूंद पड़ती है तो वह मोती बन जात है लेकिन सुषम्ना नाडी़ के उपर स्थित ब्रह्मरन्ध्र में ने तो समुद्र है न सीप है और न ही स्वाति नक्षत्र की बूंद गिरती है फिर भी वहाँ मोक्ष रूपी मोती की उत्पत्ति होती है अर्थात ज्ञान प्राप्त होने पर वहां अद्भुत ज्योति दर्शन हो रहै हैं।

विशेष - अलंकार - विभावना, अनुप्रासा श्लेष

13.5 रहीमः एक परिचय

13.5.1 जीवन परिचय

भारतयीय संस्कृति के प्रति गहरी आस्था रखने वाले सगुण भक्ति धरा के निीति कवि रहीम का जन्म 17 दिसम्बर 1556 ई0 को लाहौर में हुआ इनका पूरा नाम अब्दुल रहीम खान-खान था। इनके पिता का नाम अतालीक वैरम खँान-खांन था जो मुगल साम्राज्य के सेनानायक तथा मुगल सम्राट हुमायूँ के मित्र थे। छोटी ही उम्र में पिता की असमय मृत्यु हो जाने के कारण सम्राट अकबर ने पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध अपनी देखरेख में किया। युवावस्था में इन्हें सर्वप्रथम पाटन की जागीरदारी दी गई उसके बाद अजमेर की सुवेदारी और रणथम्मौर के किले की जिम्मेदारी सम्भालने को दी गई, वे अकबर के दरबार में एक अत्यन्त सम्मानित सदस्य होने के साथ-साथ अकबर के नौ रत्नों में से एक थे। किन्तु जीवन के अन्तिम दिनों इन्हें शहजादा खुर्रम का समर्थन करने के कारण नूरहजहाँ का कोपमाजन बनना पड़ा साथ ही जहाँगीर ने इन्हें राजद्रोह के अपराध में केद कर लिया था इनकी सारी जांगीर जब्त कर ली थी, कहा जाता है कि बादशाह ने इनके बेटे का सिर काटकर तोहफे के रूप में इनके लिए जेल में भेजा था।

रहीम अत्यन्त दान-प्रिय थे एक बार इन्होंन गंग की एक रचना पर छब्बीबस लाख रूपये दान कर दिये थे लेकिन बुढ़ापे में दानप्रिय बब्दुल रहीम खान-खान अत्यन्त दरिद्र हो गए उनके जीवन का अन्तिम समय अभावों और दुख में बीता । इन्हीं अनुभवों से इन्होंने जीवन के ऐसे सटीक तथ्यों को अपने काव्य का विषय बनाया जो सार्व भामिक सत्य होने के साथ -साथ हृदय को स्पर्श करने वाले भी हैं सन् 1927 ई0 में 72 वर्ष अवस्था में इनकी मृत्यु हो गई।

13.5.2 साहित्यिक परिचय-

हिन्दी कविता के प्रसिद्ध सूक्तिकार और जीवन परिस्थितियों के कुशल चित्रकार रहीम की केवल छः प्रकाशित पुस्तकें उपलब्ध हैं-

1. रहीम दोहावली
2. बरबें नायिका भेद
3. नगर शोभा
4. श्रृंगार सोरठा
5. भक्ति परक वरबै
6. मदनाष्टक

इन पुस्तकों के अतिरिक्त रहीम के नाम कुछ फुटकर पद तथा कुछ संस्कृत श्लोक है जो ‘खटे कौतुक जातकम’ नाम से जाने जाते हैं रहीम की ‘दोहवली’ नीति काव्य से संबंधित हैं ‘नगर शोभ श्रृंगारपरक पुस्तक हैं। ‘बरबें छन्द’ में नायिका भेद का वर्णन है ‘भक्ति परक बरबें, में अनेक देवताओं गणेश सूर्य, शिव, कृष्ण, राम तथा हनुमान आदि की वन्दना के साथ ही श्रृंगार वर्णन, ऋतु वर्णन, भक्ति वर्णन वे वैराग्य वर्णन संबंधी छन्द है। श्रृंगार सोरठा एक छोटी सी पुस्तक है जिसमें केवल छः छन्द उपलब्ध है। ‘मदनाष्टक’ मूलतः संस्कृत मिश्रित खडी़ बोली में लिखा गया है जिसमें कृष्ण लीला संबंधी आठ पद हैं। ‘खेद कौतुक जातकाम’ में मुनष्य जीवन पर ग्रह नक्षत्रों के प्रभाव का संक्षिप्त चित्रण है।

भक्ति काल के कवियों में रहीम का महत्वपूर्ण स्थान है इन्होंने तत्कालीन समाज और अपने जीवन के सच्चे अनुभवों से नीति, धर्म, अर्थ, और मोक्ष जैसे विषयों पर विना किसी साम्प्रदायिक भेद-भाव के रचनाएं लिखी। रहीम न तो जायसी की तरह सूफी लगते हैं और नही सम्प्रदायवादी उनका एकमात्र उद्धेश्य अपनी रचनाओं द्वारा मानव मात्र का कल्याण था। इनके नीति एवं भक्ति से संबंधित दोहों में मार्मिकता के साथ-साथ जीवन के सार्वभौमिक सत्य का उद्धाटन है रहीम के काव्य के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है- ''रहीम का हृदय प्रवित होने के लिए कल्पना की उडा़न की अपेक्षा नहीं रखता था। वह संसार के सच्चे और प्रत्यक्ष व्यवहारों में ही द्रवित हो जाने के लिए प्रयाप्त स्वरूप पा जाता था।''
(रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य)

उनका रचना संसार जीवन का देखा भोगा यथार्थ है संसार में जो भेदभाव ऊँच-नीच का आडम्बर है उससे दुःखी होकर द्वन्द की स्थिति में उसका प्रत्यक्षीकरण करते हुए रहीम कहते हैं-

अब रहीम मुश्किल पडी, गाढ़े दोऊ काम।
सांचे से तो जग नहीं, झूठै मिले न राम।।

अर्थात संसार में सच्चाई से काम नहीं चलता और झूठ से राम नहीं मिलता। यह मुश्किल खुद रहीम की थी धन को केन्द्रीय वस्तु न मानकर मित्र और भगवान को अहम मानकर उनकी शरण में जाने का आह्वान किया।

कहना चाहिए कि आम आदमी के प्रति रहीम की गहरी सहानुभूति थी और मित्रता पर काफी भरोसा वे मित्र की एक मात्र कसौटी विपत्ति को मानते हैं। दुःख मेंजो साथ दे वही सच्चा मित्र है-

''विपत्ति कसौटी ले कसे तेही साँचे मीत।''

भाषा पर रहीमका जबरदस्त अधिकर था वे अरबी, फारसी संस्कृत हिन्दी के महान ज्ञाता थे, लेकिन उनकी रचनाओं की भाषा लोकभाषा के अधिक निकट हैं उनकी काव्य रचनाओं में कही-कहीं संस्कृत का प्रभाव तो है पर उसमें फारसीपन प्रतीत नहीं होता।

रहीम ने अपने नीति संबंधी दोहों के द्वारा भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखते हुए नैतिक आचरण से युक्त जीवन-यापन का उपदेश दिया उनका प्रत्येक दोहा आज भी हमें आत्म सम्मान और विनम्रता के साथ जीवन संघर्ष के लिए प्रेतिर करता है।

अभ्यास प्रश्न -2

अति लघु उत्तनरीय प्रश्न

1. रहीम का जन्म कब और कहाँ हुआ?
2. रहीम की कुल प्रकाशित पुस्तकों की संख्या कितनी है?
3. कृष्ण लीला संबंधी पद रहीम के किस काव्य में हैं?
4. रहीम के पिता का क्या नाम था?

लघु उत्तमरीय प्रश्न

1. रहीम का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए
2. रहीम का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय दीजिए ?

13.6 रहीम के दोहै संदर्भ एवं व्याख्या

1- मान सहित बिष खाय के, संभु भए जगदीश।
विना मान अमृत पिया, राहु काट्यो सीस ।।

शब्दार्थ मान = सम्मान संभु = शिव जगदीश = ईश्वर, परमात्मा

संदर्भ- प्रस्तुत दोह रहीम दोहवली ग्रन्थ से लिया गया है।

प्रसंग - इस दोहै में रहीम ने समुद्र मंथन की घटना के माध्यम से आत्म सम्मान से जीवन जीने की महत्वा का प्रतिपादन किया है।

व्याख्या - रहीम कहते हैं कि समुद्र मंथन के समय निकल कालकूट विष की भयंकरता से बचाने के लिए संसार ग्रहण कर लिया तो उन्हें जगदीश की उपाधि से सम्मानित किया गया। लेकिन राहु ने छल-कपटपूर्ण व्यवहार से विना सम्मान के देवताओं के साथ बैठकर अमृत पीने की धृष्टता की तो भगवान विष्णु ने उसका सिर कटा दिया। तात्पर्य यह है कि बिना आत्म सम्मान के कोई भी कार्य उत्त म नहीं हो सकता साथ ही वह सिद्ध भी नहीं हो सकता।

विशेष - जीवन में आत्मसम्मान के साथ किया गया कार्य ही सिद्ध होता है, छल कपट से किया गया कार्य हाँनिकारक होता हैं

2- रहिमन ओछे नरन ते, तजौ बरै अरू प्रीति।
काटे-चाटे स्वान के, दूहू भाँति विपरीत।

शब्दार्थ -ओहै नरम =नीच मनुष्य बरै = वैर, दुश्मनी स्वान = कुत्ता

संदर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - इस दोहै में रहीम ने नीच प्रकृति के मनुष्य को कुत्तों के समान बताया है। एसे प्रकृति के लोगों से नहीं दोस्ती अच्छी न ही दुश्मनी।

व्याख्या -रहीम ने कुत्तोंह के उदाहरण द्वारा नीच प्रकृति (ओछे) के मनुष्य की वास्तविकता को बताते हुए कहा है कि कुत्तोंश से प्रेम और दुश्मनी दोनों ठीक नहीं है क्योंकि प्रेम में जो कुत्तों चाटता है वहीं दुश्मनी में काटने का आता है। ठीक इसी प्रकार का स्वभाव ओछे प्रकृति के मनुष्य का भी होता है इसलिए ऐसे मनुष्यों को न तो दोस्त बनाना चाहिए और न ही दुश्मन। ऐसे मनुष्यों से दूर ही रहना चाहिए।

विशेष - रहीम ने अन्या दोहै में भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं-

‘‘रहीम जगत बढाई की क्कुर की पहिचान।
प्रीति करैं मुख चाटईं वैर करै तन हाँनि ।।

3- रहिमन धागा प्रेम का, मत तोडो़ छिटकाया।
टूटे से फिर ना जुरै, जुरै गाँठ पड़ जाय।

शब्दार्थ जुरै = जोड़ना

संदर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - इस दोहै में रहीम ने प्रेम को एक पवित्र कच्चे धागे के समान बताया है।

व्याख्या -रहीम कहते हैं सच्चा प्यार एक कच्चे धागे के समान होता है जिस प्रकार कच्चा धागा एक बार टूट गया तो दुबारा नहीं जुड़ सकता जोड़ने पर उसमें गांठ पड़ जाती है और इस प्रकार की गांठ पड़ना अत्यन्त बूरा है।

विशेष - सच्चे प्रेमी की भावनाऐं कच्चे धागे के समान होती है उसकी भावनाओ की कद्र करनी चाहिए ठेस नहीं पहुँचानी चाहिएं एक बार सच्चे प्रेम में दरार आने पर वह कभी भर नहीं सकती।

4- रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिहिं दुःख प्रकट करेई ।
जिहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देय ।।

शब्दार्थ अँसुआ = आंसू
नयन = आँख
ढरि = बाहर निकलना, दुलकना
निकारो = निकालना

संदर्भ – पूर्ववत ।

प्रसंग -इस दोहै में परिवार से निकालने गए व्यक्ति से होने वाली हाँनि के बारे में बताया गया है ।

व्याख्या -रहीम कहते हैं आँख से गिरे हुए आंसू मनुष्य के हृदय के दुःख, दर्द या उसकी वेदना का रहस्योद्घाटन कर देते हैं चोहै वह कितना ही मौन क्यों न रहै । जब निकले हुए आँसू विना कुछ कहै मनुष्य के सारे रहस्य खोल सकते हैं तो जिस व्यक्ति को आपने-अपने हार से निकाल दिया वह अवश्य आपके रहस्य खोलेगा ।

5 - रूठे सुजन मनाईये , जो रूठै सौ बार ।
रहिमन फिर-फिर पोहिए, टूटे मुक्ताहार ।।

शब्दार्थ- सुजन = सज्जन व्यक्ति पोहिए = जोड़ना पिरोना
मुक्ताहार = मोतियों की माला

सन्दर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - इस दोहै में रहीम ने सज्जन व्यक्ति के रूठने पर भी उसे बार-बार मनाने को कहा है क्योंकि ऐसे व्यक्ति समाज के लिए हमेशा हितकारी होते हैं।

व्याख्या -जिस प्रकार कीमती मोतियों की माला के टूटने पर हम बार-बार उसे पिरोते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार सज्जन व्यक्ति यदि सौ बार भी रूठ जाए तो उसे मनाते रहना चाहिए। क्योंकि सज्जन व्यक्ति हमेशा समाज के हित के लिए तत्पर रहते हुए कार्य करते हैं।

13.7 बिहारी : एक परिचय

13.7.1 जीवन परिचय

रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ और ख्याति प्राप्त कवि विहारी का जन्म सन् 1595 ई0 में ग्वालियर के समीप बसुवा गोविन्द पुर में चौबे जाति के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम केशव राय था। इनकी आरम्भिक शिक्षा की शुरूआज महन्त नरहरिदास की देख-रेख में हुई जो इनके पिता के गुरू भी थे इनका बचपन बुन्देलखण्ड में बीता और मथुरा के किसी ब्राह्मण परिवार में विवाह होने के बाद ये वहीं आकर बस गए एक बारस इनके पिता इन्हें आरेछा ले गए

वहाँ इन्होंने हिन्दी के प्राकृत काव्य ग्रन्थों का अध्ययन किया और आगरा आकर अरबी, फारसी का भी अध्ययन किया। मुगल सम्राट जहाँगीर के सम्पर्क में आते ही विहारी उनके कृपा यात्र वन गए साथ ही उनकी वृति का दायरा भी बढ़ता गया वे अनेक राज्यों का है तु भ्रमण करने लगे। इसी क्रम में सन् 1465 के आस-पास वे जयपुर के महाराजा जयसिंह अपनी नवविवाहित रानी के प्रेम में मुग्ध होकर राजकाल भूल चुके थे राजा के इस व्यवहार से कहाँ की प्रजा दुःखी थी विहारी-विहारी को जब यह पता चला कि राजा प्रेम में मुग्ध होकर महलों में पड़े है उसी समय निम्न दोहा राजा को लिखकर भेजा-

''नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सो बिंध्यो आगे कौन हवाल ।।''

इस दोहै का आश्चर्य जनक प्रभाव राजा पर पड़ा। उनका ह्रदय परिवर्तन हुआ और विहारी को सम्मानित करते हुए राजकवि की पदवी दी और साथ ही प्रत्येक दोहै के लिए एक अशर्फी देने की भी घोषणा की तत्पपश्चात विहारी वहीं रहने लगे यहीं इन्होंने चार्चित ग्रन्थ 'सतसई' रचना की। सत सईं को काफी ख्याति मिली। ख्याति प्राप्त कर चुकने के बाद विहारी पुनः मथुरा लौट आए। कहा जाता है कि विहारी निःसंतान थे उनके जीवन के अन्तिम दिन कष्टकर है सन् 1664 में मथुरा में इनकी मृत्यु हो गई।

13.7.2 साहित्यिक परिचय

'गागर में सागर भरना' इस उक्ति को चरितार्थ करने वाले विहारी की एकमात्र रचना 'विहारी सतसई ' है। जिसमें कुल 713 दोहै संग्रहीत हैं, इसक कृति को अन्य नामों 'सतसौया, 'सतसई,' विहारी रन्ताकर नाम से भी जाना जाता है। हिन्दी में सतसई परम्परा की असल शुरूआत का श्रेय विहारी सतसई को ही जाता है। इतना ही नहीं राचरित मानस के बाद सर्वाधिक टीकाएं विहारी सतसई पर ही लिखी गई हैं। विहारी ने अपने दोहों में अर्थ का जो गाम्भीर्य भरा है उसे देखकर उनके दोहों के लिए किसी ने दोहा ही रच डाला-

''सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें घाव करे गम्भी ।।''

रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि होने के साथ-साथ विहारी रीतिसिद्ध परम्परा के अग्रगणय और सेचे रचनाकार हैं। इनकी एकमात्र रचना 'सतसई' में मूलतः श्रृंगार परक दोहों की प्रचुरता है जिसमें श्रृंगार के दोनो पक्षों संयोग और वियोग श्रृंगार की प्रधानता है। संयागे श्रृंगार में उनका मन जितना रमा है उतना वियोग श्रृंगार में नहीं। इनके काव्य में प्रेम के साथ जीवन के अन्य पक्षों का भी चित्रण है, जिसमें भक्ति, नीति, एवं ज्योतिष संबंधी ज्ञान है।

बिहारी सतसई की भावा मूलतः परिनिष्ठित ब्रजभाषा है साथ ही उसमे पूरबी और बुन्देली भाषा के भी शब्द है। भाषा में व्यंजना शब्द शक्ति, शब्दों के वैविध्य के साथ ही मुहावरों लोकोक्तियां के प्रयोग ने ब्रहभाषा को और अधिक गरिमा प्रदान की है विहारी ने केवल दोहा और सोरठा छन्द में एकमात्र सतसई लिखी है थोडे से शब्दों द्वारा बहुत कुछ कहना उनके दोहों की विशेषता है' गागार में सागर ' तथा 'नाविक के तीर' जैसे विशेषणों से युक्त विहारी के दोहो के उक्तिवेचिन्न्य का कोई शानी नहीं है।

अभ्यास प्रश्न-

अतिलघु उत्तकरीय प्रश्न-

1. विहारी का जन्म कब हुआ?
2. विहारी 'सतसई' में कुल कितने दोहै हैं?
3. विहारी 'सतसई' की मूल भाषा कौन सी है?
4. विहारी की मृत्यु कब और कहाँ हुई?

'लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. विहारी का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए?
2. विहारी सतसई पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?

13.8 विहारी के दोहेः संदर्भ एवं व्याख्या

1 - मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाई परे, स्याम हरित दुति होई।।

शब्दार्थ- भवबाधा-सांसारिक बाधाएं

झाई - परछाई, झलक, ध्यान

स्यया - कृष्ण, बुराई, दुःख, सांवला आदि।

हरित - हरा रंग, कांति

संदर्भ - यह दोहा रीतिकाल के चर्चित कवि विहारी के प्रसिद्ध ग्रन्थ, विहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग - सतसई का यह प्रथम दोहा है सतसई की निर्विहन समाप्ति के लिए विहारी ने राधा का स्मरण करते हुए मंगलाचरण किया है।

व्याख्या -विहारी कहते हैं जिस राधा नागरि की शरी की छाया पड़ने से कृष्ण हरी कान्ति वाले हो जाते हैं वही चतुर राधा मेंरी सांसारिक बाधाओं को दूर केर, जिसके शरीर मात्र का ध्यान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और मन में प्रकाश छा जाता है।

व्याख्या 2-वह राधा नागरि जिसके शरीर का ध्यान करने से समस्त क्लेश दूर होकर अच्छाई, पुण्य, सुख आदि का उदय होता है वह मेरी सांसारिक कठिनाईयों को समाप्त करे।

विशेष -इस दोहै से प्रतीत होता है कि विहारी राधाबल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे।

2- यह दोहा विहारी के लिए 'गागर में सागर' मरने जैसी उक्ति को चरितार्थ करता है।

3- अलंकार झाई, श्याम और हरित शब्द के अनेक अर्थ है इसलिए श्लेष अलंकार है।

2- कहत नटत रीझत मिलत रिवलत लजियात।
भरे मौन में करत हैं नैननु ही सब बात।।

शब्दार्थ -कहत = कहना
नटत = मना करना
रीझत = प्रसन्न होना
रवीझत = रूष्ट होना या नाराज होना

खिलत = प्रसन्नता प्रकट करना
भौन = भवन
नैननु = आँखों से

संदर्भ -पूर्ववत।

प्रसंग - नायक नायिका भीड़ युक्त समारोह में नयनो के संकेत से ही एक दूसरे के हृदय के भावों को विना वार्तालाप के प्रकट कर देते हैं संयोग श्रृंगार की इन चेष्टाओं का विहारी ने मनोरम चित्र उपस्थित किया है।

व्याख्या- नायक नायिका से अभिसार का प्रस्ताव रखता है यह प्रस्ताव बोलकर नहीं आँखों के इशारे से होता है और आँखों के इशारे से ही नायिका इसे ठुकरा देती है नायिका के अस्वीकार की यह मुद्रा भी नायक को भा जाती है वह प्रसन्न हो उठता है इस पर नायिका खीक्ष उठती है परन्तु जब दोनों के नेत्र एक साथ मिलते है तो दोनों प्रसन्नता से खिल उठते हैं; जैसे ही उन्हें गुरूजनों का आभास होता है तो उन्हें लाज आ जाती है यह इसलिए कि यदि किसी ने उनकी यह आंखों द्वारा की गई सांकेतिक लीला देख ली तो क्या सोचेंगे। इस प्रकार नायक-नायिका व्यक्तियों से भरे हार में भी नयन संकेत से ही एक दूसरे के मन की बाते जान लेते हैं।

विशेष - नैननु ही सौ बात में विभावना अलंकार।
भरे-भौन में अनुप्रास अलंकार।

3- जय माला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै रांचै राम ।।

शब्दार्थ - जयमाला = माला जपने से।
छापा तिलक = तिलक लगाने से
मन काँचे = कच्चे मन वाला।
राँचे = प्रसन्न होना।

प्रसंग - विहारी ने इस दोहै में सच्चे हृदय से भक्ति करने का अहवान किया है। आडम्बर पूर्ण भक्ति से भगवान नहीं मिलते। व्यक्ति का कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता।

व्याख्या-माला जपने तिलक लगाने से कोई भी काम नहीं निकलना क्योंकि यह सब आडम्बर मात्र है कच्चे मन अर्थात जिस व्यक्ति के मन में ईश्वर के प्रति सच्चा भाव नहीं है व्यर्थ ही (बिना कुछ लाभ के) नाचा करता है। ईश्वर तो सच्चे मन में रचना बसता है या प्रसन्न होता है।

4- तन्त्रीनादकवि रस सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग।।

शब्दार्थ -तन्त्री नाट = वाणा आदि का मधुर स्वर।
सरस राग = रस भरा अनुराग।
अनबूड़े = अल्पज्ञानी कम ज्ञान रखने वाले।
जे बूड़े सब अंग = सम्पूर्ण ज्ञान रखने वाले।

संदर्भ - पूर्ववता।

प्रसंग - इस दोहै में विहारी ने कविता और ललित कलाओं के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए कहा है कि इनमें पूर्ण रूप से निभन्न होकर ही सिद्ध प्राप्त होती है।

व्याख्या- वीणा की झंकार, कविता का रसास्वावन,रस युक्त अनुरागा और प्रेम के रस में जिसने स्वयं को पूरा डुबा लिया वे ही सफल हुए। जो पूर्ण रूप से मग्न नहीं हुए वे असफल रहै । अर्थात काव्य आदि ललित कलाओं में पूर्ण रीति के साथ जो निमग्न हुआ उसे सिद्धि प्राप्त हुई लेकिन जो इनमें यत्किंचित प्रवृत होते हैं वे असफल रहते हैं-

विशेष -राग रति रंग में अनुप्रास अलंकार

अनबूडे-बूडे में संभग पद यमक।

5 - **कनक-कनक तै सो गुनी मादकता अधिकाइ।**
उहिं रवाऐं बौराई, इहिं पाऐं बौराई।।

शब्दार्थ -

कनक = सोना

कनक = हातूरा (चरस जैसा कोई पादक पदार्थ)

मादकता = उन्मत करने की शक्ति

बौराई = पागल होना।

संदर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - विहारी ने धन और धतूरे दोनो की अधिकता को मनुष्य के लिए हानिकारक बताया है।

व्याख्या - सोने अर्थात धन में धतूरे से सौ गुना अधिक उन्मत करता है क्यों कि मनुष्य धतूरे को खाने से पागल होता है पर वह अधिक सोना (धन) पाने से ही पागल हो जाता है।

विशेष - कनक-कनक में यमक अलंकार।

13.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप-

- कबीर, रहीम एवं विहारी के जीवन के बारे में जान चुके होंगे।
- कबीर रहीम एवं विहारी का साहित्यिक परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।
- कबीर, रहीम एवं विहारी के चुनिन्दा दोहों के संदंर्भ व्याख्या पढ़ चुके होंगे।

13.10 शब्दावली

विवादस्पद	=	विवाद के योग्य ।
सारवी	=	सारवी शब्द संस्कृत के साक्षी शब्द का तद्भव है जिसका अर्थ है गवाह इसके लिए संस्कृत में साक्ष्य शब्द है साक्षी वह है जिसने स्वयं अपनी आँखों से तथ्य देखा हो अर्थात आँख से देखे हुए तथ्य का वर्णन।
दीर्घजीवी	=	अधिक समय तक जीने वाला।
कोप पाजन	=	क्रोध का शिकार होना।
राज द्रोह	=	राजा का विद्रोह।
निराकार	=	जिसाका कोई आकार नहीं होता।
सार्वभौमिक सत्य	=	जो तथ्य हमेशा सत्य होते हैं।

रीति सिद्ध = जिस कवि को प्राचीन काव्य रीतियों का ज्ञान हो लेकिन उसने अपने काव्य में उसका पालन न किया हो।

13.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1. सन् 1398।
2. रामानन्द।
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।
4. धर्मदास ने।

अभ्यास प्रश्न 2

1. 17 दिसम्बर 1559 ई0 लाहौर में।
2. छः
3. मदनाष्टक
4. अतालीक वैरम खान-खान।

अभ्यास प्रश्न 3

1. सन् 1595 में।
2. 713 दोहै।
3. परिनिष्ठित व्रज भाषा
4. 1664 में मथुरा में।

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, राम चन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, सृष्टि बुक डिस्ट्रीव्यटर्स नई दिल्ली संस्करण 2002
2. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसार- कबीर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1990।
3. पाठक, मानवेन्द्र (सं) प्राचीन काव्य सुधा- अंकित प्रकाशन हल्द्वानी 2003।
4. शुक्ल, रामचन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास सृष्टि बुक डिस्ट्री व्यूटर्स नई दिल्ली 2002।

13.13 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री।

1. सिह डा0 जयदेव सिंह, डॉ0 शुकदेव सिंह, कबीर वाणी पियूस विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणासी।
2. दास, डॉ0 श्याम सुन्दर दास- कबीर ग्रन्थावली प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली।
3. मिश्र, विद्यानिवास। गोविन्द रजनीश रहीम ग्रन्थावली।
4. रत्नाकर, जगन्नाथ दास- विहारी रत्नाकर साहित्य सागर जयपुर।
5. डॉ0 नगेन्द्र डॉ0 हरदयाल (सं) हिन्दी साहित्य का इतिहास मयूर पेपर वैक्स नौएडाप दिल्ली 2009
6. सिंह वच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली।

13.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए?
2. रहीम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए?
3. विहारी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए?